CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंक : 150, जनवरी–मार्च, 2017

छायानट

त्रैमासिक

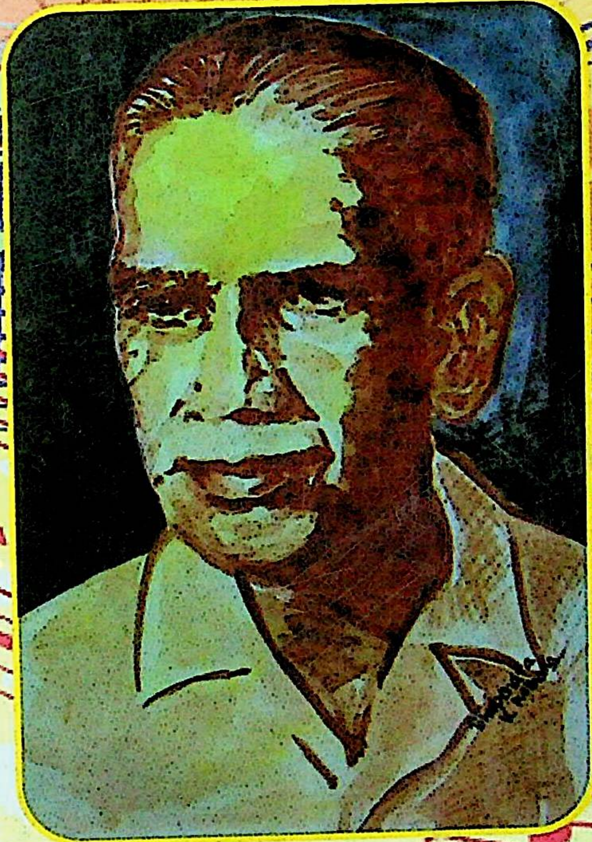

संगीतकार पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी की जन्मशती (1917–2017) पर विशेष

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी का प्रकाशन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जश्न-ए-आजादी के अन्तर्गत 24.01.2017 को उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी द्वारा लखनऊ में आयोजित कार्यक्रम का शुभारम्भ करते मुख्य अतिथि डॉ. अखिलेश मिश्र, अकादमी सचिव श्री जगदीश प्रसाद। गीत एवं भजन प्रस्तुत करतीं कलाकार।

अवध संध्या में 21.2.2017 को लखनऊ में सुश्री दीप माला सचान के साथ कथक प्रस्तुत करतीं अदिति थपलियाल, अमीषा तिवारी, प्रेरणा राणा व अनिमिता भौमिक।

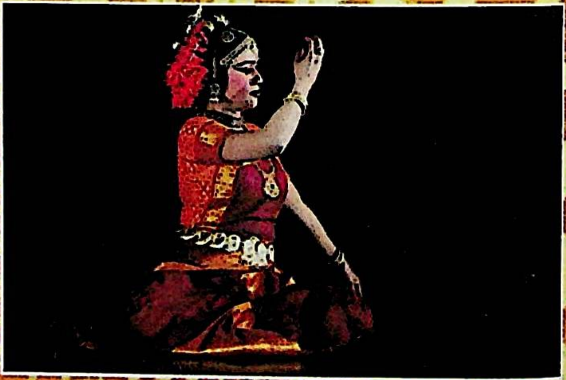

अवध संध्या में 21.2.2017 को लखनऊ में कार्यक्रम का शुभारम्भ करते अतिथिगण एवं कुचिपूड़ी प्रस्तुत करतीं सुश्री मीनू ठाकुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित रंगमंच, संगीत तथा अन्य अभिनेय कलाओं की अखिल भारतीय त्रैमासिक पत्रिका

छायानट

प्रकाशक
जगदीश प्रसाद, आई.ए.एस.
सचिव,
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

सलाहकार
तरुण राज

आवरण-चित्र
पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी की पेंटिंग

चित्रकार
भूपेन्द्र के. अस्थाना

मुद्रक :
प्रिन्टआर्ट आफ़सेट
33, कैण्ट रोड, लखनऊ

सम्पादक एवं लेखकों के विचारों से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सम्पादकीय एवं लेखों में दिये गये तथ्यों एवं सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सम्पादक एवं लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सम्पादक
एस. के. गोपाल

मूल्य
₹ 50.00 मात्र

वार्षिक सदस्यता शुल्क
₹ 200 (साधारण डाक)
₹ 400 (पंजीकृत डाक)

आजीवन सदस्यता शुल्क
₹ 3000 (साधारण डाक)
₹ 5000 (पंजीकृत डाक)

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता :
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी
पोस्ट बॉक्स नं0 30, विपिन खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ - 226 010.
फ़ोन : 2307840, 2307850
ई-मेल : upsna.chhayanat@gmail.com

समस्त विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादक : एस. के. गोपाल

रंगमंच, संगीत तथा अन्य अभिनेय कलाओं का अखिल भारतीय त्रैमासिक

छायानट

पंजीयन संख्या : आर.एन. 35504/79

❑ वर्ष 38 ❑ अंक 150 ❑ जनवरी-मार्च, 2017 ❑ मूल्य : ₹50.00

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जन्मशती पर विशेष

लोक गायन के हिमालय पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी/डॉ. दाऊजी गुप्त/5 • 'सुरसरि सम सब कहँ हित कोई'/ डॉ. आशाराम त्रिपाठी/10 • मेरे चाचा/नीलम चतुर्वेदी/14 • वह स्पर्श/नवनीत मिश्र/19 • कमला! ऐसे नहीं ऐसे.../प्रो. कमला श्रीवास्तव/22 • उनकी स्मृति को नमन/उदय प्रताप सिंह/23 • अमृतकुण्ड है 'ऊँची अटरिया रंग भरी'/ सुनीता झिंगरन/23 • स्वर्गीय राधावल्लभ चतुर्वेदी/के. के. श्रीवास्तव/24 • छोटी सी भेंट/राम मोहन दुबे/25 • ताल ज्ञान के विलक्षण प्रयोक्ता/डा. नीरज चौबे/26 • परम पूज्य गुरु जी/कुंवर सुन्दर मेहरा/28 • गुरु जी ने करवाया था मेरा विवाह/मनोरमा जायसवाल/29 • मन लागो मेरो यार फ़क़ीरी में.../उर्मिल कुमार थपलियाल/30 • संगीत मर्मज्ञ पं. राधावल्लभ जी/उमेश चन्द्र प्रताप सिन्हा/31 • स्मृतियों के झरोखे से संगीताचार्य पं. चतुर्वेदी/उषा सक्सेना/32 • मेरे गुरुदेव/केवल कुमार/39 • बाजत बँसुरी मृदंग/डॉ. अरुण त्रिवेदी/42 • अवधी गीतों के शास्त्रीय गायक/डॉ. शरद मणि त्रिपाठी/43 • अविस्मरणीय पल/अशोक गोस्वामी/45 • इंसान-ए-कामिल : राधावल्लभ चतुर्वेदी/पं. विनय कुमार अवस्थी/46 • पारम्परिक गीतों के संरक्षक/राम किशोर बाजपेयी/47 • उन्होंने तहज़ीबी विरासत बचाई/नवाब जाफ़र मीर अब्दुल्लाह/50 • अवधी गीतों के महानायक/डॉ. योगेश प्रवीन/51 • पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी (अंग्रेजी लेख)/करुणा शंकर/52

अन्य लेख

बुन्देलखण्ड के राई नृत्य को बचाने की जरुरत	- सियाराम पाण्डेय 'शान्त'	54
कुचीपूड़ी- भागवत मेला	- मीनू ठाकुर	57
संगीत का आध्यात्मिक रुप एवं भाव पक्ष	- स्मृति शुक्ला	59
कथक नृत्य का साहित्य	- बीना सिंह	62

नाटक

युगात्मा	- डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी	68

साक्षात्कार

तबला वादिका डॉ. शोभा रानी कुदेशिया से रघुवीर का संवाद		92

अतीत से

भोजपुरी क्षेत्र के स्त्री-प्रस्तुतिपरक लोकनाट्य	- डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी	98

ठौर-ठौर के रंग

भारतीय रंग महोत्सव- 2017	- अनिल गोयल	104
बैजू बावरा ध्रुपद उत्सव- 2017	- रघुवीर	112
नाट्य उत्सव लखनऊ		115

अकादमी गतिविधियाँ -		116
पुस्तक समीक्षा	- रवीन्द्र नाथ बहोरे	119

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत साधक पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी

आदि काल से लोक कलायें जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी रही हैं। लोक संस्कृति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि कठिन शारीरिक श्रम के बोझ को संगीत से हल्का किया जाता रहा है। चक्की पीसना, नाव चलाना, बोझ खींचना आदि कहीं न कहीं संगीत से जुड़े रहे। ऋतुओं के गीत, जीवन-मरण के मध्य पग-पग पर संगीत, धार्मिक क्रियाओं और यहाँ तक कि जादू-टोनों से भी कलायें असम्पृक्त नहीं रही हैं। लोक जीवन का दुःख-दर्द, हर्ष-उल्लास का अनुभव, हमारे संगीत के प्राण तत्त्व रहे हैं। जन-जन के श्रम से सिंचित होकर प्रकृति के आँचल में पुष्पित व पल्लवित होती लोक संस्कृति में लोक संगीत का अथाह सागर भी है जिसके रचयिताओं का कहीं नाम नहीं मिलता। कला समीक्षक 'जीवन यदु' लोक कलाओं को शास्त्रीय कलाओं की जननी मानते हैं। उनका कहना है कि लोक जीवन में प्रवाहित कलायें शास्त्रबद्ध होकर एक बड़े जनसमुदाय से दूर हो जाती हैं या दूर कर दी जाती हैं। दोनों प्रकार की कलाओं के बीच एक बौद्धिक किस्म की सीमा-रेखा खींच दी जाती है - यह उच्च वर्ग की कला है और ऊँची है; यह गँवारु और नीची है। कलाविद धनञ्जय वर्मा शास्त्रीय और लोक कलाओं के बीच का रिश्ता अटूट बताते हुए कहते हैं कि 'शास्त्र' का आधार ही 'लोक' होता है। जो शास्त्र, लोक से जितना दूर होता जाएगा; वह उतना ही अपनी मौत के नजदीक सरकता जाएगा। शास्त्र वहाँ तक ज़ीवन्त हैं जहाँ तक कि वह लोक के स्पन्दन से जुड़ा है। कला और संस्कृति का इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब उसे शास्त्र से जकड़कर प्रस्तरीभूत किया गया है तब-तब वह अपनों के हाथों से छूट-फिसलकर लोक के बीच आ गयी है।

शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत के मध्य सेतु के रुप में पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। वर्ष 1917 की 12 जनवरी को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में जन्मे पं. चतुर्वेदी ने संगीत के संस्कार अपनी माँ से विरासत में पाये। लखनऊ आकर संगीत की साधना की। शास्त्रीय संगीत में निष्णात पं. चतुर्वेदी ने लोक संगीत संरक्षण में विशिष्ट योग दिया। वो पान खाने का शौक रखते थे। कहा जाता है कि उनकी गायकी से द्वेष रखने वालों ने उन्हें पान में सिन्दूर मिलाकर खिला दिया था जिससे उनकी आवाज़ फट गई और वह शास्त्रीय गायन में असमर्थ हो गये। वर्ष 1952 में उनके लिखे 'सा रे ग म' पुस्तक को माध्यमिक शिक्षा परिषद-उत्तर प्रदेश की इण्टरमीडिएट कक्षाओं के संगीत विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। उन्होंने गाँव-गाँव जाकर लोक संगीत की प्रचलित धुनों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकलित करने के साथ ही उन्हें स्वरलिपिबद्ध किया। आकाशवाणी-लखनऊ में सेवारत रहते हुए उन्होंने अनेक कलाकारों को संरक्षण भी दिया। उनके देहावसानोपरान्त वर्ष 1977 में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने जब अपनी प्रकाशन शाखा का शुभारम्भ किया तो पहली पुस्तक के रुप में उनकी लोक संगीत पर आधारित पुस्तक 'ऊँची अटरिया रंग भरी' प्रकाशित की। लोक गीतों को सहेजने के उनके इस प्रयास को 'धरोहर' के रुप में संगीत जगत ने अपनाया। पं. चतुर्वेदी की शिष्य शृंखला ने अपने गुरु को अपनी स्वर साधना में संजोकर रखा है। वर्ष 1917 इस महान लोक संगीतकार का जन्मशती वर्ष है। 'छायानट' का उन पर केन्द्रित यह अंक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की ओर से उनकी जन्मशती पर श्रद्धा पुष्प के रुप में अर्पित है। इस अंक में पं. राधावल्लभ जी की सुपुत्री सुश्री नीलम चतुर्वेदी, कला अनुरागी एवं सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. नीरज चौबे ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। अकादमी के प्रोड्यूसर एवं 'छायानट' के सम्पादकीय सलाहकार श्री तरुण राज का विशेष आभार; जिन्होंने पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी की जन्मशती पर इस पुण्य कार्य की भूमिका रची।

हमें प्रसन्नता है कि अकादमी परिवार के सहयोग से 'छायानट'; इस अंक के साथ नियमित हो गई है। इस अंक में पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी से सम्बन्धित संस्मरणों के अतिरिक्त सुश्री मीनू ठाकुर का कुचिपूड़ी पर, सुश्री बीना सिंह का कथक नृत्य पर तथा बुन्देलखण्ड के राई नृत्य को बचाने की जरुरत पर श्री सियाराम पाण्डेय 'शान्त' के विचार पाठकों को पसन्द आयेंगे। नाटककार डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी का नाटक 'युगात्मा', सुप्रसिद्ध तबला वादिका डॉ. शोभारानी कुदेशिया का साक्षात्कार, भारतीय रंग महोत्सव-2017 व बैजू बावरा ध्रुपद उत्सव-2017 की रपट, अकादमी गतिविधियां एवं 'अतीत से...' स्तम्भ में भोजपुरी क्षेत्र के स्त्री-प्रस्तुतिपरक लोकनाट्य सम्बन्धी आलेख को स्थान दिया गया है। इस अंक से पत्रिका मूल्य में वृद्धि भी की गई है। आशा है, सुधी पाठक अपना स्नेह व सहयोग पूर्ववत प्रदान करते रहेंगे।

(डॉ. के. गोपाल)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक गायन के हिमालय पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी

• डॉ. दाऊजी गुप्ता

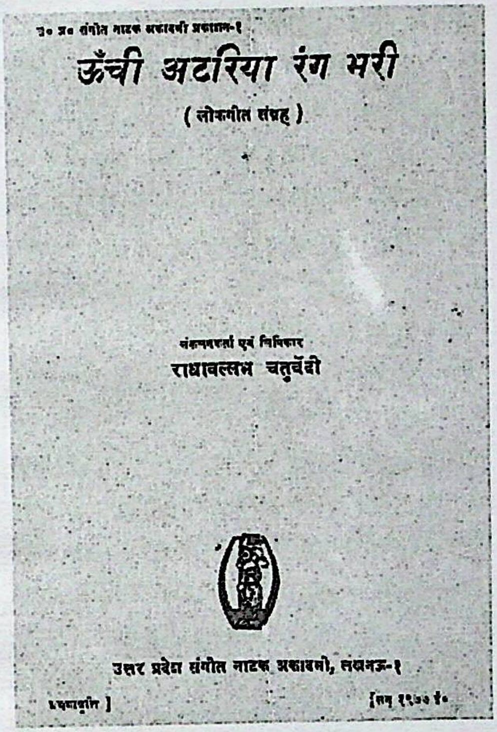

एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ के अनुसार -"प्रकृति सदियों से दुनिया भर में कलाकारों, कवियों, संगीतज्ञों आदि को रचनात्मक रूप से प्रेरित करती आयी है। वर्षा ऋतु और बसंत ने तो जैसे महावत बनकर कलाकारों के रचना कौशल रूपी गज को प्रेरित किया है। भारतीय संगीत ने तो प्रकृति की वेदी पर न जाने कितने स्वर-सुमन अर्पित किये हैं। शास्त्रीय संगीत हो, लोकगीत हो, फिल्मी संगीत हो या फिर भक्ति संगीत, बरखा बहार ने भारतीय संगीत की सभी विधाओं को सदैव हरा-भरा बनाए रखा है।"

संगीत समीक्षा की उक्त कसौटी पर पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी खरा सोना बनकर सामने आये। विशेष रूप से लोक-गायन के हिमालय थे पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी। उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में दिनांक 12 जनवरी, 1917 ईसवी को उनका जन्म हुआ था और दिनांक 10 जून, 1974 ईसवी को लखनऊ में उनका परिनिर्वाण हुआ। उन्होंने किशोर वय में ही मुरादाबाद छोड़ दिया था और प्रदेश की राजधानी लखनऊ में आकर बस गये थे। उनका अधिकांश जीवन लखनऊ में ही बीता।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने जीवन भर लोकगीतों का संकलन किया और उनकी धुनों को स्वरलिपिबद्ध किया। उनके पिता पं. टीकाराम चतुर्वेदी अंग्रेजों के शासन-काल में नाज़िर थे। राधावल्लभ जी अपने माता-पिता की छठी सन्तान थे। उनके पिता उन्हें पढ़ा-लिखाकर दरोगा बनाना चाहते थे, जबकि इसके विपरीत उन्होंने अपनी माँ से विरासत में संगीत के संस्कार पाए थे। उन संस्कारों को वे निरन्तर अपने रक्त में विकसित करते रहे। उन्हें घर में अपना दम घुटता हुआ अनुभव हुआ, इसलिए वे घर से निकल पड़े और लखनऊ आकर रहने लगे, क्योंकि लखनऊ कला, संस्कृति, साहित्य और संगीत का केन्द्र है।

उनका जीवन न तो संगीत की तरह ललित रहा और न लोकगीतों जैसा सहज। उनके भीतर हमेशा रूढ़िभंजक विद्रोही प्रकृति का मन मचलता रहता था। उन्होंने लखनऊ में ही मन लगाकर अपनी संगीत की शिक्षा ग्रहण की। राधावल्लभ जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर इस नगर को अपना कर्म-क्षेत्र बनाया। उन्होंने यहाँ के भातखण्डे संगीत विद्यालय से सन् 1940 में संगीत विशारद की उपाधि प्राप्त की। उसके पश्चात संगीत-शिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र से 'पंचायत घर' कार्यक्रम प्रसारित हुआ करता था। उस कार्यक्रम में लोक संगीतकार के पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी। उनकी कार्य-क्षमता, प्रतिभा और योग्यता के आधार पर 'पंचायत घर' कार्यक्रम से प्रसारित लोकगीतों की लोकप्रियता दिनों दिन बढ़ती गयी। उन्होंने दूर-दूर के अंचलों से दुर्लभ लोकगीतों और लोकधुनों की खोज की और आकाशवाणी के लिए उनका संग्रह किया।

राधावल्लभ जी ने कुछ संग्रहीत लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत का बहुत अच्छा समावेश किया। इन लोकगीतों में घाटो, चैनी, बिदेसिया आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे लोकगीतों का आदिम संसार उनका असली कार्यक्षेत्र बन गया। उनका ध्यान अवधी लोकगीतों पर विशेष रूप से केन्द्रित हुआ। उन्होंने अवध के चयनित लोकगीतों को स्वरलिपिबद्ध कर भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया। वैसे तो राधावल्लभ जी ध्रुपद, धमाल, खयाल, ठुमरी व ग़ज़ल सभी विधाओं के सिद्धहस्त गायक रहे, किन्तु लोकगीतों के क्षेत्र में उनका योगदान सर्व मान्यता प्राप्त है।

पं. राधावल्लभ जी ने विविध लोकगीतों को संग्रहीत कर एक पुस्तक की रचना की जिसका नाम है 'ऊँची अटरिया रंग भरी' और इस पुस्तक में उन्होंने सरिया, सोहर, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, टोना, जेवनार, विदाई, चकिया, पनघट, कजरी, झूला, चौमासा, चैती, सोहनी, झूमर, रसिया, देवीगीत, धमार अने प्रकार के लोकगीतों को स्वरलिपिबद्ध किया है और उनका पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है।

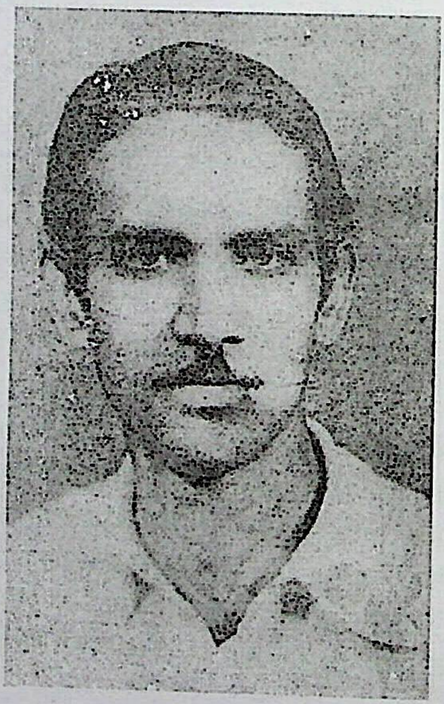

राधावल्लभ जी ने एक और महत्वपूर्ण पुस्तक 'सा रे ग म' का लेखन किया है जिसमें संगीत के सिद्धान्त पक्ष का विश्लेषण किया गया है। उत्तर प्रदेश में सन् 1952 में इस पुस्तक को इण्टरमीडिएट पाठ्यक्रम हेतु मान्यता प्रदान की गयी।

पं. राधावल्लभ जीवन भर संगीत की जटिलता को सुलझाते रहे और उसकी कसौटी पर स्वयं को सँवारते रहे। उनमें शास्त्रीय संगीत की निपुणता थी, जिसके आधर पर उन्होंने असंख्य लोकगीतों को रागबद्ध करने को ऐतिहासिक कार्य किया।

सन् 1977 ईसवी में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने उनकी पुस्तक 'ऊँची अटरिया रंग भरी' का प्रकाशन किया, जो लोकगीतों को स्वरलिपियुक्त संग्रह है। अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष जयदेव सिंह जी ने प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा था-" श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी आकाशवाणी लखनऊ में लोकसंगीत के प्रसार का कार्य कई वर्षों से कर रहे थे। उन्हें उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के लोकगीत गायकों को सुनने और उनके गीतों को प्रसारित करने का अपूर्व अवसर प्राप्त था। वह केवल प्रसारक के पद के उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं करते थे, वह लोकगीत के मर्मज्ञ और प्रेमी भी थे। अतः लोकगीतों के जो भी श्रेष्ठ गायक आकाशवाणी में प्रसारण के लिए आते थे। उनके गीतों का वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरूचिपूर्ण चयन करते थे और उन्हें स्वरलिपि में निबद्ध करने का कार्य किया।"

जयदेव सिंह जी के अनुसार-"अपने देश के विभिन्न प्रदेशों के लोकगीतों में भारत के जनमानस का उल्लास और उसकी आकाँक्षाएँ बहुत भावपूर्ण रीति में में चित्रित हुई हैं। काव्य की दृष्टि से जो सहज, सुबोध और मार्मिक भावों की धारा उनके द्वारा प्रवाहित हुई है वह अनुपम है। स्वर और लय की दृष्टि से भी ये गीत बहुत ही मनमोहक हैं। इन गीतों में हमारे अभिजात संगीत के बीज का भी अंशतः दर्शन होता है।"

स्वरलिपि युक्त लोकगीत-संग्रह 'ऊँची अटरिया रंग भरी में प्रत्येक प्रकार के गीत का पहले संक्षिप्त वर्णन किया गया है, उसके बाद वह गीत स्वर और लय में मुद्रित किया है। लोकगीत 'सरिया' का संक्षिप्त परिचय देते हुए पं. राधावल्लभ ने लिखा- 'सरिया' अवध की एक अत्यन्त लोकप्रिय धुन है। इसमें गाये जाने वाले गीतों का मुख्य विषय माँ बनने वाली स्त्री की प्रसव पीड़ा है।

"प्रसव पीड़ा से लेकर, सन्तान उत्पन्न होने तक के काल का कभी करुण और कभी कटाक्षपूर्ण वर्णन के साथ ही इन गीतों में आने वाली सन्तान के स्वागत की उल्लासपूर्ण ललक 'सरिया' भी विशेष आकर्षण है।"

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी की आत्मजा सुश्री नीलम चतुर्वेदी के अनुसार-" लोकगीत एक तरह से किसी भी देश के अलिखित दस्तावेजों की तरह होते हैं। उनमें घटनाओं का बड़ा ही कलात्मक और अतिरंजित वर्णन होता है। लेकिन वे यथार्थ से कभी भी कटे हुए नहीं होते।

उत्तर प्रदेश के लोकगीतों की ग्रामीण संवेदना को, अपने तर्जे-वयाँ से 'चाचा' जी ने इतना व्यापक बनाया कि लोक कलाकारों की प्रतिष्ठा और उनके योगदान के प्रति जनता में चेतना पैदा हुई। ...'चाचा' को रुचि के आत्मिक सुख के अलावा जीवन में और कुछ नहीं प्राप्त हुआ। जबकि, स्वयं लोकगीतों को उनसे बहुत कुछ प्राप्त हुआ है।"

'ऊँची अटरिया रंग भरी' (स्वरलिपि युक्त लोकगीत-संग्रह) में स्वर्गीय पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने जिन संस्कार गीतों का चयन किया है, वे निम्न हैं:-

1- सरिया - (हँसत खेलत घर आये)

2- सोहर -

(क) कोई कोठे से उतरी भवजिया मनरंजना

(ख) गंगा जमुना के बीच तिवैया एक तप करे

(ग) धिया बिन कोख न सोहै

(घ) चलौ गयौ सखिया वन कूँ

(ड़) चैतहि के तिथि नौमी त नौबत बाजे हो

(च) छापक पेड़ छेउलिया से पतवन गहवर हो

(छ) मोरे आँगन राजा चन्दन बिरवा रे

(ज) राजा हम कोइका मनावै न जइबै

3- अन्नप्राशन -(आज मोरे लीपन पोतन अन्नप्राशन हो)

4- गुड़न - (झगरै नउआ मूड़न की बेरिया)

5- जनेऊ-

(क) आओ सखी सब मंगल गायें

(ख) गंगा के तीरे तीरे छेउल केर बिरवा

(ग) नदिया किनारे बरुआ फिरै

(घ) हाथ दुनैया कुस पैंती

6- विवाह गीत -

(1) गीत (बुन्देलखण्डी)- ऊँची अटरिया रंग भरी

(2) बाजत आवैला ढोल दमामा

(3) मामा सुघर घर ढूँढ़ों रे मामा

(4) सावन सुगना में घीयु गुर पालेउ

(5) हरे हरे बाँस कटाओ मोरे बाबुल

7- बन्ना

(1) केसरिया बन्ना बागों में आया

(2) परदे के भीतर कर लोरी

(3) इन गलियन हैके लैयो जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4) बन्ना पहिने बसंती चोरा रे
(5) बन्ने के नैना जादू बान
(6) राम पै जदुआ कोई मत डारो
(7) श्याम बने बन्ना दुलहा जी
(8) सिया समाज सुहाग सुन्दरी

8- टोना - (माई रे मौं टोना करिहौं)

9- द्वारचार - (द्वार पै आयी बरात सखी रे)

10- कलेवा -
(1) आये करन कलेवा चारों कुँवर राजा जनकपुरी
(2) कीरतं गोद गोपाल लिये मुख चूमत

11- गारी -
(1) घर घर बाजत बधउवा आये हैं लाला
(2) जनकपुरी के नारी रे गावैं हरि का गारी जी

12- ज्यौनार (जबही गोपाल चले मधुबन को)

13- विदाई गीत -
(1) अरी अरी बेटी पियारी रानी
(2) खाय लेहु खाय लेहु दहिया सेरे भात
(3) निबिया के पेड़ जिन काटेउ मोरे बाबुल
(4) हमारी दुलारी हो बेटी आँखी फेरी पुतरिया

14- सुहाग गीत - (आज सुहाग की रात चन्दा तुम उइहौ)

दिनचर्या गीत

15- खेत रखवानर - गीत
(अपने सिबनवाँ में रचल्यू मचनवाँ)

16- चकिया - गीत (गइले बिदेसवा ककस जिया बोधिब हो)

17- पनघट - गीत
(1) गीत बुन्देलखण्डी (नदिया लौं हमरे सँग चलौ)
(2) गीत बुन्देलखण्डी (ननद भौजइया दोऊ पनियाँ को निकरी)

18- सीला बीनने का गीत - (सासू की बीनी डलरिया रे)

ऋतु सम्बन्धी :-

19- कजरी -
(1) गीत - अरे रामा सावन मास सुहावन
(2) गीत - कान्हा तेरी बाँकी चितवनिया
(3) गीत - कैसे खेले जैबू सावन मां कजरी
(4) गीत - कौन रंग मुगवा कवन रंग मोतिया
(5) गीत - घेरि घेरि आयी सावन की बदरिया ना
(6) गीत - नहीं आये सजना हमार
(7) गीत - बदरिया बरसै रस की बूँद
(8) गीत - सखियाँ झूलन चली फुलबगियन

20- चौमासा -
गीत- प्रथम मास आसाढ़ हे सखी

21- चन्द्रावली -
गीत- ननद भावज पानी कूँ गयो रे

22- चैती -
गीत- हथवा लगत कुम्हलाय गैलो रामा

23- मल्हार -
गीत- अरी मैना उठी है घटा घनघोर

24- राछौर -
गीत- कहाँ से आये उमही रे कारी बदरिया

25- सावन -
गीत- अबकी सावन सैंया घर से न निकलो

26- सोहनी -
गीत- एक सुधि आइगैले नैहर की

27- हिंडोला -
(1) गीत-झूला धीरे झुलावो, सुकुमारी सिया हैं
(2) गीत- पड़े रे हिंडोले नौलख बाग में जी

उत्सव गीत :-

28- उलारा -
गीत- गिरधारी लाल गिरधारी लाल नख पै गिरधर गिरा धरे

29- कहरा -
(1) गीत- पिया ऊँचो रे अटरिया तोरी देखन चली
(2) गीत- बालू रेतिया डगर चलब कैसे
(3) गीत- मोरे मालिक श्री भगवान, सोच मन काहे का करी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4) गांत- हो कजरवा काहे दि हो, नैना कजरारे

30- घाटौ -

गीत- रामा चैइत अयोध्या

31- चौताल -

गीत - दृग देख कजर धोइ डारै बिना मदुराई

32 - झूमर -

(1) गीत - कँहवाँ ते आवैले कुँवर कन्हैया ऐ झूमर हो

(2) गीत- मचौ फाग घनघोर आज होरी झूमरी

33- देवी -

(1) गीत - उड़ि जाऊ रे सुगनवाँ गंगा पार

(2) गीत - कामना पूरन करौ माई

(3) गीत - कैसे के दरशन पाऊँ री माई संकरी दुअरिया

(4) गीत - झूमत झूमत मैंया अइली देव घरवा

(5) गीत - निबिया की डार मैया डालैली हिंडोलवा

(6) गीत - भुइयाँ मनावन चली मलिनियाँ

(7) गीत - मइया गढ़ पै बेला

(8) गीत - मोर महरानी विंध्याचल की रानी

(9) गीत - लिखि लिखि चिठिया असुरा पठावै

34- धमार -

(1) गीत - आयो रे रितुराज आज ये होरी खेलन आयो

(2) गीत - जमुना तट श्याम खिलैं होरी

(3) गीत - बाजै बाजै बंशी, मुरचंग, संख

35- डेढ़ताल -

गीत- सखी फागुन मास नियराये

36- मेला गीत-

(1) गीत - आज मोह रघुबर की सुधि आयी

(2) गीत - मैया की ऊँची नीची सुन्दर लहरिया

(3) गीत - मैं तो चली बद्रीनाथ

(4) गीत - रघुबर संग जाब, हम ना अवध मा रहिबै

37- रसिया -

(1) गीत - अपनौ वृज देखन को आय जैयो

(2) गीत - आज बिरज मा होरी है रे रसिया

(3) गीत - छूमछूम छननन ननन

(4) गीत - जसोदा तेरे लाला ने माटी खायी

(5) गीत - तेरी अधिक अनोखी चाल, नन्द के छलबलिया

(6) गीत - बन गये नन्दलाल लिलिहारी

(7) गीत - बिन विदूया भारत देश

(8) गीत - मत मारो दुगन की चोट रसिया

(9) गीत - मो सौं मोहन प्यारे बोल

(10) गीत - मो पै कैसी रे मोहिनी डारी रे

(11) गीत - राधा की छवि देख मचलि गयौ साँवरिया

38- लंगुरिया -

गीत- फिर कबहू न मैली होय लंगुरिया

39- होली -

(1) गीत - डगर मोरी छोड़ो श्याम

(2) गीत - ब्रज में हरि होरी मचायी

(3) गीत - मैं तो खेलूँगी कान्हा तोसे होरी बरजोरी

(4) गीत - मोरा भीजै रेशम चूनर हो

(5) गीत - रंग डारी गिरधारी चुनरिया

(6) गीत - लाला तुम रोको न बाट हमारी

"ऊँची अटरिया रंग भरी" नामक पुस्तक लोकगीत के मर्मज्ञ स्वर्गीय श्री राधावल्लभ जी द्वारा स्वरबद्ध विशिष्ट लोकगीतों का अद्भुत संग्रह है। उनकी यह अमर कृति भावी संगीतज्ञों का चिरकालिक मार्गदर्शन एवं जनमानस को आलोकित करती रहगी। ❑

पूर्व महापौर, लखनऊ
नन्द निकेतन, नाका हिण्डोला
लखनऊ-226004
मो. 9415020354

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सुरसरि सम सब कहँ हित होई'

● डॉ. आशाराम त्रिपाठी

श्रीरामचरितमानस की यह अर्द्धाली यशःकाय श्री राधावल्लभजी चतुर्वेदी के बहुआयामी व्यक्तित्त्व के सन्दर्भ में मुझे उपयुक्त लगी।

अक्टूबर, 1968 में आकाशवाणी, सारनाथ, वाराणसी से स्थानान्तरित होकर जब मैं आकाशवाणी, लखनऊ आया तब यहाँ के लिए नया नया था। लखनऊ की संस्कृति भी वाराणरी से बिल्कुल भिन्न। कुछ दिन तो मुझे परेशानी हुई किन्तु धीरे-धीरे यहाँ के वातावरण में ढल गया। एक दिन मैं स्टूडियो में 'संस्कृति पत्रिका' कार्यक्रम का सम्पादन कर रहा था उस समय एक प्रौढ़ सज्जन हाथ में कुछ टेप और स्टूल लिए उसी स्टूडियो में आ गए। गोरा छरहरा वदन तथा हँसमुख व्यक्तित्व वाले सज्जन को मैं देखता ही रह गया। मैंने उनका परिचय जानना चाहा किन्तु उसके पहले ही वे मुझसे पूछ बैठे-'क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूं? वैसे मैं अपना परिचय दे दूँ -'मेरा नाम राधावल्लभ चतुर्वेदी है। मैं यहाँ 'लोकसंगीत' का कार्यक्रम देखता हूं।'

मैंने उन्हें प्रणाम किया। फिर बताया-

'पण्डित जी, मेरा नाम डा. आशाराम त्रिपाठी है। मैं यहाँ आकाशवाणी, सारनाथ, वाराणसी से स्थानान्तरित होकर आया हूँ। यहाँ हिन्दी और संस्कृत वार्ता विभाग में सम्पादक के पद पर कार्यरत हूँ।'

'अच्छा, त्रिपाठी जी, आप अपना कार्य पूरा कर लीजिए, मैं भी दूसरे स्टूडियो में कुछ रिकार्डिंग चेक कर लूं। फिर साथ-साथ चाय पिएंगे।' कहकर चतुर्वेदी जी दूसरे स्टूडियो में चले गए कार्य सम्पन्न होने के बाद वे मेरे पास आये और बोले 'त्रिपाठी जी, कार्य सम्पन्न हो गया'

मैंने कहा 'जी पण्डित जी।

वे बोले आओ चलें। फिर हम दोनों एक कैण्टीन में गये। चतर्वेदी जीने कहा-चाय के साथ क्या लोगे? मैने कहा ' दो बिस्कुट।

वे हंस पड़े बोले 'लंच में कुछ कुछ लाए भी नहीं हो और दो बिस्कुट! इस बार वे और जोर से हँसे फिर कुछ अन्य खाद्य वस्तुओं के लिए आर्डर करने लगे। मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया। 'पण्डितजी , मैं अकेला हूँ इसलिए लंच नहीं लाया। वाराणसी की आदत है। वहाँ तो मैं चाय भी नहीं पीता था। वहाँ तो दूध-दही, रसगुल्ले, रबड़ी, मलाई और तरह तरह के मिष्ठान मिल जाते हैं, जिन्हें खाने की आदत है। यहाँ तो मैं आपका साथ देने के लिए आया हूँ।

वे बोले 'हा, यह तो है। अच्छा मेरे कहने से दो बिस्कुट और ले लो। मैंने कहा 'ठीक है'।

जब पैसा देना चाहा तो पण्डित जी ने मेरा हाथ पकड़ लिया 'बोले- मैं आप से बड़ा हूँ।

उस समय उन्होंने मेरे साथ एक बड़े भाई के रूप में व्यवहार किया जो मुझे बहुत अच्छा लगा। यहाँ मैं अकेला था और होटल में रहता था।

उन्होंने कहा 'आशारामजी, आज से मैं आपका बड़ा भाई हूँ और कोई भी परेशानी हो तो निःसंकोच बताना।'

मैंने कहा 'जी भाई साहब।' तब से मैं उन्हें बड़े भाई या भाई साहब कहकर ही सम्बोधित करने लगा।

बड़े भाई चतुर्वेदी का व्यक्तित्व इतना प्रभावी था कि दिन में एक बार बिना मिले दिन खाली लगता था।

मैं आदरणीय बड़े भाई के 'पण्डित जी' उनकी विद्वता के कारण कहता था। 'पण्डा' का अर्थ है 'बुद्धि'। जिसके पास बुद्धि है अर्थात् जो बुद्धिमान है वह पण्डित है। उस समय बड़े भाई 'चतुर्वेदी' जी संगीत के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठ हो चुके थे। उनके समय में आकाशवाणी, लखनऊ लोकसंगीत के क्षेत्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्रगण्य था। लोग उच्च कोटि के संगीतकार होने के कारण ही उनका सम्मान करते थे। वस्तुतः-

'वार्ता च कौतुककरी विमला च विद्या,
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंगनामेः।
तैलस्य विन्दुखि वारिणि दुर्निवार,
एतत्रयं प्रसरति स्वयमेव लोके।।

अर्थात् कौतुककरी बात और विद्वत्ता तथा कस्तूरी की गन्ध, ये तीनों पानी में तेल की बिन्दुओं के समान स्वयं फैल जाती है। इन्हें कोई रोक नहीं सकता।

एक दिन बड़े भाई (चतुर्वेदी जी) के साथ संगीत की चर्चा हो रही थी। वे बोले 'आशाराम जी, मैं अपना दायित्व निभा रहा हूं, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जब तक मैं संतुष्ट नहीं हो जाता तब तक किसी भी रचना को प्रसारणार्थ नहीं भेजता। यह मुझे अच्छा लगा। इसी बात पर मैंने उन्हें महाकवि भवभूति का यह श्लोक सुनाया जो उन्हें बहुत अच्छा लगा।

वस्तुतः महाकवि भवभूति की एक कृति की किसी ने निन्दा की थी उसी के सन्दर्भ में महाकवि ने लिखा-

'येके चिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः"।
उत्पलस्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।'

अर्थात- जो कोई मेरी कृति की निन्दा करते हैं वे कुछ जानते हैं। उनके लिए मैं रचना नहीं करता। मैं तो अपने जैसे संस्कृतज्ञों के लिए लिखता हूँ। पता नही ऐसे लोग इस समय यहाँ है या भविष्य में उत्पन्न होंगे क्योंकि समय की कोई सीमा नहीं और पृथ्वी विशाल है।

इसे सुनकर बड़े भाई गद्गद हो गए।

बड़े भाई के व्यक्तित्व से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। वे मलय पर्वत के समान थे जो अपने सुगन्ध से सारे वातावरण को सुगन्धित कर देता है और उसके सम्पर्क में आने वाले सभी वृक्ष चन्दन बन जाते हैं। भारतीय संस्कृति में मलय पर्वत को सोने और चाँदी के वर्ततों से श्रेष्ठ माना गया हैं-

'किं तेन हेमविभीरण रजताप्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यमिहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कंकोलानिम्ब कुटजा अपि चन्दना : स्युः।।'

जहाँ तक मुझे ज्ञात है बड़े भाई (चतुर्वेदी जी) सबके प्रिय थे। मैंने कभी उन्हें क्रोध की मुद्रा में नहीं देखा।

मैं तो उस समय आकाशवाणी, लखनऊ में अकेला ही था भ्राता स्वरूप पं. चतुर्वेदी जी के कारण निश्चित होकर अपना काम करता था। उनका विचार था कि ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से अपना काम करना चाहिए शेष ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए।

प्रायः समय निकालकर मैं बड़े भाई (चतुर्वेदी जी) के कक्ष में आ जाया करता था- तब कुछ साहित्यिक चर्चाएं भी होती थीं। वे मुझसे मेरी रचनाएं सुनते और प्रशंसा करते। वे मेरी प्रशंसा करके मुझे प्रोत्साहित करते थे। गोस्वामी तुलसीदास भी यही कहते हैं-

'निज कवित्त केहि लागन नीका।
सरस होउ अथवा अति फीका।।
जे नर भनिति सुनत हरषाहीं।
ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।।'

उनका विचार था कि जो लिखा जाय वह प्रेरणाप्रद होने के साथ जीवनोपयोगी भी हो। बड़े भाई जी निश्छल व्यक्तित्व के धनी थे। वे किसी की भी निन्दा नहीं करते थे। मनसा, वाचा, कर्मणा वे सबका भला ही सोचते थे। वे दूसरे के गुणों का बखान करते थकते नहीं थे। वास्तव में वे एक सन्त थे। परोपकार करना उनका मुख्य लक्ष्य था।

ऐसे कितने सन्त होंगे
'मनसि वचसि कामे पुण्यपीयूषपूर्णा
स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमणून, पर्वतीयकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्तिसन्तः कियन्तः।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन बड़े भाई साहब अस्वस्थ दिखे। वैसे तो वे सदा मुस्कुराते रहते थे। हँसमुख थे। अपनी बातों से प्रायः वे दूसरों को हंसाते ही रहते थे। किन्तु उस दिन वे अन्यमनस्क लगे।

मैंने उनसे पूछा 'बड़े भाई, आज सुस्त, सुस्त लग रहे हैं, क्या बात है?'

'आज मूड ठीक नही हैं आशारामजी। बैठिए।' वे बोले। 'बड़े भाई, मैं आपका मूड ठीक कर दूँगा किन्तु एक शर्त है।' वे बोले - 'क्या शर्त है?'

मैंने कहा 'आज राजा भोज के दरबार में चलेंगे?

वे बोले - 'चलूंगा।'

मैंने कहा- तो चलिए।

एक दिन राजा भोज के दरबार में विद्वन्मण्डली के बीच राजा भोज ने एक प्रश्न रखा 'अमृत कहाँ है?

उत्तरस्वरूप एक विद्वान ने कहा- 'अमृत समुद्र में होता है'। दूसरे ने कहा 'अमृत चन्द्रमा में होता है।' तीसरे ने कहा-अमृत 'स्त्री के मुँह में होता है।' चौथे विद्वान ने कहा 'अमृत नाग लोक में होता है।'

पांचवे विद्वान ने कहा 'अमृत स्वर्गलोक में होता है।'

इस पर छठे विद्वान ने कहा 'अमृत भगवद्जनों के कण्ठ में होता है।

इसपर प्रश्न हुआ कैसे?

'अब्धौ विधौ च वधुमुखे फणिसां निवासे,
स्वर्गे सुधा वसति वेदविदो वदन्ति।
क्षारात्क्षयात् प्रतिभृतादगरलाच्युताच्च,
कण्ठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम्।।'

अर्थात् यदि समुद्र में अमृत होता तो उसका पानी खारा क्यों होता है। यदि चन्द्रमा में अमृत होता तो वह घटता बढ़ता क्यों है। यदि स्त्री के मुंह में अमृत रहता है तो उसका पति कालकवलित क्यों हो जाता है। यदि नागलोक में अमृत है तो सर्पो में विष क्यों होता है। यदि स्वर्गलोक में अमृत होता तो देवता च्युत क्यों होते हैं।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि अमृत सदा भगवज्जनों के कण्ठ में होता है।

इस उत्तर से प्रभावित होकर राजा भोज ने उस विद्वान को विशेषरूप से सम्मानित किया।

यह सुनकर बड़े भाई बोले- आशाराम जी एकाध और सुनाओ-'मैंने कहा सुनिए भाई साहब।'

एक दिन राजा भोज के दरबार में उपस्थित विद्वान राजा भोज की प्रशंसा कर रहे थे। एक विद्वान दूसरे से बढ़कर प्रशंसा कर रहा था एक ने कहा

'भोजप्रतापं तु विधाय धात्रा,
शेषैर्निरस्तैः परमाणुभिः किम्।
हरेः करेऽमूत् पवि अम्बरे च
भानुः पयोधेरुदरे कृसानुः।।'

अर्थात् राजा भोज के प्रताप की रचना करने के बाद शेष परमाणुओं से इन्द्र के हाथ में सुशोभित होने वाले वज्र, अकारण में सूर्य और समुद्र में रहने वाले बड़वाग्नि की रचना की। इस तरह विद्वान- राजा भोज का गुणगान कर रहे थे।

अन्त में एक विद्वान ने राजा भोज की प्रशंसा करते हुए कहा-

'यथा यथा भोजयशो विवर्धते,
सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम्।
तथा तथा में हृदयं प्रदूयते
प्रियालकालीधवलत्व शंकया।।'

अर्थात - जैसे-जैसे राजा भोज का यश बढ़ता जा रहा है जो तीनों लोकों को श्वेतवर्ण करने को उद्यत है।

(यश का रंग श्वेत माना गया है) - वैसे वैसे मेरे दिल़ की धड़कन बढ़ती जा रही है।

लोगों ने पूछा - क्यों?

विद्वान बोला इसलिए कि मेरी प्रिया के काले केश श्वेत न हो जायें। इस पर राजा भोज ने उसे सबसे अधिक पुरस्कार से सम्मानित किया। यह सुनकर बड़े भाई मुस्कुराए बोले वाह वाह! चलो चाय पी जाय। शर्त है कि भुगतान मैं करूंगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़े भाई (पं. चतुर्वेदी जी) का नाम 'राधावल्लभ' था जो भगवान श्रीकृष्ण का पर्याय है। संयोग से बड़े भाई कृष्णभक्त थे। वे भगवान श्रीकृष्ण के कर्मयोग से प्रभावित थे। उन्हें चक्रधारी कृष्ण की अपेक्षा वंशी वाले कृष्ण अधिक अच्छे लगते थे। उन्हें यह श्लोक बहुत पसन्द था।

'वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरा दरुणविम्बफलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परम् किमपि तत्त्वमहं न जाने।।'

बड़े भाई मुझसे कहते 'आशाराम जी, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से आप अपना काम करो। फल ऊपरवाला अवश्य देगा। आप तो पढ़े लिखे व्यक्ति हो। चिन्ता किस बात की।

बड़े भाई (चतुर्वेदी जी) आशुतोष थे, अजातशत्रु थे। उनके सभी मित्र ही थे। वे सब के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहते थे।

गोस्वामी जी की यह चौपाई बड़े भाई के व्यक्तित्व की परिचायक है-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई।।

बड़े भाई (पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी) आकाशवादी के रत्न थे। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। प्रसारण सम्बन्धी बहुत सी बारीकियाँ सीखीं। उनकी सीख मेरा पाथेय बनी। आज भी उनका मुस्कुराता चेहरा आंखों के सामने आ जाता है। बड़े भाई के अनूठे व्यक्तित्व को प्रणाम करता हूँ।

हम सब धन्य हैं।

'धन्या त्वदीया जननी नितान्तं,
धन्यः पिता यस्य सुतस्त्वमेव।
आकाशवाणी तु अतीव धन्या,
वयं च सर्वेश्रोता रोऽपि धन्याः।।' ☐

सी-1/1'ओ', विशेष खण्ड-2, गोमती नगर,
लखनऊ। फोन : 0522-2720287

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे चाचा

• नीलम चतुर्वेदी

जिसका जीवन न संगीत की तरह ललित रहा हो न लोकगीतों की तरह स्वाभाविक, ऐसे कलाकार की जीवनी किसी सीमित लेख में अंकित कर पाना मेरे ऐसे सामान्य व्यक्ति के लिए अत्यधिक कठिन है।

लोकगीत संकलनकर्ता एवं उनकी धुनों को स्वरलिपि देने वाले, संगीत शिल्पी राधावल्लभ के पिता पण्डित टीकाराम चतुर्वेदी अंग्रेजों के जमाने में नाज़िर थे। फ़रमान बरदारी के लिए वे जितने विनम्र थे उनके ही घर के सदस्यों पर अपनी सत्ता और अधिकार को जताने के लिए खूंखार भी।

पंडित टीकाराम चतुर्वेदी की छठी संतान के रूप में, बालक राधावल्लभ का जन्म, 12 जनवरी,1917 को मुरादाबाद में हुआ था। स्कूल की उम्र में ही उनकी पीठ पर पिता के कोड़े ऐसे पड़ने लगे, मानों किसी घोड़े को ज़िन्दगी के मैदान में उतरने की ट्रेनिंग दी जा रही हो। छात्र राधावल्लभ को किताबों और पिता से समान भय लगता था। वे अपने पिता को परिवार का दरोगा समझते थे। पिता उन्हें पढ़ा-लिखाकर दरोगा बनाना भी चाहते थे। पिता को अपने पुत्र की यह उद्दण्डता पसंद नहीं थी कि वह 'संगीत' जैसी औरताना चीज़ की ओर बचपन से ही लपक जाये।

स्व. राधावल्लभ के स्वर में बेहद मर्दानगी थी। मां से विरासत में पाये संगीत के संस्कार, वे निरंतर अपने खून में विकसित करते रहे। पढ़ाई-लिखाई उनके समाने सज़ा की तरह रखी गयी थी। इसलिए वे किताबों से भरे बस्ते को सज़ा में पाया हुआ बोझ समझते थे। इधर-उधर की किताबें पढ़ने में उनकी रुचि अधिक थी। अपनी रुचि के अनुसार पढ़ी किताबों से स्वाध्याय तो प्रबल हुआ, लेकिन वे कोई बड़ी डिग्री नहीं ले सके। घर में उन्हें अपना दम घुटता नजर आया तो 18 वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर लखनऊ भाग आये। भागने के पीछे पिता की निर्मम मारपीट और संगीत के प्रति अतिरिक्त अनुराग कारण बनकर उन्हें जोखिम उठाने की ताकत दे रहे थे।

राधावल्लभ के अंदर सदैव ही रूढ़िभंजक, विद्रोही प्रकृति का मनुष्य मचला करता था। अपनी साफ़गोई और ईमानदारी के कारण वे प्रारम्भ में तो प्रत्येक मिलने वाले को अत्यधिक विचलित कर देते थे। किन्तु जो उनको एक बार पहचान लेता था, वह सदैव के लिए उनका प्रिय पात्र बन जाता था। लखनऊ जैसे नगर में, जहां के 'लखनौव्वा' मिजाज की पर्तों के भीतर, असलियत पहचाननी मुश्किल हो जाती है, उन्होंने न केवल अपनी संगीत की शिक्षा पूरी की बल्कि अपनी प्रतिभा के बल पर इसी नगर को अपना कार्यक्षेत्र भी बनाया। आगे चलकर उनका वास्तविक कार्य क्षेत्र 'लोकगीतों' का 'आदिम संसार' बना। किन्तु लखनऊ पर वे चारों जानिब से फ़िदा थे।

राधावल्लभ के पिता की मृत्यु के बाद युवा भाइयों के (एक भाई को छोड़कर) परिवार में कन्या-पक्ष प्रबल रहा। उनके साथ दुर्भाग्य इस कदर संलग्न रहा कि भाइयों की धड़ाधड़ अकाल मृत्यु होती रही। भाइयों की विधवाओं, उनकी नादान कन्याओं, अपनी उन बहिनों को जिन्होंने शादी ही नहीं की और जिन्होंने शादी की व बच्चे नहीं हुए; उन सबको उन्होंने अपनी सीमित आय में असीमित सुख पहुंचाने के निरंतर प्रयास में अपनी पत्नी तथा एकमात्र पुत्री (इन पंक्तियों की लेखिका) को सदा हाशिये पर रखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाल परिवार के राधावल्लभ जी का संगीत रोटी, कपड़ा, जूते, स्कूली फ़ीस, सिनेमा तथा खाने-पीने की चटपटी चीजों के अलावा कुछ नहीं था। जबकि वे खुद केवल संगीत को एक सामाजिक सार्थकता देने के लिए ज़िंदा रहने को जरूरी समझते थे। वे दूसरों की चिंता में इतने खोये से रहते थे कि अपने बारे में सोचने का उन्हें कोई वक्त ही नहीं मिला।

मुझे (इन पंक्तियों की लेखिका को) पिता जी (राधावल्लभ जी) हमेशा 'बेटा' ही समझते रहे। मैं यह कमी सदैव महसूस करती रही कि 'पिता' का जैसा प्यार मुझे मिलना चाहिए था- वह नहीं मिला। क्योंकि मैं उन्हें 'पिता' भी नहीं कहती थी। 'चाचा' कहकर जीवन भर काम चलाया। परिवार में बड़ी दीदियों के कारण मैं उन्हें 'चाचा' कहकर ही अपने ज़्यादा करीब पाती थी। 'पिता' कहते ही या तो शेष परिवार से मैं अलग हो जाती थी या फिर वे 'संबंधों के समाजवाद' में गड़बड़ पाते थे। इसलिए दीदियों का दिया हुआ 'चाचा' सम्बोधन आज भी मुझे 'पिता' से अधिक स्फुरण देता है। भले ही दीदियों के लिए चाचा का मतलब सिर्फ 'चाचा' हो।

शरारती वे (चाचा) मरते दम तक रहे। मुझे ऐसा लगता है, जैसे 'चाचा' (राधावल्लभ जी) की 'मृत्यु' भी, उनके द्वारा मां की और मेरे साथ की गयी, एक शरारत है। वे देवताओं का सारा श्रेय किसी इंसान को देना चाहते थे। इससे चीजों और संबंधों को समझने के उनके भिन्न दृष्टिकोण का पता चलता था।

बचपन में एक वार मेरे दादा जी ने 'चाचा' को ठाकुर जी की पूजा का काम सौंपा । जाड़ों के दिन थे। पेड़ धीरे-धीरे अपने पत्तों को त्यागते जा रहे थे। दादा जी चाहते थे कि अपने कुछ संस्कार पुत्र पर त्यागता जाऊं- सो भगवान की प्रतिमा को नहलाने,आरती उतारने और भोग लगाने तक का सारा काम 'चाचा' के भरोसे छोड़ दिया गया। जिस दिन जाड़ा कस कर पड़ रहा होता वे दादा जी से पूछते-"क्या आज भी भगवान को नहलाकर आरती उतारूँ ?"

प्रश्न सुनकर मूर्तिपूजक दादाजी के मन को बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठेस पहुंचती। वे चाचा को 'मूर्ख' और 'नास्तिक' कहकर फटकारते। एक ऐसी ही किसी ठंडी-सी, हड्डियां कंपाने वाली सुबह को 'चाचा' ने आरती उतारकर जलती हुई बत्तियों सहित भगवान की अलमारी को पूरी तरह बंद कर दिया। थोड़ी देर में घर भर में आग लगने का हल्ला हो गयाँ। अलमारी जलकर पूरी तरह राख हो गयी। क्रोधी दादा जी के क्रोध का पारावार नहीं था। 'चाचा' की पिटाई हुई। पिटते हुए उन्होंने कहा "मैंने तो, देवताओं को जाड़ा न लगे, इसलिए जलती हुई आरती छोड़कर अलमारी बंद की थी।'

हर बात के लिए 'चाचा' का एक अलग ही तर्क हुआ करता। वे सही अर्थों में आदमी होने को बहुत अहमियत देते थे। इसीलिए उनके मित्रों में, उनके शिष्यों और परिचितों में, उनके प्रति आज भी अपार स्नेह भाव व श्रद्धा है। उनके सुख-दुख के प्रति रुचि लेने में कई प्रतिष्ठित लोग रहे हैं जिन्हें वे मित्र व हितैषी के रुप में आदर की दृष्टि से देखते थे। वे गुणियों की कृपा और स्नेह से प्रभावित होते थे तथा दुष्टों की 'प्रियवाणी' से अत्यंत भयाकुल। उन्होंने अनेक निर्धन छात्रों को अपनी ट्यूशनों के पैसों से चुपके-चुपके सहायता पहुंचायी। इस बात का पता शेष परिवार को तब लगा जब उनकी मृत्यु के बाद इस तरह के सर्वथा अज्ञात अपरिचित छात्र संवेदना प्रकट करने हमारे पास आये। वे अपनी सामर्थ्य से अधिक दयालु प्रकृति के थे शायद इसीलिए वे कभी अव्यावहारिक व कड़वे नहीं देखे गये।

खाने-पीने की चीजों का 'चाचा' को भारी शौक था। मेहमाननवाज़ी उनकी कमज़ोरी थी। उद्दाम शालीनता से रहने का उन्हें मर्ज़ था। आत्मविश्वास उनमें ग़ज़ब का था किसी की भी बुद्धि और गुण के वे बड़े कायल थे। कुनबा जोड़ने का उन्हें बेहद शौक था।

'चाचा' के सहकर्मी और अवधी के सुप्रसिद्ध कवि एवं व्यंग्यकार श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' के शब्दों में-

"राधावल्लभ जी की नियुक्ति आकाशवाणी लखनऊ के 'पंचायतघर' में लोक संगीतकार के पद पर हुई थी। इस प्रकार हम एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में आये। मैं उन्हें लोक रचनायें देता और वे उन्हें लोक स्वर देकर प्रसारित करते।

सुगम संगीत तथा लोक संगीत में तो राधावल्लभ जी प्रवीण थे ही-शास्त्रीय संगीत में भी पारंगत थे। उनके संरक्षण में 'पंचायत घर' के लोकगीतों की धूम मच गयी। नये पुराने लोकगीत कभी एकल स्वर में, कभी युगल गान तथा कभी सामूहिक गान के रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। परिमार्जित कंठ और शास्त्रीय संगीत के अगाध ज्ञान के कारण भी उनकी कला में चार चांद लग गये थे। शब्दों के भावानुसार शास्त्रीय स्वर देने में उन्हें महारत हासिल थी। 'जय जय लछिमी गनेस', 'नाचत नटराज आज', 'बाजत बांसुरी मृदंग' इत्यादि मेरे द्वारा रचित ध्रुव पदों को जो स्वर उन्होंने प्रदान किये थे वे अब भी बहुत से श्रोताओं तथा कलाकारों के कानों में गूंजते रहते हैं। उनके गाये हुए गीत जब भी आकाशवाणी से प्रसारित होते हैं-सम्पूर्ण व्यक्तित्व समेटे हुए उनकी काया परिचितों के मध्य साकार हो उठती है। शास्त्रीय संगीत के वे ऐसे पंडित थे कि बड़े-बड़े नामी कलाकारों का एक भी स्वर ग़लत लगने पर वह रिहर्सल के समय स्टूडियों में ही उन्हें टोक देते थे। याद्दाश्त इतनी अच्छी थी कि वर्षों पूर्व गाये गाने भी उनके स्मृति-पटल पर अंकित रहते थे।

ज़ितने अच्छे कलाकार थे उतने ही अच्छे वे इंसान भी थे। राधावल्लभ जी स्पष्टवादी, परिश्रमी, संवेदनशील, हँसमुख तथा विनोदप्रिय व्यक्ति थे। कुछ वर्षों पूर्व जब मैं अस्वस्थ पड़ा था तब वे स्वयं अस्वस्थ होते हुए भी मुझे देखने आते और देव, बिहारी, पद्माकर, रत्नाकर तथा अनेक कवियों शायरों की ललित रचनाएं सुनाकर मुझे मानसिक स्वस्थता प्रदान करने का मांगलिक प्रयास किया करते थे।

उनके निधन से आकाशवाणी ने ऐसा कलाकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खो दिया जिसकी पूर्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मित्र मण्डली से एक अच्छा मित्र, कलाकारों से एक अच्छा सहयोगी और इंसानों से एक अच्छा इंसान बिछुड़ गया है।"

'चाचा' के जीवन काल में ही उनकी प्रतिभा को गांवों की जनता और शहरों के संस्कारित श्रोताओं की प्रियता प्राप्त हो गयी थी। अपनी संगीत साधना पर उन्होंने कभी भी भौतिक साधनहीनता को हावी नहीं होने दिया। कभी-कभी अपनी आर्थिक विपन्नता में जिस रईसी का बोध वे परिवार पर छिड़कते थे उस वजह से उनकी परेशानियां अच्छी खासी बढ़ जाती थीं। लेकिन उनके व्यक्तित्व का सबसे मजेदार पहलू भी यही था कि वे कष्ट और बेचैनियों से ही अपने धैर्य की खुराक वसूलते थे। मन में संगीत की समृद्धि और उदारता को संजोये हुए 'लालकुआं' के जिस फटीचर इलाक़े में उन दिनों रहते थे उसके सम्बन्ध में लखनऊ से प्रकाशित होने वाली तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिका 'वर्तिका' में " लोक कलाकार राधावल्लभ" शीर्षक से स्व. नंदराम जी ने एक लेख लिखा था जिसके एक अंश को मैं यहां उद्धरित कर रही हूं । इससे उनकी तात्कालिक स्थिति का ज्ञान पाठकों को हो जायेगा।

"आज के समाज में अभी भी गायकों को जितना ऊंचा दर्जा दिया जाना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। संगीत कोई 4-6 दिन में पारंगत कर देने की कला नहीं है। साधक मन-प्राण से रागों की गहरायी में डूबकर उसकी थाह लेता है। किन्तु इतना सब करने के बाद भी सितम क्या होता है। कलाकार को गुज़ारे के लिए कला के साथ बलात्कार करना पड़ता है। पूंजीवादी व्यवस्था के सामने जाकर दरवाज़े पर भीख मांगना होता है और कलाकार राधावल्लभ भी इसके शिकार हैं।

यह सही है कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से लेकर फ़कीर तक इस जन कलाकार को सुना और सिर धुना है। लेकिन इससे राधावल्लभ की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हुई है। इसी कारण वह लखनऊ नगर में लालकुंए की एक गन्दी गली में दो कमरों में पूरी गृहस्थी के साथ जीवन यापन के लिए विवश हैं। कभी उस गली को पार कर उनके घर जाइए , तो उत्तर भारत का श्रेष्ठ लोक संगीतज्ञ क्षमा मांगते हुए कहेगा- 'भाई माफ कीजिएगा, मेरे यहां बैठने को यह टूटा तख़्त है, जरा पीछे होकर आराम से बैठ जाइए।' क्षण भर के लिए उस जगह की कल्पना कीजिए जहां लड़कों का हुड़दंग, मेहतरों की कांय-कांय और मोटरों की पों-पों से रियाज़ करते कलाकार की सारी तन्मयता टूक-टूक हो जाती है।

लेकिन कठिनाईयों से जूझना राधावल्लभ जी की अपनी विशेषता है, अपना व्यक्तित्व रहा है। भयंकर आर्थिक संकटों और अड़चनों के बावजूद राधावल्लभ 'वल्लभी सारंग' को सिद्ध करने के संकल्प में लगे हैं। एक ओर आर्थिक भार का दबाव, मजबूरियां और कला को अपने उच्च स्थान से गिराकर बाज़ारू बना देने का चौतरफ़ा दबाव, दूसरी ओर संगीत की महान परम्परा को निर्भीकतापूर्वक ऊंचा और ऊंचा ले जाने की तमन्ना, उनके नेत्रों में बेचैनी की लपट बनकर जलती रही है। यही कारण है कि वे खोये-खोये से रहते हैं। वह बड़े-बड़े जलसों में गाते हैं, रेडियो पर गाते हैं और सीलोनी कलाकारों के आमंत्रण पर सीलोन जाने की भी सोच रहे हैं। लेकिन उनको संतोष नहीं है। कितने दुख की बात है कि वर्तमान उत्तर-प्रदेश की सरकार इस सिरमौर गायक के महत्व की ओर ध्यान नहीं दे रही है।

जब कभी आप उनके घर जायेंगे, तब नीलम अपनी तोतली भाषा में उत्तर देगी 'ताता दी हैं नहीं, तहीं दये हैं....।' और कोई नहीं कह सकता है कि वे कहां गये हैं। आपको यही सोचकर संतोष करना पड़ेगा कि कहीं महफिल जुड़ गयी होगी और अब चौबे जी को न दिन की सुधि और न रात की।

40 वर्ष में राधावल्लभ जी को अपने उस भविष्य पर विश्वास है जब मनुष्य मुक्त होगा, कला पूंजी की दासी न होगी और गायक नये विहान का गौरव मुक्त गीत गायेगा।.... लेकिन ऐसा कब होगा........???"

'चाचा' के अनेक शिष्य हैं। वे बड़ी श्रद्धा और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगन से उनसे प्राप्त शिक्षा का उपयोग करने की दिशा में सचेष्ट हैं। उन्हीं में से एक योग्य श्री श्याम किशोर रस्तोगी ने बताया-

"राधावल्लभ जी का संगीत के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। भातखण्डे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ से संगीत विशारद की उपाधि पाकर भी लोक-संगीत के प्रति उनका मोह जारी रहा। उन्होंने अथक परिश्रम करके उत्तर प्रदेश के लोकगीतों का संकलन किया। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से लोकधुनों को उनके शुद्ध रूप में श्रोताओं के सम्मुख रखकर उन्हें उनका उचित स्थान प्रदान किया। अवध के लोकगीतों पर उन्होंने विशेष रूप से चिंतन व मनन किया था और उन्हें स्वरबद्ध करके आगामी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित भी कर दिया है। यूं तो राधावल्लभ जी ध्रुपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, ग़ज़ल, आदि सभी शैलियों में निष्णात गायक रहे, किन्तु लोकगीतों के क्षेत्र में उनका एकाधिकार सर्वमान्य एवं निर्विवाद है।

संगीत के सिद्धांत-पक्ष पर एक सर्वजन सुलभ किन्तु सूक्ष्मग्राही एवम् प्रामाणिक ग्रंथ 'सा रे ग म' लिखकर, विषय प्रतिपादन की दृष्टि से, राधावल्लभ जी ने ऐसा स्तुत्य प्रयास किया है, जिसकी सराहना सभी समीक्षकों ने मुक्तकंठ से की है। 'सा रे ग म' संगीत शिक्षा के क्षेत्र में उनकी एक सुन्दर उपलब्धि है।"

संगीत की शास्त्रीयता और उसकी जटिलता की खराद पर 'चाचा' हमेशा खुद को तराशते रहे। लोकगीतों को रागबद्ध करने में शास्त्रीय निपुणता की एक बड़ी आवश्यकता को उन्होंने पूरा किया। इस कार्य के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को झोंक देने की कल लगन अन्य किसी कलाकार में उस समय नहीं थी।

लोकगीतों में उस समय न धन था, न प्रतिष्ठा थी। लेकिन जिस मानवीय सच्चाई और रिश्तों की गर्मी का आभास उन्हें लोकगीतों के सटीक प्रस्तुतीकरण में होता था, उसकी तुलना इतिहास के उस क्षण से की जा सकती है जब 'बुद्ध' को अपनी बात प्रकट करने के लिए 'संस्कृत' की अपेक्षा 'पाली' जैसी जनभाषा माध्यम के रूप में ज़्यादा उचित लगी थी। क्योंकि लोकगीतों में देहात के नगण्य, दलित और अभावग्रस्त स्त्री-पुरुषों का वह जीवन-दर्शन नत्थी होता है जो किसी भी कला के शास्त्रीय स्वरूप में नहीं होता है। अतः लोकगीतों में वह 'आदिम ऊष्मा' भाषा के ताज़ा और यथार्थ कलेवर में आज भी मौजूद है जो 'जनभाषा' के स्वरूप को पनपाने के लिए खाद-पानी का काम करती है।

लोकगीत एक तरह से किसी भी देश के अलिखित दस्तावेजों की तरह होते हैं। उनमें घटनाओं का बड़ा ही कलात्मक और अतिरंजित वर्णन होता है। लेकिन वे यथार्थ से कभी भी कटे हुए नहीं होते।

उत्तर प्रदेश के लोकगीतों की ग्रामीण संवेदना को अपने तर्ज़े-बयां से "चाचा" जी ने इतना व्यापक बनाया कि लोक कलाकारों की प्रतिष्ठा और उनके योगदान के प्रति जनता में चेतना पैदा हुई।

अन्त में सशक्त रूप से यह कटु सत्य कहा जा सकता है कि चाचा को रुचि के आत्मिक सुख के अलावा जीवन में कुछ प्राप्त नहीं हुआ जबकि स्वयं लोकगीतों को उनसे बहुत कुछ प्राप्त हुआ है।

मुझे खुशी है कि 'चाचा' द्वारा लिपिबद्ध और स्वरबद्ध लोकगीतों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने के उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी के सत् प्रयास से उनकी आकांक्षाओं को एक सही आकार मिला तथा लोकगीतों के प्रेमी संगीतज्ञों एवं छात्रों को लोकगीतों की धुनों को कण्ठ में उतारने का स्वर्णिम अवसर भी। पुस्तक अनेक वर्षों से मांग में तो है किंतु अनुपलब्ध है। उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी से पुनः आशा बंधी है कि प्रकाशन श्रृंखला में धरोहर का दर्जा प्राप्त कर चुकी 'ऊंची अटरिया रंगभरी' का पुनर्प्रकाशन हो और लोकरंगों का पुनः संरक्षण भी। पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी के जन्म शताब्दी के अवसर पर यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य होगा। ☐

बी-72, पंडारा रोड,
नयी दिल्ली-110003
मो. : 7042151049

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह स्पर्श.........

● नवनीत मिश्र

जहां तक याद्दाश्त साथ देती है, 1957 या शायद 1958 का समय था। दस या ग्यारह वर्ष की आयु थी मेरी। पिता स्वर्गीय डॉक्टर व्रज किशोर मिश्र लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक थे। साहित्य के अतिरिक्त संगीत उनकी प्रमुख रूचि का विषय था। वह सितार, बांसुरी और तबला बजा लेते थे लेकिन उसका प्रदर्शन वह कभी-कभी ही करते थे। रेडियो में संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रमों को सुनने के लिए घर पर संगीत रसिकों का जमावाड़ा होता था। उनकी एक साहित्यिक संस्था थी -'साहित्यिकी'। उसमें आये दिन कार्यक्रम आयोजित होते जिनमें बड़े-बड़े साहित्यकार आमंत्रित होते थे। 'प्रसाद' जी के सुपुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद, श्री सुमित्रानन्दन पंत, श्री दुर्गा प्रसाद खत्री, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, नागर जी और भगवती बाबू जैसे साहित्यकारों के दर्शन मुझे उन्हीं गोष्ठियों में हुए। पिताश्री के एक शोध छात्र थे श्री गिरीश चन्द्र त्रिपाठी। वह अपने बड़े भाई एलोपैथ डाक्टर रमेश चन्द्र त्रिपाठी के साथ लखनऊ के एक कदीमी मोहल्ले पुराने किले में रहते थे। वह साहित्यिक आयोजनों की व्यवस्था करने में बहुत निपुण थे।

वह उस वर्ष की निराला जयन्ती की गोष्ठी थी। तब तक मुझे खुशफ़हमी हो चुकी थी कि मैं बहुत अच्छा गा लेता हूं। मैंने गिरीश जी से कहा कि मैं गोष्ठी में निराला जी रचित सरस्वती वंदना प्रस्तुत करना चाहता हूं। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया लेकिन पहले मुझे गा कर सुनाने की शर्त रखी। मैं फिल्म 'कल्पना' में मन्ना डे और मुहम्मद रफ़ी के गाए गीत 'तू है मेरा प्रेम देवता' की धुनपर - 'वर दे वीणावादिनी' गा कर सुना दिया। आयोजन के निमंत्रण पत्र जब छपे तो कार्यक्रमों की सूची में सबसे पहले नंबर पर अपना नाम देखकर जैसा रोमांच हुआ वैसा फिर कभी नहीं हुआ। मैंने सरस्वती वंदना का जोर-शोर से पूर्वाभ्यास शुरू कर दिया।

गोष्ठी की शाम आई। पुराने किले में डाक्टर त्रिपाठी के मकान की पहली मंजिल के वराण्डे में कार्यक्रम का आयोजन था। संचालन कर रहे श्री गिरीश त्रिपाठी ने मेरा नाम लिया और मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क उठा। मुंह सूखने लगा और मैं जैसे किसी से सहायता पाने के लिए इधर-उधर देखने लगा। मुश्किल ये थी कि इतने सारे लोगों के बीच कभी गाना गाया नहीं था और उससे भी बड़ी परेशानी थी कि पिता सामने बैठे थे, उनकी उपस्थिति में कैसे गाऊं।

तभी मैंने अपनी पीठ पर किसी हथेली का स्पर्श महसूस किया। मैंने घूम कर देखा, पहचानता नहीं था। वृक्ष के नीचे, नदी के किनारे गोस्वामी तुलसीदास की जिस मुद्रा में बैठी तस्वीरें देखी थीं कुछ-कुछ उसी मुद्रा में बैठे हुए थे। भला वह कैसे जानते कि जिसका नाम पुकारा गया है वह कौन है और कहां बैठा है? लेकिन जब मेरे गाना शुरू न करने पर सभी लोगों की निगाहें मेरी ओर उठी होंगी उसी से उन्होंने अनुमान लगाया होगा कि वह मैं ही हूं। उन्होंने मेरी ओर देखा और आंखों-आंखों में ही गाने के लिए प्रेरित किया। मैंने शुरू कर दिया और शर्म और घबराहट के कारण हो रहे मुंह के साथ किसी तरह वन्दना पूरी कर ली। गाना पूरा होने के बाद तालियां बजीं लेकिन उन्होंने मेरी पीठ पर दोबारा सिर्फ हाथ फेरा, जिसमें इस बार कुछ-कुछ थपथपाहट का-सा पुट भी शामिल था। उनका वह पहला स्पर्श हिम्मत बंधाने वाला था और यह दूसरा शाबाशी देने जैसा था। मैं दोनों के अन्तर को कुछ-कुछ महसूस कर पा रहा था। दस-ग्यारह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बरस का बालक इतनी महीन संवेदना को भला महसूस भी कितना कर सकता था लेकिन अवश्य ही उन्होंने अपने स्पर्शों के माध्यम से बहुत गहराई के साथ वह मौन संवाद मुझ तक पहुंचा दिया था, नहीं तो ऐसा कैसे होता कि आज उन्सठ-साठ वर्ष बाद भी मैं उस स्पर्श को इस तरह याद कर पा रहा हूं जैसे अभी कल की बात हो। उनके मुंह में पान था, उन्होंने अपने मुंह से एक शब्द नहीं कहा लेकिन उनकी आंखें ही बहुत बोलने वाली थीं। ऐसा ध्यान आता है कि कार्यक्रम में उनके साथ आए हुए कुछ युवकों ने महाकवि की कुछ कविताओं का गायन किया था। वे कोई बहुत बड़े आदमी हैं, यह अनुमान मैं उनके मोहक व्यक्तित्व से ही लगा पा रहा था।

1969 में जब मैंने आकाशवाणी लखनऊ में कैजुअल अनाउन्सर के रूप में काम करना शुरू किया तब उनको रेडियो स्टेशन में कलाकारों के बैठने वाले कमरे में देखते ही पहचान गया। ये वह समय था जब 'तोड़ कर अहदे करम नाआशना हो जाइए, बन्दापरवर जाइए अच्छा ख़फ़ा हो जाइए' गाने वाले मुजदिद नियाज़ी गाना लगभग छोड़ चुके थे, विनोद कुमार चटर्जी गीत और भजन कम्पोज़ करने में ज़्यादा रुचि लेने लगे थे, रेडियो में रमई काका कीर्तिपुरुष के रूप में स्थापित थे और बेगम अख़्तर के साथ संगत करने के कारण मुन्ने खां और गुलाम साबिर कादिरी बहुत महत्वपूर्ण माने जाते थे। इन सब के बीच राधावल्लभ जी उस समय भी सक्रिय थे और गा रहे थे। मैं इन सब को मुग्धभाव से देखता रहता। मैं बहुत दिनों तक उनसे सीधा परिचित होने से अपने को रोक नहीं पाया। मैंने एक दिन बातचीत शुरू करने की गरज से उनसे तेरह-चौदह बरस पुरानी उस घटना का ज़िक्र किया, लेकिन उनको याद नहीं था। याद रहता भी कैसे? अपने पूरे सांगीतिक जीवन में न जाने कितने ऐसे लड़कों-लड़कियों को उन्होंने घबराते और मुंह सुखाते देखा होगा जिन्हें बस जरा से प्रोत्साहन की ज़रूरत होती है। यह बहुत बाद में जान सका कि मैं रेडियो में लोक संगीत के पर्याय के रोज़ दर्शन करता था।

राधावल्लभ जी किंवदंतीपुरूष थे। उनके बारे में सुनाने के लिए सभी के पास कुछ न कुछ नायाब था जिसे सुना कर व्यक्ति अपनी , राधावल्लभ जी के साथ निकटता स्थापित करता। उर्दू का एक शब्द है हरदिल अजीज, राधावल्लभ जी के संबन्ध में वह एक दम सटीक जान पड़ता है। उनके निकट जाने का मतलब ही होता था कि फिर आप उन्हीं के हो रहेंगे। गुणी लोगों में अक्सर ही अपने आप को लेकर अहं का-सा एक भाव आ जाता है, लेकिन मैं जब कभी मौक़ा पाता राधावल्लभ जी के पास बैठता, उनसे बातें करता। मुझ मतिमंद से भी वह कुछ इस तरह बात

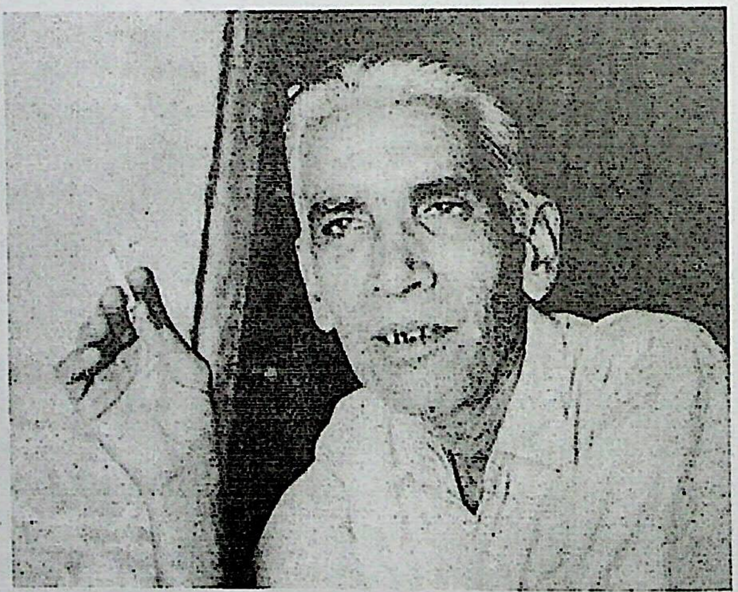

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते जैसे मैं संगीत का कोई बड़ा पारखी हूं। प्रभु ने उन्हें बहुत कुछ देने के लिए सिरजा था और दिये जा रहे को संभालने और सहेजने के लिए विनम्रता का उपहार पहले ही दे दिया था।

राधावल्लभ जी लोकगीतों के सम्राट कहे जाते थे। उनके पास सोहर, बन्ना, सरिया जैसे महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले सभी पारम्परिक संस्कार गीतों से लेकर प्रत्येक ऋतु में गाये जाने वाले लोकगीतों का खजाना था। अनाउन्सर के रूप में अपने द्वारा प्रसारित किए गए उनके एक लोकगीत का स्मरण बहुधा हो आता है। लोकगीत तो अब याद नहीं हैं बस एक शब्द 'किवड़िया' है जो आज तक मन में बजता-सा रहता है। हां, इतना अवश्य याद है कि लोकगीत में नायक रात के समय भरी बरसात में घर लौटता है और नायिका से दरवाज़ा खोलने को कह रहा है और बता रहा है कि वह भीग रहा है। लोकप्रिय गायकी में नाटकीयता तो होती नहीं कि कलाकार आवाज़ में कम्पन पैदा करके यह बताए कि वह पानी में भीग रहा है लेकिन राधावल्लभ जी ने उसे जिस तरह गाया उसमें इतनी चित्रात्मकता थी कि सुनने वाला भीगते हुए नायक को अपने सामने खड़ा देख ले।

मैं जितने भी चतुर्वेदियों को जानता हूं उनमें कोई कोई भी मुझे ऐसा नहीं मिला जो उन्मुक्त ठहाकों से सम्पन्न न रहा हो। शैल चतुर्वेदी, शैलनाथ चतुर्वेदी और गोपाल चतुर्वेदी के ही क्रम में थे राधावल्लभ चतुर्वेदी। उनकी मौजूदगी उनके हास्य से दर्ज हुआ करती थी। मथुरा के चौबे तो वैसे भी बहुत मस्तमौला होते हैं, राधावल्लभ जी भी इसके ज्वलंत उदाहरण थे। अपने आस-पास सदा प्रसन्नता बिखेरने वाले, स्नेहिल, उदारमना और सहज विश्वासी राधावल्लभ जी ने संगीत की अपनी यात्रा शास्त्रीय गायक बनने के लिए आरम्भ की थी। उन्हें तानपूरा मिलाने में इतनी महारत हासिल थी कि वह जिस तानपूरे को मिला देते थे फिर उसको दोबारा जांचने की जरूरत नहीं पड़ती थी। तानपूरे के सुर में होने की गारंटी ही हुआ करती थी कि उसे राधावल्लभ जी ने मिलाया है। कहते हैं एक बार कलकत्ते से सरोद वादक रोबिन घोष आकाशवाणी लखनऊ आए जिनकी रिकार्डिंग होनी थी। राधावल्लभ जी ने तानपूरा मिलाया। श्री घोष ने कहा कि तानपूरा ठीक से मिला नहीं। राधावल्लभ जी ने श्री घोष से स्पष्ट शब्दों में कहा कि फिर से सुनिए, मुझे लगता है आपके कान शनासा (जानकार) नहीं हैं। यह उनका अहंकार नहीं आत्मविश्वास था।

शास्त्रीय गायन में वह काफी दूर तक आ गए थे लेकिन जैसे-चौदह वर्ष के, 'हैरत से तक रहा है जहाने वफ़ा मुझे, तुमने बना दिया है मोहब्बत में क्या मुझे।' गाने वाले बालक मास्टर मदन के साथ हुआ; राधावल्लभ जी के साथ भी ईर्ष्यालु लोगों ने कुछ-कुछ वैसा ही किया। अपनी प्रतिभा से जो लोग सामने खिंची लाइन से बड़ी लाइन नहीं खींच पाते वे सामने दीख पड़ती लाइन को मिटाने पर ही उतर आते हैं। मास्टर मदन को तो विष दिया गया था जिससे तीन-चार ग़ज़लें गाने के बाद उसकी मृत्यु हो गई थी लेकिन बताने वाले बताते हैं कि राधावल्लभ जी के सहज विश्वासी होने का लाभ उठाते हुए किसी ने उन्हें पान में सिन्दूर खिला दिया था जिससे उनकी आवाज़ फट गई और वह शास्त्रीय गायन में असमर्थ हो गये। लेकिन इस छल से मन में हुई टूट-फूट से राधावल्लभ जी बाहर निकले और लोक संगीत को अपनाया और वहां भी उन्होंने अपनी ज़बरदस्त उपस्थिति दर्ज कराई।

पता नहीं ऐसा सोचना चाहिये कि नहीं लेकिन लगता है कि सिन्दूर खिलाने वाले ने बड़ा अहसान किया क्योंकि शास्त्रीय गायक तो देश में बहुत से हैं लेकिन राधावल्लभ चतुर्वेदी नाम का लोक गायक कोई दूसरा नहीं है। ☐

पूर्व वरिष्ठ समाचार वाचक, आकाशवाणी।
ई-4, सौभाग्य अपार्टमेन्ट्स
8, गोपाल नगर, लखनऊ-226023
मो. 9450000094

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कमला! ऐसे नहीं ऐसे...'

• प्रो. कमला श्रीवास्तव

संगीत के क्षेत्र में ब्रह्मलीन राधावल्लभ चतुर्वेदी एक चमकता हुआ नाम है। आप शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत के महान ज्ञाता थे। लोक संगीत विशेषकर अवधी लोकगीतों में आपका अभूतपूर्व योगदान है।

आकाशवाणी के माध्यम से मैं चतुर्वेदी जी के सम्पर्क में आई। आपकी ओजपूर्ण और सुरीली आवाज़ लोक गीतों में जान फूँक देती थी। मैंने उनसे लोकगीतों के गायन, प्रस्तुतिकरण और प्रसारण हेतु शिक्षा ग्रहण की। वह बहुत ही उच्चकोटि के संगीत गुरु थे। राधावल्लभ जी और बलदेव जी के शिक्षण व आशीर्वाद का ही फल है मुझे लोक संगीत में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी का लोक संगीत अवार्ड 2001 में और यशभारती 2016 का सम्मान प्राप्त हुआ।

एक बार राधावल्लभ जी ने कहा था-"कमला! तुम तो शास्त्रीय संगीत भी जानती हो अतः लोक संगीत क्षेत्र में बहुत कार्य कर सकती हो।" और मैंने आपके आशीष से न जाने कितनी कार्यशालायें सशुल्क व निःशुल्क प्रस्तुत कीं। अनेक विद्यार्थी बनाये और अवधी लोकगीतों को उनकी असली धुनों में सजाया व संवारा; जो आज तक निरन्तर कर रही हूं।

मैंने भारत के अनेक प्रदेशों में जाकर अवधी लोकगीतों का प्रसार व प्रचार किया। भारत के अतिरिक्त श्रीलंका में भी शास्त्रीय संगीत परीक्षक के रूप में जाती थी और अवधी लोकगीतों के कार्यक्रम मंच और वहां के रेडियो से प्रसारित करती थी। राधावल्लभ जी बहुत बारीकी से धुनों को संवारते थे। एक बार की बात है- एक प्रचलित पारम्परिक लोक गीत की धुन में मैं कोमल निषाद की जगह शुद्ध निषाद लगा गई। उन्होंने तुरन्त टोका-'कमला! ऐसे नहीं ऐसे।' वह गीत था प्रसिद्ध पारम्परिक सोहर 'छापक पेड़ छेउलियाते. ... पतवन गहबर हो।'

आज के विद्यार्थी भी धुन बिगाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ते फिर भी हम लोग धुनों को संवारने का निरन्तर प्रयास कर ही रहे हैं। शास्त्रीय संगीत सीख लेने का यह तात्पर्य नहीं कि आप लोक गीतों में भी शास्त्रीय संगीत की गतियां, खटके, मुर्की आदि का प्रयोग करें। लोक संगीत तो बहुत सरल और सादगी भरा है; हाँ उसकी बिटिया यानी शास्त्रीय राग अवश्य आभूषणों से लदे हैं। लोक संगीत तो शास्त्रीय संगीत की जननी है। उस माँ की सादगी और सौन्दर्य को शुद्ध बनाये रखना हम सभी लोकगीत प्रस्तुत करने वालों की ज़िम्मेदारी है।

राधावल्लभ जी ने लोक गीतों की एक बड़ी ही उच्चकोटि की नायाब पुस्तक लिखी है जिसमें संक्षिप्त लोकगीत परिचय व स्वर लिपि प्रदान कर उन्हें विलक्षण कर दिया है स्वरलिपि द्वारा हम धुनों को शुद्ध रुप में संवार लेते हैं। इसमें अधिकतर अवधी गीत हैं और कुछ स्वरचित, ब्रज, बुंदेलखंडी और भोजपुरी बोली के गीत भी है। उत्तर प्रदेश के पश्चिम में ब्रज, पूर्व में भोजपुरी, दक्षिण में बुन्देलखण्डी और मध्य में अयोध्या की अवधी बोली का बोलबाला है। पुस्तक का नाम एक बुन्देलखण्डी विवाह गीत की प्रथम पंक्ति के आधार पर है "ऊँची अटरिया रंग भरी"। आपने लोक गीतों का प्रारम्भ एक 'सरिया' लोक गीत "हँसत खेलत घर आये कहाँ सरि खेलि आयेऊ मोरे लाल" से किया जो शिशु जन्म से पूर्व ही गाया जाता है। उसके बाद सोहर, अन्नप्राशन, मुंडन, जनेऊ आदि संस्कार के गीत हैं। विवाह संस्कार के गीतों में विवाह गीत, बन्ना टोना, द्वारचार, कलेवा गारी, सुहाग व बिदा गीत लिखे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्पश्चात्, दिनचर्या गीतों में खेत रखवाली गीत, चकिया गीत, पनघट गीत, सीला बीनने का गीत तथा ऋतु सम्बन्धी गीतों की लम्बी श्रृंखला कजरी, चौमासा चन्द्रावली, चैती, मल्हार, राछौर, सावन, सोहिनी और हिंडोला गीत हैं। उत्सव गीतों में उलारा, कहरा, घाटों, चौताल, झूमर, धमार, डेढ़ताल (स्वरचित), मेला गीत, रसिया, लाँगुरिया और होली गीत प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार विषद लोक गीतों में से अति उपयोगी, चर्चित, प्रचलित, पारम्परिक गीतों को प्रकाशित किया गया है।

अतः लोक गीतों के सन्दर्भ और योगदान में स्व. श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी का नाम अद्वितीय, अद्भुत व अविस्मरणीय रहेगा। □

उनकी स्मृति को नमन

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने लोकगीतों विशेषकर अवध क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों पर विशेष रुप से चिन्तन-मनन किया, उन्हे संकलित व स्वरलिपिबद्ध कर भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने का महत्वपूर्ण काम किया है। श्री चतुर्वेदी स्वयं ध्रुपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, ग़ज़ल जैसी पारक्परिक शैलियों के गायन में सिद्धहस्त थे, लेकिन लोकगीतों में उनका अध्ययन और एकाग्रता अनुकरणीय है। उन्होंने लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत का सुन्दर समावेश करते हुए उनके आकर्षण में और अधिक वृद्धि की है। इनमें घाटो, चैती, विदेशिया आदि लोकगीत उल्लेखनीय हैं।

पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी द्वारा संकलित और स्वरलिपिबद्ध कृति 'ऊँची अटरिया रंग भरी' में संगीत के सिद्धान्त व क्रियापक्ष पर महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्द्ध हैं जो संगीत को सर्वसुलभ बनाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। इस पुस्तक में पारम्परिक सरिया, सोहर, अन्नप्राशन, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, द्वारचार, कलेवा, ज्वेनार, विदाई, चकिया, पनघट, कजरी, चौमासा, चैती, सोहनी, झूला, झूमर, रसिया इत्यादि कई प्रकार के गीत स्वरलिपि सहित प्रकाशित किये गये हैं। ऐसे सुधी संगीतज्ञ पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी जी की जन्मशती पर मैं उनकी स्मृति को नमन करता हूँ।

उदय प्रताप सिंह
पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष, उ.प्र.हिन्दी संस्थान
राजेन्द्र मार्ग, शिकोहाबाद, उ.प्र.

अमृतकुण्ड है 'ऊँची अटरिया रंग भरी'

स्व. पण्डित राधावल्लभ जी का जीवन संगीत की निरन्तर साधना में गुजरा। आकाशवाणी के 'पंचायत घर' में लोक संगीतकार पद पर उन्होंने उल्लेखनीय काम किया। इतनी व्यस्तता के बाद भी आपने संगीत का इतना अद्भुत सृजन कर अमरता प्राप्त की। हम जैसे संगीत साधकों के लिए 'ऊँची अटरिया रंग भरी' जैसा विशाल संग्रह सौंप कर गये हैं, जिसमें सावन, कजरी, चैती, विवाह, रसिया, ज्योनार, झूमर, राछौरा, होली, रसिया, मेला गीत, लंगुरिया, डेढ़ ताल, हिंडोला, चौमासा, पनघट गीत धमार, टोना, कलेवा, गारी जैसे अनेक सरस गीतों का भण्डार है। यह संग्रह संगीतकारों के लिए अमृतकुण्ड है जिसकी गहराई में जायें तो नगीने ही नगीने हैं। अब आगे की पीढ़ी का कर्त्तव्य है कि पण्डित जी के सन्देश को जनमानस तक सहज रुप से प्रसारित करे।

मैं आदरणीया सुश्री नीलम चतुर्वेदी एवं डॉ. नीरज चौबे की बहुत आभारी हूँ जिन्होंने मुझे ऐसे अमूल्य रत्नों का संग्रह दिया। ऐसे महान संगीतकार को उनकी जन्मशती पर कोटि-कोटि प्रणाम।

सुनीता झिंगरन
लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गीय राधावल्लभ चतुर्वेदी

● के.के. श्रीवास्तव

स्वर्गीय राधावल्लभ चतुर्वेदी, आकाशवाणी लखनऊ के जाने माने लोक संगीत कम्पोजर थे। वे लोक संगीत की विधा में रमे बसे लोक संगीत के पारखी थे। विशेष रूप से उन्होंने लोक संगीत के अवधी गीतों को सहगान के रूप में गायन विधा में पिरोया था। वे स्वयं हारमोनियम पर धुन बनाते थे उसके पश्चात् कलाकारों को रिकार्डिंग कराने के पूर्व सजीव गायन के लिये प्रसारित करवाते थे। जन्म संस्कार से लेकर सभी संस्कारों व त्यौहारों के गीतों को आवश्यकता अनुसार प्रसारित करवाते थे। आकाशवाणी की पुरानी बिल्डिंग के लोक संगीत स्टूडियो में वे कुछ न कुछ नये गीतों के आयोजन तथा लोक संगीत की पार्टियों का कार्यक्रम समय व संस्कार के अनुसार गायकों की रिकार्डिंग में भी लिप्त रहते थे।

राधावल्लभ जी की विशेषता थी कि वे लोक वाद्यों को अपने कम्पोजिशन में महत्ता देते थे। जिसमें सारंगी, ढोलक, मंजीरा, नाल, क्लेरीनेट, बांसुरी व घुंघरू आदि वाद्यों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करते थे। वे स्वभाव से खुश दिल, भावुक होते हुए अपने साथियों के साथ बहुत मधुर सम्बन्ध रखते थे। वे नयी प्रतिभाओं को रेडिये पर गायन पर मौका व ऑडिशन करवाने में सकारात्मक सहयोग भी करते थे। वे लोक संगीत के एक अग्रणी संयोजक माने जाते थे। आज भी उनका वर्चस्व लोग स्वीकार करते हैं। उनकी विधा का अनुपालन केवल कुमार, जाने माने संगीत संयोजक के कम्पोजिशन में झलकता है। आल्हा गायकी के भी कलाकारों की खोज में वे लिप्त रहते थे। उनके समय के कुछ ही कलाकार अब जीवित हैं। लोक साहित्य की पुस्तकों में लेखकों ने उनके योगदान को भी अंकित किया।

उनके समय, मैं प्रसारण निष्पादक के रूप में लखनऊ में कार्यरत था। अक्सर क्यूशीट में अपने कार्यक्रम के टेप दिया करते थे और उन्हें स्वयं चेक भी करते थे। मेरे ख्याल से उनके सम्बन्ध सभी साथियों से बहुत मधुर रहे थे। उनके समय में शफाअत अली, मुजद्दिद नियाजी, डॉ. सुशीला मिश्र, कुमारी उमा चकबस्त तथा बी.एस. भटनागर आदि संगीत अनुभाग में कार्य करते थे। संगीत के कम्पोजर विनोद चटर्जी, अल्ताफ हुसैन तथा तबला वादक मुन्ने खाँ, सारंगी वादक गुलाम सादिक़ क़ादरी, मशहूर ढोलक वादक बफ़ाती तथा तबला वादक मेहदी हुसैन रहे थे। लोक संगीत कलाकारों में स्वरूप कुमारी बक्शी, हरवंश जैसवाल, मनोरमा सक्सेना, स्वरूप रानी श्रीवास्तव व सखियां, केवल कुमार तथा आल्हा गायक लल्लू बाजपेयी व साथी आदि थे। उनके सभी मित्रों व साथीगणों रमई काका, मुमताज़ अली व अर्जुन लाल, बाबा रामजी दास के कार्यक्रम देहाती कार्यक्रम 'घर आँगन', 'लोकायतन', 'किसानों के लिये' व 'मजदूर मण्डल' में बजाये जाते रहे। उद्घोषक के रूप में नरेश श्रीवास्तव, रज्जन लाल, के.के. सिंह, शकुन्तला मिश्र, कान्ती गुप्ता, सुमन साहू व आकस्मिक उद्घोषक नवनीत मिश्र आदि उनके कार्यक्रमों की उद्घोषणा एवं प्रस्तुति करते थे।

कुछ दिन से बीमारी के कारण मूठ वाली छड़ी लेकर चलने लगे थे। अचानक दिल का दौरा पड़ने से 10 जून 1974 को हमें दुखद समाचार मिला कि वे इस दुनिया में नहीं रहे, उनका स्वर्गवास हो गया। पूरा आकाशवाणी परिवार शोक संतप्त हो गया। इस संसार से जानी-मानी हस्ती चली गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे मन में उनका हंसता हुआ चेहरा व माथे पर चंदन का टीका लगा हुआ चित्र बसा हुआ है। संगीत का पारखी कलाकार इस संसार से विदा हो गया। उसकी भरपाई आज भी लखनऊ के संगीत अनुभाग में नहीं हो पायी। उनके कम्पोजिशन विशेष श्रोता कार्यक्रमों में आज भी गूंजते हैं।

उनके बारे में कितना भी लिखा जाए वह कम ही रहेगा। उनकी लड़की नीलम चतुर्वेदी उनके व्यक्तित्व की भरपाई अन्य विधा व पदों पर रहकर पूरी करने की चेष्टा कर रही हैं। आशा है कि उनकी कर्मठ बेटी उनकी छोड़ी हुई संगीत विधा को आगे बढ़ाने में सहभागिता करती रहेंगी। मैं आज भी उनके व्यक्तित्व व संगीत के क्षेत्र में दिये गये विशिष्ट योगदान को याद करता हूँ एवं नमन करता हूँ। □

पूर्व सहायक निदेशक
आकाशवाणी, लखनऊ

छोटी सी भेंट

● राम मोहन दुबे

सन् 1954 में पहला यूथ फैसटीवल होना निश्चित हुआ जिसमें भारत के सभी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की भागीदारी सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा होनी थी।

इसी कार्यक्रम में श्री रघुनाथ सेठ तथा सामूहिक गीत की प्रस्तुति के लिये अन्य गायक व गायिकाओं ने एक गीत समूह गान के रूप में प्रस्तुत किया जिसके बोल थे 'नंद बाबा जी छैया बाको नाम है कन्हैया' सभी को बहुत पंसद आया मगर मेरी जिज्ञासा थी कि इसकी संगीत रचना किसने की है तब मुझे लखनऊ के गायकों ने बतलाया कि हमारे आकाशवाणी के म्यूज़िक कम्पोजर श्री राधावल्लभ चर्तुवेदी जी ने की है।

वह समय वह था जब आकाशवाणी के कलाकारों को देखने और मिलने का हम लोग अवसर ढूंढ़ते थे जैसा कि आज फिल्म कलाकारों के लिये है।

एक कार्यक्रम के सिलसिले में पुरुषोत्तम दास जलोटा जी से मिलने मैं लखनऊ आया तो पता लगा कि वह आकाशवाणी पर है। मैं आकाशवाणी पहुँचा तो सबसे पहले जयदेव शर्मा 'कमल' जी से भेंट हो गई और उन्होंने ही श्री चतुर्वेदी जी से मिलाया। फिर उसी गीत के बारे में चर्चा हुई। इस बीच में चतुर्वेदी जी ने कमल जी से कहा कि इतना छोटा लड़का यह जानना चाहता है कि इस गीत की रचना किसने की है बस यही मैंने उनसे कहा कि मैं भी गीतों को संगीत में पिरोना चाहता हूं। इसी छोटी सी मुलाकात में उन्होंने बहुत सी मुझे शिक्षा दे दी और उसी प्रेरणा और आशीर्वाद से मैं भी लखनऊ आकाशवाणी के द्वारा म्यूज़िक कम्पोजर हो गया और फिर लखनऊ दूरदर्शन में ही मेरा चयन हो गया। इस छोटी सी भेंट में श्री चतुर्वेदी जी ने मुझे बहुत कुछ ज्ञान करा दिया। मैं सदा उनका आभारी रहूँगा। □

2/12, नामनैर, आगरा-01

प्रिय पाठकों!

पत्रिका का यह अंक कैसा लगा? अपनी प्रतिक्रिया एवं अमूल्य सुझाव हमें अवश्य प्रेषित करें।

- सम्पादक

छायानट

उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी

विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-10

ईमेल : upsna.chhayanat@gmail.com

फेसबुक पर छायानट से जुड़ने के लिए कृपया उपरोक्त ई-मेल सर्च करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताल ज्ञान के विलक्षण प्रयोक्ता

●डॉ. नीरज चौबे

परम् श्रद्धेय आदरणीय पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी के सतत सानिध्य का विरल सौभाग्य मुझे प्राप्त रहा जिसने मेरे जीवन की दिशा प्रदान की।

विशुद्ध शास्त्रीय संगीत की गहनता को जानने की मेरी पिपासा उनकी प्रेरणा से ही सन्तृप्त रही तथा घराने (मूलतः सेनिया घराने से उद्भूत) के शीर्षस्थ वायलिन वादक डा. जी.एन. गोस्वामी के प्रतिभावान पुत्र श्री अशोक गोस्वामी ने उनका समादर करते हुए मुझे वायलिन की शिक्षा प्रदान करना स्वीकार किया। यद्यपि जटिल वैज्ञानिक अनुसंन्धान में रत रहने के कारण मैं इसमें चरम योगदान नहीं दे सका।

संगीत की सभी विधाओं में निष्णात श्रद्धेय राधावल्लभ जी बहु आयामी प्रतिभा के धनी थे। उनका समस्त जीवन ही संगीत के लिए समर्पित रहा। संगीत में उनके कालजयी अनुप्रयोग आज भी जीवंत हैं जिन की आहट तथा प्रतिध्वनियां आज भी सुनाई पड़ती हैं।

मैं आश्चर्य चकित रह गया जब उन्होंने ताल-ज्ञान के एक विलक्षण प्रयोग को मुझे ऐसे बोल के रूप में सुनाया जिसमें सम का पता लगाना अत्यन्त दुष्कर है, जो आज भी मेरे मानस पटल पर अंकित है कि:-

घेना तकिट धागे न घा तिट घेना तिट
तकिट धिनक धिन धागे न घा धेना तिट
केना तकिट धाग तिट न धा केना तिट
तकिट धिनक धिन धागे न धा केना तिट

मूलतः विशुद्ध शास्त्रीय संगीत के निष्णात श्रद्धेय श्री राधावल्लभ जी नूतन लोक गीतों के सशक्त हस्ताक्षर थे तथा देश, काल एवं परिस्थितिजन्य सभी प्रकार के लोकगीतों के वे मूर्धन्य विद्वान रहे। अवधी लोक गीतों में इनकी देन तो आज भी याद की जाती है।

उनकी कालजयी रचना 'ऊँची अटरिया रंग भरी' लोकगीतों का एक अविस्मरणीय संग्रह है जो उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ द्वारा प्रथमतः 1977 में प्रकाशित हुआ। इसमें सरिया, सोहर, अन्नप्राशन, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, द्वारचार, कलेवा, जेवनार, विदाई, चकिया, पनघट, कजरी, चौमासा, चैती, सोहनी, झूला, झूमर, रसिया सहित मल्हार, राछौर, सावन और यहां तकि होली तक की परिभाषा निर्धारित करके उन पर विलक्षण प्रस्तुति परिलक्षित है।

इस क्रम में प्रसिद्ध पत्रिका कादम्विनी (जुलाई 2012) में प्रकाशित लेखिका शुभा मुद्गल के लेख 'मेघ मल्हार गाने का मौसम' के पृष्ठ 12 पर प्रकाशित विवरण यथावत् उद्धृत है :-

'उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित 'ऊँची अटरिया रंग भरी' नामक पुस्तक में लोकगीत के विशेषज्ञ स्वर्गीय श्री राधावल्लभ जी द्वारा लिपिबद्ध व स्वरबद्ध विभिन्न लोकगीतों का संकलन है। इस संग्रह में खोजनहारों को मल्हार और सावन का महज एक-एक नमूना स्वर लिपि सहित प्राप्त हो सकता है, बशर्ते पुस्तक फिलहाल अप्राप्य न हो गई हो तो। पुस्तक में प्रकाशित स्वर लिपि की सहायता से,गीत की कुछ पंक्तियां मैंने याद कर उन्हें रिकार्ड करने का प्रयास किया है, जो इण्टरनेट द्वारा सुनी जा सकती हैं http://snd.scMcRGCY*

गीत की धुन वैसे सीधी सादी सी है और बोल भी उतने ही सहज, लेकिन कुल मिलाकर धरती की सोंधी सी महक का आनंद देने वाले।

इस प्रकार श्रद्धेय राधावल्लभ जी का विलक्षण योगदान आज भी सामयिक है जो सतत चर्चा में रहा है।

वैसे भी उनका स्वभाव एक दार्शनिक जैसा था तथा वे अपने जीवन में भी अत्यन्त सहज एवं त्यागी व्यक्ति रहे हैं। कार्य व्यस्तता में भी वे अपना पारिवारिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामंजस्य बनाए रखते थे।

उनकी इस कालजयी रचना 'ऊँची अटरिया रंग भरी' का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद हो सका जिसकी पांडुलिपि के होने के बार में उन्होंने अपने पत्नी को स्वप्न में बताया था। मुझे बलरामपुर अस्पताल, लखनऊ में 10 जून, 1974 की आज भी याद है, जब हृदय-संघात की विभीषिका से मुक्त हो चुकने के बाद वहां भर्ती राधावल्लभ जी के लिए अस्पताल के डाक्टरों ने मुझसे कहा था

'क्या इनके साथ कोई Male member नहीं है?'

फिर मुझे अलग ले जाकर बताया कि वे देह त्याग चुके हैं। उनी सुपुत्री नीलम चतुर्वेदी ने अपना आपा इस विषम परिस्थिति में भी नहीं खोया।

वे एकदम निश्छल, सहज एवं शान्त चिर निद्रालीन थे। गोमती नदी के तट पर चल रही हवा में तथा उठ रही तरंगों में भी उनके स्वर तैर रहे थे....

'मन लागो, मन लागो, मन लागो यार फ़कीरी में।'

एक फ़कीर, एक कर्मयोगी महापुरुष अब शान्त था सर्वदा के लिए। अविस्मरणीय व्यक्तित्व को शत-शत नमन। ❑

सी-1/76, विक्रान्त खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ-10

'छायानट' में प्रकाशित मंचन योग्य बाल नाटक

कल भात आयेगा	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	अंक 4	रु. 4.00
एक था भालू	डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल	अंक 45	रु. 10.00
रंगीला राक्षस	जे. एन. कौशल	अंक 97	रु. 15.00
लापता सिपाही	अनीस आज़मी	अंक 97	रु. 15.00
विश्व भ्रमण	सुशील कुमार सिंह	अंक 97	रु. 15.00
शनिच्चर का चक्कर	सुरेश काला	अंक 97	रु. 15.00
शान्तिपथ है लक्ष्य हमारा	चित्रा मोहन	अंक 97	रु. 15.00
सा रे ग म प ताक धिनाधिन	रेखा जैन	अंक 101	रु. 15.00
मन्तर	अनीस आज़मी	अंक 101	रु. 15.00
तो करें क्या?	पंकज विनम्र	अंक 106	रु. 25.00
एक रहेन आखर राम	सतीश चित्रवंशी	अंक 106	रु. 25.00
रविवार की खोज	परिमल दत्ता	अंक 106	रु. 25.00
इन्सानियत	अनीस आज़मी	अंक 106	रु. 25.00
नींद का चक्कर	डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र'	अंक 109	रु. 25.00
बुद्धि बहादुर	अलखनन्दन	अंक 109	रु. 25.00
यह रावण कव मरेगा?	पंकज विनम्र	अंक 109	रु. 25.00
रानी गिडालू	डॉ. परशुराम शुक्ल	अंक 142	रु. 50.00

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,
विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम पूज्य गुरु जी

• कुंवर सुन्दर मेहरा

परम पूज्य श्री राधावल्लभ जो लोक संगीत के सुलभ एवं सफल गायके थे। उनकी संगीत की शिक्षा विविधत मैरिस म्युज़िक कॉलेज आप हिन्दुस्तानी म्यूज़िक (संगीत महाविद्यालय) में हुई थी। अब ये संस्था भातखंडे सम विश्वविद्यालय हो गया है।

राधावल्लभ जो आकाशवाणी लखनऊ में संगीत के कम्पोज़र थे। मैंने स्वयं भातखन्डे संगीत समारोह में एक सुबह उनका गाना सुना था। लगभग एक घंटा राग तोड़ी गाने के बाद छोटा ख्याल सुना। रेडियो में उनके साथ मुरतजा हुसैन, अब्बू खाँ सारंगी वादक थे। बाद में ढोलक वादक बफाती भी आ गये। वे बहुत ही कुशल ढोलक वादक थे।

राधावल्लभ जी का व्यक्तित्व आकर्षक था। लम्बे थे, कंधे चौड़े थे और उनकी आँखें थोड़ी भूरी थीं। दो मिनट की बातचीत में ही व्यक्ति उनकी ओर खिंच जाता था।

राधा वल्लभ जी ने बताया रेडियो में नौकरी ज्वाइन करने के बाद, लोकगीत विधा को आगे बढ़ाने के लिए गाजीपुर, मिर्जापुर, बनारस आदि जहां भी लोकगीत अधिक मात्रा में गाये जाते हैं; वहाँ जाकर तीन दिन एवं चार दिन रह कर उनका संकलन किया, सुना और सीखा। जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ के लोग उनकी बड़ी सेवा करते, दूध-दही-मट्ठा भी खिलाते थे और बड़ी सेवा करते। वे सभी अपने को धन्य मानते थे कि रेडियो का ऐसा व्यक्ति आया है जो कि उनके गीतों और लोकगीतों का प्रचार एवं प्रसार करेगा।

अक्सर बारिश के दिनों में शाम को पान की दुकानों पर राधा वल्लभ जी की कजरी व सावन गीतों का गायन सुनने को मिलता था। राधावल्लभ जी का स्वर व अंदाज ऐसा था कि पाँव बरबस रूक जाते थे।

उनके गाने के बाद रमई काका जी टोली का प्रदर्शन, नाऊ काका व उनकी कविता झपेटे आदि का प्रदर्शन बहुत ही रोचक होते थे।

उनका परिवार हुसैनगंज लाल कुंआ वाली गली में एक किराये के घर में रहता था। बड़े भाई के देहांत के बाद उनकी बड़ी बेटी उनके साथ रहती थी। राधावल्लभ जी की पत्नी घर को संभालती थीं और बहुत अच्छा भोजन बनाती थी। वच्चों की रूचि के अनुसार उरद की दाल पीसकर बनाती। राधावल्लभ जी स्वयं भी अच्छे खाने के शौकीन थे। राधावल्लभ जी की एक बिटिया 3 अथवा 4 साल की परदे के पीछे से झाँकती थी। देश के बड़े-बड़े संगीत के कलाकर उनके घर मिलने आते थे और उनसे सलाह मशवरा लेते थे। वे सब उनकी विद्वता के कायल थे और उन्हें बड़ी इज्जत देते थे। मशहूर तबला वादक मुन्ने खाँ से भी मुलाकात होती थी।

उनके घर पर बहुत से बच्चे लोक संगीत सीखते और रेडियो से कुछ बच्चे गाते भी थे। उनके प्रिय शिष्यों में नियामत अली, केवल कुमार, हरबंस जैसवाल रेवा गौन थे। बाद में केवल कुमार रेडियों में कम्पोज़र भी हो गये थे। उन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की और 2016 में उनको यश-भारती पुरस्कार भी मिला। गुरु राधावल्लभ बड़ी तबियत और दिल से सिखाते थे। श्री केवल कुमार जी ने भी उनकी विद्या का खूब प्रचार किया।

लखनऊ के गनेशगंज मोहल्ले में होली का प्रोग्राम बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता था। लगभग हर वर्ष गुरु जी को बुलाया जाता था। गुरु जी को लखनऊ की चिकनकारी का कुर्ता पहने हुए माथे पर गुलाल लगा हुआ, इत्र की खुशबू से सराबोर होते हुये देखा। साथ में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तबला वादक मुन्ने खाँ, सांरगी वादक अब्बू खाँ और कई कलाकार देखने को मिलते थे। एक बार उनका एक लोकगीत कार्यक्रम जिसमें करीब 20 बच्चे थे; आई.टी कॉलेज को मिला। वे कभी अपने बच्चों व शिष्यों की पार्टी बनाकर बाहर भी प्रोग्राम करते थे।

लोकगीतों पर एक पुस्तक 'ऊँची अटरिया रंग भरी' नाम से लिखी थी जिसको संगीत नाटक अकादमी ने प्रकाशित भी किया। पुस्तक बहुत रोचक थी जिस कारण सभी प्रतियां शीघ्र ही बिक गई। राधावल्लभ जी से मेरी मुलाकात हजरतगंज के म्यूजिक स्कूल में हुई थी। हलवासिया मार्केट के इसी स्कूल के बगल में मेरा घर था। इस स्कूल में भरत नाट्यम् सितार की शिक्षा दी जाती थी। बात-चीत के दौरान उन्होंने कहा कि मेरे घर पे आओ सीखो उन्होंने दिल खोलकर कुछ लोकगीत एवं ग़ज़लें सिखायीं और मुझसे एक आने का पान तक नहीं मांगा। ऐसे थे हमारे गुरु जी। □

गुरु जी ने करवाया था मेरा विवाह

● मनोरमा जायसवाल

पूज्य गुरुदेव पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी मेरे घर आया करते थे। उन्होंने मेरा विवाह अपने प्रिय शिष्य श्री हरबंस जायसवाल से कराया था। हमने गुरु जी से लोक संगीत की बारीकियां सीखीं। हरबंस जी और हम प्रायः लोक संगीत के आयोजनों में जाते थे जहां गुरु जी के निर्देशन में हम लोगों की प्रस्तुति जोरदार होती थी।

हरबंस जी ने गुरुजी से जो शिक्षा प्राप्त की थी उसे बहुत आगे बढ़ाया। आज हरबंस जी के कई शिष्य यदि बहुत अच्छी पोजीशन में हैं तो इसका सारा श्रेय गुरु जी को जाता है। गुरु जी के अनेक संस्मरण मेरी जेहन में है जिसमें से एक का उल्लेख करना आवश्यक समझती हूँ। हरबंस जी और मेरे विवाह के अवसर पर गुरु जी का एक चित्र है। गुरु जी ने देखा कि हरबंस जी का सिर खाली है तो उन्होंने अपनी टोपी यह कहते हुए पहना दी कि सिर खाली नहीं रखते। आज हरबंस जी भी दुनिया में नहीं है और पूज्य गुरु जी भी, किन्तु उनकी स्मृतियां सदा ही जीवन्त रहेंगी। मैं गुरुवर की जन्मशती पर उन्हें कोटि प्रणाम निवेदित करती हूँ। □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन लागो मेरो यार फ़कीरी में...

● उर्मिल कुमार थपलियाल

बेहद हसीन चेहरा उस पर सुनहरी मुस्कान, पान के शौक़ीन। उस पर बतकहियों और लखनवी लन्तरानियों के बादशाह। परम आदरणीय राधा वल्लभ चतुर्वेदी का यही खुशमिजाज़ व्यक्तित्व मेरी स्मृति में है। ऐसे मोहक व्यक्तित्व जब तक स्मृतियों में हैं वो इतिहास नहीं हो सकते। मैं वर्षों उनके सानिध्य में रहा। लेकिन उन्हें सुना कभी नहीं। ये वो समय था जब उनका डंका बजता था। किसी के मुंह से उन्हें चौबे जी कहते हुए नहीं सुना। वे महफिलों के आदमी थे। कभी उन्हें भीषण अट्टहास करते हुए नहीं देखा। एक बेहद किफायती मुस्कान ही उन पर फबती थी। उन दिनों उन्हें प्रतिष्ठा और लोकप्रियता दोनों प्राप्त थीं।

आकाशवाणी लखनऊ में अवधी संगीत को प्रतिष्ठित करने में उनका योगदान महत्वपूर्ण था। अपने प्रचार प्रसार से दूर उनका अहंकार विहीन व्यक्तित्व बेहद ओजस्वी और आकर्षक था। अवधी संगीत और लोक साहित्य का उन्हें अपार ज्ञान था। कहावतों और मुहावरों के भंडार श्री चतुर्वेदी यारों के यार थे। जहां बैठते महफिल जुड़ जाती। कभी कभी लोकसंगीत पर उनके विचार मैंने भी सुने लेकिन उनसे सवाल नहीं कर सका। मेरे जैसे नवोदित का इतना साहस होता भी कैसे। उन दिनों मैं तत्कालीन अख़बार "स्वतंत्र भारत" में - "सप्ताह की नौटंकी" शीर्षक से व्यंग्य कॉलम लिखता था। यदा कदा मेरे लेखन पर वो मुझे बहुत सराहते। उनके जैसा आशीर्वाद मुझे रमई काका और सुमित्रा कुमारी सिन्हा जी से भी मिलता रहा। श्री चतुर्वेदी जी की पुत्री नीलम से भी भेंट उन्हीं दिनों हुई। नीलम की साहित्य के प्रति रूचि इन्हीं दिनों देखी थी।

मैं 1965 में ही दिल्ली से ट्रांसफर होकर आकाशवाणी लखनऊ में समाचार वाचक के पद पर नियुक्त होकर आया था। वो समय आज की तुलना में बहुत अमन चैन और रूहदारी का था। चतुर्वेदी जी समय-समय पर हमारे न्यूज़ रूम में आते तो समझो सूखी ख़बरों का सन्नाटा टूट जाता। मेरे वरिष्ठ श्री यज्ञदेव पंडित, उर्दू विभाग के शफ़ात साहब, श्री मुमताज, झपेटे, बाबा रामजी दास, कमलापति मिश्र, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, कबीर शाह, विनोद कुमार चटर्जी और विमला शाह जैसे नामचीनों की इस महफिल की शान मैंने देखी है। हंसी, मजाक, चुटकुले और लन्तरानियों का ऐसा मुशायरा और कहीं नहीं सुना। दरअसल ये विडम्बना है कि मैंने कभी चतुर्वेदी जी को गाते हुए नहीं सुना सिर्फ उन्हें सुना। मुझे ज्ञात नहीं है कि उनकी कोई रिकॉर्डिंग या सी.डी. आदि आकाशवाणी लखनऊ की लाइब्रेरी में है भी कि नहीं। वे तो स्वयं अजातशत्रु थे।

ये मेरा सौभाग्य रहा कि विविध भारती के 'हवा महल' कार्यक्रम के लिए मेरे द्वारा लिखित और निर्देशित हास्य झलकी-'चूं चूं का मुरब्बा' के लिए एक लोकधुन उन्होंने ही बनाई थी। इसी झलकी के टाइटल सॉंग की धुन श्री विनोद कुमार चटर्जी ने सुधारी थी। मेरी इस झलकी को बहुत सराहना मिली। श्री चतुर्वेदी के बाद उनका दायित्व श्री बलदेव जी ने संभाला। केवल कुमार जी भी उन्हीं दिनों उभर रहे थे। ग़ज़ल गायक नियाजी साहब का भी बड़ा नाम था। उन दिनों आकाशवाणी लखनऊ कला, साहित्य और संगीत का एकमात्र सांस्कृतिक केन्द्र था। चारों तरफ अमन चैन था। आज की तरह भाग दौड़, मारा मारी नहीं थी।

श्री चतुर्वेदी जी का सानिध्य जब याद आता है तब अपने को गर्वित समझता हूं कि मैंने श्री चतुर्वेदी जी को देखा था। समय बदल जाता है पर यादें नहीं बदलतीं। सादर श्रद्धांजलि। ☐

ए-1075/3, इन्दिरा नगर,
लखनऊ-226016
मो. : 9795349246

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत मर्मज्ञ पं. राधावल्लभ जी

●उमेश चन्द्र प्रताप सिन्हा

श्रद्धेय राधावल्लभ चतुर्वेदी जी आकाशवाणी लखनऊ के परम सम्माननीय संगीतज्ञ ही नहीं वरन् सम्भ्रान्त एवं आदर्श व्यक्तित्व के धनी तथा संगीत के मर्मज्ञ थे। सन 1970 के दशक में मेरा उनसे सम्बन्धा हुआ जो आधिकारिक ही नहीं परम व्यक्तिगत भी था। मैं उन दिनों आकाशवाणी लखनऊ के संगीत विभाग का मात्र प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव ही नहीं था, अपितु विभाग से मेरा सम्बन्ध व्यक्तिगत भी था क्योंकि मेरी पत्नी श्रीमती वीना सिन्हा मल्लिका-ए-तरन्नुम मरहूमा बेग़म अख़्तर जी की शिष्या थीं।

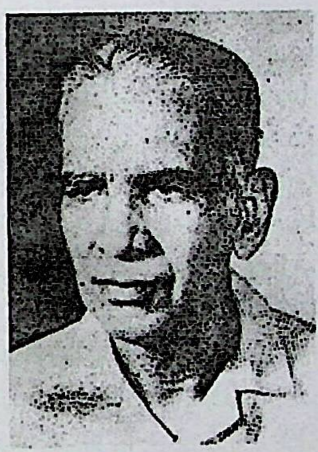

उन दिनों मैं पोर्ट ब्लेयर (अण्डमान निकोबार) से लखनऊ स्थानान्तरित हुआ था। संगीत विभाग से जो मेरा व्यक्तिगत सम्बन्धा था, वह इस तरह भी था कि विभागाध्यक्ष होने के नाते विभाग के सारे कलाकार मेरे पास अपनी समस्यायें लेकर आते थे। उन समस्याओं के निराकरण में मुझे श्रद्धेय राधावल्लभ जी का सहयोग मिलता था, जो मेरे लिए अविस्मरणीय है। विभाग के कार्यक्रम जैसे- शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, सुगम संगीत आदि हेतु जो कलाकार कार्यक्रम प्रस्तुत करने आते थे, उन्हें प्रायः यह शिकायत होती थी कि संविदा के अनुसार कम से कम दो या तीन बार रिहर्सल का उन्हें अवसर दिया जाना चाहिए था परन्तु सच्चाई यह थी कि इस कार्य हेतु आकाशवाणी में नियुक्त सदस्य प्रायः अनुपस्थित पाये जाते थे। परन्तु श्रद्धेय राधावल्लभ जी अपनी निर्धारित ड्यूटी समाप्त होने या नहीं होने पर भी उपस्थित रहा करते थे। अतः रिहर्सल कार्य मार्गदर्शन हेतु वे विकट समय में भी आकाशवाणी परिवार के साथ ही रहा करते थे। आकाशवाणी का एक अधिकारी होने के नाते मैं श्रद्धेय राधावल्लभ जी का सदैव ऋणी रहूँगा। सरकारी विभाग में अधिकारियों को एक सशक्त बैशाखी की सदा जरुरत रहती है जिससे कि विभाग का कार्य सुचारु रुप से चल सके। मुझे यह उद्घाटित करने में रंच मात्र भी संकोच नहीं है कि आदरणीय राधावल्लभ जी आकाशवाणी के सबसे सशक्त बैशाखी एक संगीत की विधा में एक सशक्त हस्ताक्षर थे।

सन् 1972 की बात है। हमारे विभाग में शास्त्रीय संगीत श्रीमती सुशीला मिश्रा देखा करती थीं। कुछ व्यक्तियों ने, जो दैनिक कलाकार के रुप में आकाशवाणी में आते जाते थे, शिकायत की कि रिहर्सल कराने के लिए आकाशवाणी की ओर से कोई उपस्थित नहीं रहता। श्रीमती मिश्रा ने जवाब दिया कि यह मानने वाली बात नहीं है क्योंकि आकाशवाणी में कोई रहे या न रहे श्री राधावल्लभ जी अवश्य रहते हैं।

श्रद्धेय राधावल्लभ जी की सुपुत्री श्रीमती नीलम चतुर्वेदी भी प्रतिभा की धनी रही हैं, जिनके प्रथमदृष्ट्या समर्पण प्रवृत्ति से स्पष्ट हो जाता है कि वे राधावल्लभ जी की सुपुत्री हैं। गुणों के साथ ही साथ वह स्वभाव एवं वाणी से मृदुभाषी हैं। इस शताब्दी वर्ष में मैं श्रद्धेय राधावल्लभ जी के कालजयी व्यक्तित्व को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ। □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीताचार्य पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी

□ साहित्य भूषण उषा सक्सेना

पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी नाम स्मरण मात्र से ही चतुर्दिक मधुर स्वरों की अनुगूंजन व्याप्त हो जाती है। एक ओर राग रागनियां साकार हो उठती हैं तो दूसरी ओर लोकगीतों की सुरीली धुनें मन को अनूठी मिठास से भर देती हैं। अनुपमेय व्यक्तित्त्व था राधावल्लभ जी का। शास्त्रीय संगीत में निष्णात तो थे ही लोकगीतों के प्रणेता और विशेषज्ञ भी थे। उनका शास्त्रीय गायन मानव को जैसे अलौकिक जगत में ले जाता जहां राग रागनियां मन को बांध लेतीं तो लोकगीतों का माधुर्य आकंठ रस से सराबोर कर देता। लोक गीत उनके कंठ से निर्झर की भांति प्रवाहित होते और मानव को रस सिक्त कर देते। उनके व्यक्तित्त्व में शास्त्रीय गायक लोक गायक और रचनाकार तदाकार होकर एक हो गए थे।

उनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। गोरी रंग सुंदर देह यष्टि, सुडौल नैन नक्श, उन्नत ललाट, रेशमी केश और अधरों पर मोहक मुस्कान। उनसे जो भी एक बार मिल लेता उनके मोह पाश में आबद्ध हो जाता। संगीत के प्रति उनकी निष्ठा देखते ही बनती थी तभी तो विषम परिस्थितियों से निकलकर एक यशस्वी कलाकार बन सके थे।

पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का जन्म मुरादाबाद में 12 जनवरी, 1917 में हुआ था। वे पंडित टीकाराम चतुर्वेदी की छठी संतान थे और घर में सबसे अत्यधिक लड़ले थे। पंडित टीकाराम चतुर्वेदी अंग्रेजों के शासनकाल में नाजिर थे। उनकी इच्छा थी कि पुत्र बड़ा होकर दरोगा बने लेकिन नियति ने तो उनके भाग्य में कुछ और ही लिखा था। उनका कोमल भाव प्रवण मन तो मां के ममत्त्व और उनके गाए लोकगीतों की मिठास से आपूरित था। उनके रोम रोम में संगीत समा गया था। अध्ययन में उनकी रुचि नहीं थी। वे अक्सर अपनी मां और घर की अन्य महिलाओं के लोकगीतों को गुनगुनाया करते। अनुशासनप्रिय पिता को पुत्र का संगीत प्रेम पंसद नहीं था इसके लिए उन्हें कठोर दंड मिलता था। उनका मन कुंठा से भर उठा। पिता का कठोर नियंत्रण उन्हें बांध न सका और मात्र अठारह वर्ष की अवस्था में ही घर छोड़कर लखनऊ आ गए। उनकी जन्मस्थली थी मुरादाबाद और कर्मक्षेत्र बना लखनऊ।

लखनऊ आकर उन्हें अत्यन्त संघर्ष करना पड़ा। अपनी लगन अदम्भ साहस और संगीत के प्रति निष्ठा के कारण वे आगे बढ़ते गए उन्होंने भातखण्डे संगीत विद्यालय में प्रवेश ले लिया और वहां से संगीत विशारद की उपाधि प्राप्त की। अपने विनम्र स्वभाव, सुन्दर कंठ और संगीत के प्रति तन मन धन से समर्पण के कारण उन्होंने बड़े-बड़े संगीताचार्यों को मोह लिया उनके कृपा पात्र बने। सबने उन्हें चाव से शिक्षा दीक्षा दी और कुछ ही वर्षों में वे शास्त्रीय संगीत की सभी विधाओं ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना करंना आदि में पारंगत हो गए। संगीत के प्रति निष्ठा, अटूट अभ्यास और गुरुजनों के आशीर्वाद के फलस्वरूप कुछ ही वर्षों में वे एक लोकप्रिय कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। वे बड़े बड़े मंचों पर गायन के लिए आमंत्रित किये जाते जहां उनके मधुर कंठ, स्वरों के माधुर्य और गायन की सरसता पर श्रोता मुग्ध हो जाते। शास्त्रीय गायन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपरान्त वे मंच पर लोकगीत अवश्य प्रस्तुत करते जिनकी पस्तुति श्रोताओं को भावविभोर कर जाती। उनकी ख्याति बढ़ती ही गई और वे प्रगति के पथ पर अविराम वढ़ते गए। कुछ ही वर्षों के उपरांत उनकी नियुक्ति आकाशवाणी लखनऊ के पंचायत घर में लोक संगीतकार के पद पर हो गई।

उन्हें अपनी रूचि का कार्यक्षेत्र मिला। वहां उन्हें अवधी के सुप्रसिद्ध कवि एवम् व्यंग्यकार श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' का साहचर्य मिला। रमई काका उनसे बहुत प्रभावित थे राधावल्लभ जी के सम्वन्ध में उन्होंने कहा-

"सुगम संगीत तथा लोकसंगीत में तो राधावल्लभ जी प्रवीण थे ही शास्त्रीय संगीत में भी पारंगत थे। उनके संरक्षण में पंचायत घर के लोकगीतों की धूम मच गयी। नये पुराने लोकगीत कभी एकल स्वर में कभी युगल गान, कभी सामूहिक गान के रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। परिमार्जित कंठ और शास्त्रीय संगीत के अगाध ज्ञान के कारण भी उनकी कला में चार चांद लग गए थे।"

लोकगीत तो राधावल्लभ जी को अपनी जननी से विरासत में मिले थे। वाल्यकाल में ही उनके अन्तर्मन में लोकगीतों का बीजारोपण हो गया था जो समय आने पर अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित होकर वृक्ष बनकर लहलहा उठा और जिसकी छांव में अनगिनत कलाकारों को आश्रय मिला।

वे जितने महान कलाकार थे उतने ही अच्छे इंसान भी थे। अत्यन्त स्नेही, विनम्र और हंसमुख राधावल्लभ जी के संपर्क में जो एक बार आता उनके मोहपाश में आबद्ध हो जाता। उनसे प्रथम परिचय का वह सुंदर क्षण मै आज तक विस्मृत नहीं कर सकी। मैं ब्याह कर लखनऊ आई थी। संगीत मेरे रोम रोम में रचा बसा था। मैंने इलाहाबाद में संगीताचार्य पंडित वामनराव ठकार से विधिवत शास्त्रीय संगीत की शिक्षा ली थी। लोकगीत मैंने अपनी दादी, चाची और मां से बाल्यकाल में सीखे थे, उनकी धरोहर मेरे पास सुरक्षित थी। मैं निरंतर राधावल्लभ जी का गायन आकाशवाणी पर सुनती रहती थी। उनकी कीर्ति तो पुष्प की सुगन्ध की भांति चतुर्दिक व्याप्त हो चुकी थी। लखनऊ आकर मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मेरे पति को संगीत से बहुत प्रेम था। कलाकारों से उनका संपर्क था। राधावल्लभ जी उनसे बहुत स्नेह करते थे। वे मुझे उनसे मिलाने ले गए। उन्होंने हमारा बहुत स्वागत किया। मुझसे गाने के लिए आग्रह किया,पूछा- कौन से करले से गाती हो? मैंने वताया चौथे करले से। उन्होंने इतना मधुर तानपूरा मिलाया कि मैं हतप्रभ रह गई। मैंने उन्हें राग मधुवंती की वंदिश, 'पायलिया' मोरी बाजे; सुनाई मेरे आलाप तानों, बोल तानों पर वे मुग्ध हो उठे। बड़ी सराहना की मेरे गायन के उपरांत उन्होंने जो मधुवंती गाना प्रारंभ किया तो मैं स्तव्ध रह गयी। आह! दानेदार, खटके, मुरकियों से भरा कितना मधुर कंठ था और ऊपर से विलक्षण गायकी। मैं उनके गायन के माधुर्य में खोई हुई थी कि उन्होंने तुरंत ही लोकगीत गाना प्रारंभ कर दिया।

छूम छूम छननन छननन ननन,
प्यारे की पैंजनियां बाजेरे।
लाला की पैंजनियां बाजेरे।।

शास्त्रीय संगीत से एकदम लोकगीत पर आ जाना कितना अद्भुत था। शास्त्रीय गायन और लोकगीत का ऐसा सम्मिश्रण मैंने जीवन में पहली बार सुना था। कहां वातावरण में पायल की मधुर झनकार गूंज रही थी और कहां कान्हा की पैंजनियां छनन छनन बज उठीं। उस स्वर्णिम क्षण को मैंने अपने अन्तर्मन के कोने में संजोकर रख लिया। उनसे आशीर्वाद और समय समय पर कुछ विद्या देने का आश्वासन लेकर घर चली आई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ समय के बाद मेरी नियुक्ति महिला विद्यालय पी.जी. कॉलेज के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर हो गई। मैं समय समय पर उनकी शास्त्रीय गायन और लोकगीतों की समन्वित शैली के आधार पर संगीत नाटिकाओं का मंचन करवाती रही। कालान्तर में मैंने उन्हीं की प्रेरणा से सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य 'पदमावत' के विख्यात अंश बारहमासा का नाट्य रूपान्तरण किया। बारहमासा की दोहा चौपाइयों को बारह महीनों के क्रम में शास्त्रीय संगीत और लोकधुनों में निबद्ध कर रंगमंच पर संगीत नाटक प्रस्तुत की। दर्शक भावविभोर हो उठे उन्होंने इस प्रस्तुति की भूरि भूरि प्रशंसा की। मैंने अपने प्रेरणास्रोत राधावल्लभ जी को नमन किया जिनकी प्रेरणा से मैं इस शैली को अपना सकी थी और सफलता प्राप्त की थी।

वे तो तपस्वी की भांति थे हर पल हर क्षण अपनी साधना में रत रहते। लोकगीतों में तो उनका रूझान और समर्पण देखते ही बनता था। उनका युग आकाशवाणी के लोकगीतों के विभाग का जैसे स्वर्णयुग था। सुदूर अंचलों से लोकगायक आते- भोजपुर, बुन्देलखंड, ब्रज, अवध आदि से आये कलाकारों का बड़े चाव से रिहर्सल करवाते। उनके गायन के माधुर्य में रम जाते। रिहर्सल के उपरांत मनोयोग से उनके लोकगीतों का प्रसारण करते। वे उनके लोकगीत सुनते कंठ में उतार लेते और मस्तिष्क में उनकी स्वरलिपि बना लेते ऐसी अलौकिक प्रतिभा थी उनमें।

एक बार मैं 'आकाशवाणी गांव में' एक कार्यक्रम में आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र के प्रस्तुतकर्ता के साथ अपने मायके उरई गई। गायकों से भेंट हुई। वहां के सुप्रसिद्ध लोकप्रिय गायक अमरदास से भेंट हुई। वे बोले "लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्र में राधावल्लभ जी पर देवी मां की असीम कृपा है। इधर हमारे लोकगीत प्रसारित किये उधर तुरंत ही कंठ में उतार लिये हमें गाकर सुना दिये और तुरंत ही उनकी स्वरलिपि तैयार कर ली।" अनगिनत लोकगीतों की स्वरलिपि उनके मस्तिष्क में सुरक्षित थी और लोकगीतों के संकलन का विचित्र उन्माद था उन्हें।

लोकगीतों के संकलन का स्तुत्य प्रयास उन्होंने किया। एक यायावर की भांति दूर दूर तक ग्रामीण अंचलों में भ्रमण किया वहां के लोक गायकों को मनोयोग से सुना और लोकगीतों का संग्रह किया। वे आश्रमों में रहे वहां साधु संतों के साहचर्य से उन्होंने भक्तिभाव से परिपूर्ण लोकगीत सीखे। वे मंदिरों, गुरुद्वारों, मेलों, पर्व त्योहार पर आयोजित समारोहों में जाते वहां से लोकगीत एकत्रित करते। यही नहीं; खेतों खलिहानों में जाकर कृषकों के उन्मुक्त कंठ से गाये गीतों को सुनकर उन्हें कंठस्थ कर लेते। उन्होंने लोकगीतों की थाती को सुरक्षित करने का अथाह प्रयास किया-शास्त्रीय संगीत पृष्ठभूमि के कारण उन लोकगीतों की स्वर लिपि तैयार की जिसकी प्रति कृति है उनकी पुस्तक "ऊँची अटरिया रंग भरी"।

ये पुस्तक लोकगीतों का विशाल सागर है जिसमें अमूल्य रत्न हैं। इसे लोकगीतों का इनसाइक्लोपीडिया कह सकते हैं जहां हर प्रकार की सामग्री संग्रहीत है। यह एक शाश्वत ग्रंथ है जिससे सदियों तक कलाकार लोकगीतों का प्रशिक्षण ले सकेंग। विविधत उन्होंने लोकगीतों का वर्गीकरण किया हैं- रखवाली गीत, चकिया गीत, संस्कार गीत खेत पनघट गीत, सीला बीनने के गीत, ऋतु सम्बन्धी गीत, मेला गीत, लांगुरिया, होली गीत के विभिन्न रूप वर्णित हैं।

इस पुस्तक में संकलित लोकगीतों में मानव का भाव संकुल हृदय प्रतिबिम्बित होता है। मन की अनुभूतियों की अभिव्यंजना देखेते ही बनती है। इनमें भारतीय संस्कृति का सुंदर चित्रण है। इनके सम्बन्ध में डा. राम खेलावन पांडेय का कथन पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है।

"जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता, और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संवेदनशीलता उनमें है वह शास्त्रीय काव्य विधान में नहीं है। कला यदि रागात्मक क्षणों की अभिव्यक्ति है तो ग्राम गीत निश्चय ही कलात्मक हैं उनमें भाव का और संगीतात्मकता का समन्वय है।"

राधावल्लभ जी ने लोकगीतों का विभाजन बड़े ही सुंदर ढंग से किया। विभिन्न संस्कारों पर गाये जाने वाले गीतों में मानव मन की उमंग देखते ही बनती है। हमारी संस्कृति मे प्रमुख रूप से षोडश संस्कार होते हैं। उन संस्कारों पर जो गीत गाए जाते हैं- सरिता, सोहर, अन्नप्राशन, मुंडन, जनेऊ, विवाहगीत आदि में मन की उमंग, उत्साह देखते ही बनता है। ढोलक की थाप, मंजीरे की खनक, चूड़ियों की झनकर के साथ नारी कल कंठों से निःसृत इन लोकगीतों से वातावरण मधुरता से सराबोर हो उठता है। इनमें मन की इन्द्रधनुषी भावनाएं झलक उठती हैं। हर अंचल के लोकगीतों में लोकजीवन प्रतिबिम्बित होता है। भावनाएं, परम्परायें वहीं व्यक्त होती हैं बस बोली बदल जाती है और उच्चारण भी।

संस्कार गीत हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन गए हैं कोई भी संस्कार बिना लोकगीतों के पूरा नहीं होता। हर संस्कार पर गाए जाने वाले गीतों में मन का उल्लास देखते ही बनता है । हर संस्कार का शुभारम्भ देवी गीत से होता है। राधावल्लभ जी ने विविध अंचलों के देवी गीतों का संकलन किया। आवस्था वही, विश्वास वही श्रद्धा वही; बस अंचल के अनुसार शब्द बदल जाते हैं-.....

देवी गीत (अवधी)

मोर महारानी विंध्याचल की रानी,
कड़े में झूलैं पालना।। मोर महारानी
सोने की थरिया मा जिवना परोस्यो।
मोर महारानी विंध्याचल की रानी,
कड़ें में जेवें जेंवना।। मोर महारानी

बुन्देली देवी गीत (उंचरी)

मैया के गढ़ पै मेला
अकेली मैं तो सेवा को ठाढ़ी।।
सोने की थारी में भोजन परोसो
जेओ मोरी आदि भवानी।।

देवी गीत (भोजपुरी)

झूमत झूमत मैया अयली देवघरवा,
चलि मैली मलिया दुआर।। ए मैया
सूतल बाडूकि जागिले मालिन
हमरे के पनिआ पियाऊ ।। ए मैया

पुत्र जन्म के समय गाये जाने वाले लोकगीतों में लोक जीवन, रीति रिवाजों और परम्पराओं का वर्णन होता है-

सोहर- (अवधी)
राजा हम कोउ का मनावै न जैबे।
सासू जो अइहें चरुआ चढ़ै हैं
उइ नेग चार मंगिहें हम देबैन करिबै
रिसाय चली जैहें मनावै न जैबे।
जिठनी जो अइहे पिपरी पिसैहें
उइ नेग चार मंगिहें हम देबै न करिवे
रिसाय चली जैहें मनावे न जैबे।

सोहर (ब्रज)

चलौ गयों लखिया बन कूं
सोबड़ में छोड़ी अपनी नार।।
लाल तेरे चाचा मैं बुलाय दऊं
जौ तक आबै तेरो बाप।।
सोहर (बुन्देलखंडी)
पिया बिन कोख न सौहे
ललन बिन सोहर रे महाराज।
ललना तो गए है ससुर जू के भागे
सासू जू के भागे
हमारो जामै का लागै महाराज।

विवाह संस्कार पर गाये जाने वाले गीतों में मन का आह्लाद देखते ही बनता है। जान पड़ता है कि सारे सुख सिमट कर मुट्ठी में आ गए हैं।-

विवाह गीत (अवधी)
हरे हरे बांस कटाओ मोरे बाबुल
ऊँची छावों चौपाल रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सागर ताल खुदाओ मोरे बाबुल
हाथी पिये जल नीरे रे।

बन्ना (बुन्देलखंडी)

इन गलियन है के लैयो जी रघुनाथ बना कौ।
शीश सोहै रेशम की पगिया
कलगी में अतर लगैयो जी।। रघुनाथ
कान बने के कुंडल सोहें
चुन्नी पै अतर लगैयो जी ।। रघुनाथ

राधावल्लभ जी लोकगीतों में इतरे रमे हुए थे कि उन्हें किसी की चिन्ता नहीं रहती थी। जान पड़ता था जैसे लोक जीवन ही उनका परिवार है और लोक वाद्य उनकी गृहस्थी। उनकी पत्नी और पुत्री नीलम ने उनका हर पल साथ दिया। घर आये हर अंचल के लोक कलाकारों का आदर सत्कार होता था। उनसे वे उन्हीं की बोली में बातचीत करते थे।

उनकी आत्मजा नीलम चतुर्वेदी बताती हैं "हर अंचल के लोकगीत गाने में चाचा सिद्धहस्त थे। विभिन्न अंचलों से आये लोक गायक उनके मुंह से अपनी ही बोली के लोकगीत सुनकर आश्चर्य से भर उठते। अपने पिता से लोकजीवन के संस्कार उन्हें विरासत में मिले तभी तो कालान्तर में दूरदर्शन महानिदेशालय- नयी दिल्ली में उपनिदेशक के पद पर कार्यरत होते हुए भी लोकगीतों की ओर उनका असीम झुकाव है।"

वे बताती है कि "जब चाचा ऋतु गीत गाते तो ऋतु ही जैसे साकार हो उठती। " ऐसे चित्रात्मक ऋतुगीतों का संकलन उन्होंने किया था।

चैत्र मास आते ही प्रकृति का अनूठा श्रृंगार मन को मोह लेता है। झूमती वल्लरियां, खिलते पुष्प झरते मधुकण, कोयल की कुहुक, आम्रमंजरियों की महक के साथ चतुर्दिक गूंज उठते हैं मधुर चैती गीत। उनके प्रणव की मधुर भावनाएं व्यक्त हो उठती हैं। मन अनूठी उमंग से भर उठता है।

हथवा लगत कुम्हलाय गइल रामा
जूही के फुलवा
बेला मैं तोड़ ल्यूं, चमेली मैं तोड़ ल्यूं
तोड़त तोड़त कुम्हलाय गइली रामा
जूही के फुलवा।।
बेलो मैं गूंध ल्यूं चमेली मैं गूंध ल्यूं
गुंधत गुधत कुम्हलाय गइली रामा
जूही के फुलवा

चैत्र मास में चारो ओर गूंज उठती हैं होली गीतों का मादक धुनें। चारो ओर बरसती हुई सतरंगी फुहारें उड़ते हुए अबीर गुलाल के बादल वातावरण को आनंद और उल्लास से भर देते हैं। ढोलक, झांझ मंजीरे पर गूंजती फाग, धमार, होली हुलारा चौताल की धुनें और उन्माद से भरकर होली खेलते नर नारी। होली गीतों के माधुर्य में मानव भाव विभोर हो जाता है हर अंचल में गूंजते हैं होली गीत-

धमार (अवधी)

आयो रे ऋतुराज आज ये होरी खेलन आयो
बन वन बाग बाग गलियन में
मधर सुगन्ध उड़ायो
हरियर पात पिछौरी ऊपर, अमित रंग ढरकाये।।
... आज ये...

डेढ़ताल (राधावल्लभ जी द्वारा विरिचित)

सखी फागुन मास नियराये
अरे, मोर प्रियतम नाहीं घर आये हमें तरसाये।।
टेसू फूलै आम बौराने, गेंदा फूल फूल हरसाने
सरसो फूल सुहाये ।। अरे मोरे प्रियतम.....

शास्त्रीय संगीताचार्य, लोक गायक और रचनाकार का समन्वित रूप थे राधावल्लभ जी तभी तो समाज में अत्यन्त लोकप्रिय थे। सभी आतुर हो उठते थे उनके मधुर लोक गीतों को सुनने के लिए। अनगिनत होली के गीत उन्हें कंठस्थ थे जिनमें से कुछ उन्होंने लिपिबद्ध किये हैं। अनेक गीत शिष्यों को लगन से सिखाये हैं।

हर ऋतु पर उनके कंठ से गीतों की रसधारा प्रवाहित होती थी। पावस ऋतु में प्रकृति का सौंदर्य देखकर वे मंत्रमुग्ध हो जाते। हरी हरी चूनर ओढ़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धरती, झूमते वृक्ष, हंसते मुस्कराते फूल, लहलहाती मेंहदी, पुरवैया के झोंके, कोयल की मोठी वोली, चातक की पुकार मयूरों के नृत्य, पावसी घटाएं और रिमझिम फुहार। आह्! भला कौन न रसरिक्त हो उठेगा। चारों ओर गूंज उठती वर्षा गीतों की धुनें चौमासा, कजरी, सावन, झूला, मल्हार, सावन की मादक धुनें सुनकर मानव आनंद रस से सरावोर हो उठता-

चौमासा-
प्रथम मास असाढ़ हे सखि
चलेली जलधार हो।
उमड़ घुमड़ मेहा बरसन लागे,
भीज गए लम्बे केस हो
कजरी-
नहीं आये सजना हमार
सावनवा आइ गइले ननदी।
सावन बहरिया छायी चहुं ओरिया
सावनवा आइ गइले ननदी
मल्हार-
अरी मैना उठी है घटा घनघोर
बिजुरी तो चमकै जोर से।।
अम्बर गरजे, बादल गरजे री
अरी मैना मोर मचावे सोर
बिजुरी तो चमकें......
सावन...
अबकी सावन सैंया घर से निकसो
न जाओ मोरे महराज रे।
घन की चोट अस बदरा जै लागै
बिजुरी लगै जैसे गाज र । न जाओ....

हर ऋतु के लोकगीत राधावल्लभ जी ने संग्रहीत किए। क्वार मास के गीतों में नवरात्र भर देवी मां की भक्ति से परिपूर्ण लोकगीतों की कड़ियां मां की भक्ति और निष्ठा से मानव को भर देती हैं तो कार्तिक माह में गंगा स्नान और तुलसी माता के गीत चारों ओर गूंज उठते हैं। उन्होंने गांवों में जाकर जाति गीत, श्रमगीत आदि ग्रामवासियों के साथ रहकर सीखे और उन्हें तालवद्ध और लिपिवद्ध किया।

खेत रखवाली गीत
अपनै सिवनम में रचल्यू मचनवां
नित उठ पैहरा देऊँ रे।
जो कोई होते हमरा संघाती
वारी वारी पैहरा देतिउ रे
चकिया गीत
गैले विदेसवा ककस जिया बोधवि हो
अरे रामा मोरा प्रभु।।
बहेला वयार पुरवैया तो सिखचन डोलत हो
अरे रामा मोरा प्रभु।।
सीजा बीनने का गीत
सासू की वीनी डलरिया रे,
सीजा बीनै जाऊँ।।
अंगना मा बोलै सोना चिरैया
बन मा कुहुक रहे मोरवा रे,
सीला बीनै जाऊँ।
कहरा
वालू रेतिया डगरिया चलब कैसे
वाही पनघटवा पै सखियां सहेलरी
रसरिया वाटै छोट मरव कैसे
बालू रेतिया......

लोकगीतों का क्षेत्र कितना व्यापक है यह उनकी पुस्तक 'ऊँची अटरिया रंग भरी' में देखते ही बनता है। वे गांवों की जनता में भी अन्यन्त लोकप्रिय थे।

अपने समय के प्रतिष्ठित पत्रकार स्व. नंदराम चतुर्वेदी ने उनके सम्बन्ध में कहा था।

"डा. राजेन्द्र प्रसाद से लेकर फकीर तक ने इस जन कलाकार को सुना और सिर धुना है।

संगीत की महान परम्परा को निर्भीकतापूर्वक ऊँचा और ऊँचा ले जाने की तमन्ना उनके नेत्रों में बेचैनी की लपट बन कर जलती रहती है।"

अपनी इस धुन, लगन के कारण ही वे इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महान कार्य कर सके। लोकगीतों की इस धरोहर को अपनी अमर कृति "ऊँची अटरिया रंग भरी" में संजो सके जो जनमानस के लिए वरदान सदृश है। उन्होंने एक और कालजयी कृति की रचना की।

"संगीत के सिद्धान्त पक्ष पर एक सर्वजन सुलभ एवं प्रामाणिक ग्रंथ 'सा रे ग म' लिखकर पं. राधावल्लभ ने स्तुत्य प्रयास किया। उ.प्र. सरकार ने वर्ष 1952 में इस पुस्तक को इंटरमीडिएट कोर्स हेतु मान्यता प्रदान की।"

वे महान संगीताचार्य, विलक्षण रचनाकार लोकगीतों के प्रणेता, लोकसंगीत के सशक्त हस्ताक्षर थे। वे तो उस अलौकिक दीपस्तम्भ की भांति हैं जिसका प्रकाश युग युग तक धरती को आलोकित करता रहेगा पुरातन वट वृक्ष की तरह उनका व्यक्तित्त्व था जिसकी अनगिनत शाखाएं पल्लवित होकर वृक्ष बनकर लहलहा उठी हैं और मानव को उमंग से आपूरित कर रही हैं। ये हर पीढ़ी के प्रेरणा प्रदान करती रहेंगी।

उन्होंने उन्मुक्त रूप अपनी विद्या दान की। उनके अनेकों शिष्य उनके सिखाये गीतों के गायन द्वारा मानव को उन्हीं की भांति भाव विभोर कर देते हैं।

कहते हैं कलाकार अमर होता है। पं. राधावल्लभ जी अपने अगणित शिष्यों के हृदय, में कंठ में, गायन में विद्यमान हैं। उन्होंने अपनी कला मंजूषा से अमूल्य रस निकालकर उन्मुक्त रूप से सबको बांटे। जिस पथ पर पग रखा था अवविराम, अनवरत उसी पर चलते रहे। वे जिस ओर से निकले अनेक पग उनके साथ चल पड़े। ऐसे अमर अपराजेय संगीताचार्य को शत शत नमन। ☐

6, इच्छा भवन
मुन्नेलाल धर्मशाला रोड
पानदरीबा चौराहा चारबाग, लखनऊ
सम्पर्क : 0522-2637647, 9335262043

अकादमी-प्रकाशन

1.	गीत समूह/गोविन्द नारायण नातू	₹ 1 00.00
2.	कजरी/डॉ. शान्ति जैन	₹ 65.00
3.	चन्दन चौक/सम्पादक : डॉ. विद्या निवास मिश्र	₹ 225.00
4.	आदिवासी लोकगीत उमाकान्त त्रिपाठी	₹ 15.00
5.	कौरवी लोकगीत डॉ. सत्या गुप्ता	₹ 15.00
6.	कुमाँउनी लोकगीत मोहन उप्रेती	₹ 15.00
7.	गढ़वाली लोकगीत डॉ. शिवानन्द नौटियाल	₹ 15.00
8.	सारंगी डॉ. सुरेशव्रत राय	₹ 25.00
9.	आग़ा हश्र और नाटक अब्दुल कुद्दूस नैरंग	₹ 35.00
10.	आल्हखण्ड की परम्परा डॉ. लक्ष्मी गणेश तिवारी	₹ 25.00
11.	तराना-संग्रह डॉ. कृष्णनारायण तैलंग	₹ 220.00
12.	संगीत रामायण : वालकाण्ड पं० रामाश्रय झा 'रामरंग'	₹ 200.00
13.	बनी नवाब वाजिद अली शाह	₹ 130.00
14.	नाजो नवाब वाजिद अली शाह	₹ 85.00
15.	बुन्देलखण्ड की फागें अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'	₹ 160.00
16.	लोकनाट्य नौटंकी : कुछ प्रश्न रवीन्द्रनाथ बहोरे : विजय पण्डित	₹ 250.00
17.	बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ और हम सब पं. ज्योतिन भट्टाचार्य	₹ 600.00
18.	याद-ए-राहत अली नित्यानन्द मैथाणी	₹ 150.00

प्रत्येक क्रयादेश पर 30% की छूट
अपना क्रयादेश आज ही भेजें।
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,
विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे गुरुदेव

●केवल कुमार

गुरु के सन्दर्भ में चर्चा करने से पूर्व गुरु का आन्तरिक एवं वाह्य अस्तित्व बिना उनकी कृपाके माँ शारदा भी मूक हो जाती हैं। अस्तु, गुरु को मेरा यह प्रथम भाव अनुभूति हेतु प्रस्तुत है जिनसे ऊर्जा पाकर मैं दो शब्द व्यक्त कर सकूँ।

"बंदऊ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि
महामोह हम पुंज जासु बचन रबि कर निकर"

'गुरु कृपा प्राप्त होने से पूर्व सौभाग्यवश संगीत के प्रति रूझान एवं ज्ञान मुझे वंशानुगत ही प्राप्त हुआ। मेरे बड़े भ्राता श्री स्व. कृष्ण कुमार मास्टर रतन के शिष्य थे। स्व पुरुषोत्तम दास जलोटा एवं मेरे बड़े भइया एक ही गुरु के शिष्य थे। मेरे घर पर शास्त्रीय संगीत का जमावड़ा होता था। शाम से ही तानुपरा छिड़ जाता था। राग-बहार, राग बसंत, राग मालकौश, राग दरबारी, मुल्तानी भैरवी आदि का सुगम मधुर संगीत गायन, गुरु कृपा से गूंजने लगता था। बड़े भइया की मित्र मण्डली रोज़ शाम नियत समय पर इकट्ठी हो जाती थी।

प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने के साथ समय बीतता गया। इण्टर करने के बाद मेरे कई जन्मों के पुण्य एवं मेरे माता-पिता के आशीर्वाद के फलस्वरूप मुझे मेरे भाग्य विधाता, पथ-प्रदर्शक, कर्मयोगी गुरु श्रेष्ठ स्व. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का सानिध्य वं शिवपत्व प्राप्त हुआ। एक पुरानी युक्ति मानस पटल पर उभर रही है। उंसको भी उकेरना उचित समझता हूँ-

"जैसी होनी हो बिता वैसी मिली सहाय"

इसी समय के समतुल्य दो घटनाएं एक साथ घटित होनी की प्रक्रिया में थीं।

प्रथम- इण्टर उत्तीर्ण करने के पश्चात के.के.वी के बेसिक सेक्शन में टीचिंग जॉव मिल गयी। कार्य करते हुए विषयों के साथ-साथ मैं संगीत भी सीखता था और भाग्यवश वार्षिकोत्सव करवाने का भी अवसर प्राप्त होता था जिसमें धुन बनाने का भी शौक पूरा हो जाया करता था। इसी विद्यालय के सह अध्यापक श्री संतराम त्रिपाठी जी भी थे। जो मेरे संगीत की प्रस्तुति, आवाज एवं काम से प्रभावित थे। (यहीं वह समय था जिसने मेरे जीवन को कर्म-क्षेत्र एवं उद्देश्य प्रदान किया) उन्होंने कहा कि- मैं तुम्हारा परिचय गुरु श्रेष्ठ श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी से करवाना चाहता हूँ जो एफआईआर में कम्पोज हैं। उनसे शिक्षण लें। मैं प्रसन्नतापूर्वक उनके आवास पर त्रिपाठी जी के साथ गया। गुरुजी ने मेरा गाना सुना। सम्पूर्ण जन्मों की कृपा का फल ही था जो गुरु कृपा प्राप्त हुई। उन्होंने मुझे शिक्षा देना स्वीकार किया। अन्तर्मन में एक दुविधा और वेदना भी थी कि मेरे पास उनका पारिश्रमिक देने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। मेरे पिता जी स्व. परमेश्वरी दयाल नार्दन रेलवे में हेड क्लर्क थे जो 1952 में रिटायर हो चुके थे। घर में पैसे की बड़ी तंगी थी। इसी कारण इण्टर के बाद मुझे नौकरी करनी पड़ी। यद्यपि सौभाग्य से कक्षा 6-10 तक शिक्षा के दौरान मैंने शास्त्रीय संगीत सीख लिया था।

मात्र रु. 52.75 की मासिक आय में जीवन निर्वाह गुरु दक्षिणा मुझ अकिंचन द्वारा सामर्थ से परे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था) मेरी वस्तुस्थिति से अवगत होने के पश्चात गुरु जी ने मुझे शिक्षा देना आरम्भ किया। संगीत के प्रति घोर समर्पण एवं लगाव के वशीभूत मेरे गुरुदेव के लिए धन, मेरी शिक्षा के लिए अवरोध न बन सका।

संगीत शिक्षा का श्री गणेश लोक गीतों से हुआ- उस समय अवधी भोजपुरी, ब्रज, बुंदेली एवं सभी बोलियों के लोकगीतों का प्रसारण आकाशवाणी लखनऊ से ही होता था। विशेष बात यह है कि उन दिनों लोक गीत की स्वर परीक्षा तानपुरे से ही होती थी। कारण यह कि उस समय तक हारमोनियम को आकाशवाणी में शामिल नहीं किया गया था। गुरुदेव ने मुझे 15-20 लोक गीत सिखाये और मुझे पार्टी बनाने को कह पार्टी बनाकर रियाज़ करके तानपुरे पर गुरुदेव को लोक गीत सुनाया किन्तु वह तानपुरे के स्वर से मेल नहीं खा रहे थे। तब गुरु जी मुझे तानपुरे के साथ कैसे गाया जाता है, बताया व सिखाया। काफ़ी रियाज़ और मेहनत के बाद मेरी पार्टी 1960 में आकाशवाणी से अनुमोदित हो गयी।

पहला कार्यक्रम दीपावली के उपलक्ष्य में था। एक संगीत रूपक मिला। गुरुदेव का आदेश था कि संगीत रुपक के सारे गीत तुम ही कम्पोज़ करोगे। उन्होंने मेरी प्रतिभा को पहचान कर मुझे बाध्य किया। फिर क्या था सारे गीत कम्पोज किये जो मेरे गुरु जी द्वारा पसन्द किये गये तथा उन्होंने आकाशवाणी में रिकार्ड करवाया। मुझे स्मरण है कि- उस समय 55 रुपया पूरी पार्टी का एक चेक मुझे मिला था।

कालान्तर में वह पार्टी टूट गयी। गुरु प्रेरणा से नई पार्टी बनाई जिसमें गुरु माँ, गुरु जी की भतीजी गौरी, गुरु जी के साढू शंकर चतुर्वेदी, मेरी बड़ी बहन मालती शामिल थे।

संगीत के प्रतिदिन सीखने की विधा निरन्तर गुरु सानिध्य में चलती और निखरती रही। गुरुजी के लाल कुंआ स्थित निजी आवास पर शाम 7.30 तक मैं पहुँच जाता था। यह क्रम अनवरत चलता रहा। गुरुजी जो कुछ भी किसी को सिखाते रहे मैं अपने आप ही उस विधा को कंठस्थ कर लेता था, चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या फिर लोक-गीत, भजन, गज़ल या गीत।

समकालीन गायक कलाकारों श्रीमती रेबा गौ़न, माधुरी चतुर्वेदी, काजल बनर्जी, हरिवंश जायसवाल, नियामत अली बहुत ही अच्छे-अच्छे गायक आकाशवाणी के चुने हुए कलाकारों में से थे उनसे मुलाकात हुई। उन दिनों एक नये घटनाक्रम ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। दिल्ली दूरदर्शन पर लोक गीत का राष्ट्रीय गायन था और पुरुष गायक की कमी थी। मेरी समस्या यह थी कि मैं एकल गायन के लिए अनुमोदित नहीं था। यह मेरे लिए गुरुदेव जी की ही असीम अनुकम्पा थी कि प्रोड्यूसर से बात कर, मुझ अकेले की लोक-गीतों के सन्दर्भ में सोलो परीक्षा करवा दी। इस प्रकार मैं दिल्ली दूरदर्शन के एकल गायन कार्यक्रम में भाग लेने योग्य हो गया। फिर क्या कहना था। गुरु कृपा ने एक नयी बूस्टर खुराक प्रदान की। आये दिन आकाशवाणी के श्री मुजद्दिनिया ज़ी के संगीत सभाओं में मुझे अवसर मिलने लगे और गुरुदेव भी अपनी सभाओं में कार्यक्रम देने लगे। उस जमा़ने के शास्त्रीय गायक चिन्मय लहरी की छोटी बहन आरती लहरी ने मेरे साथ युगलइ गाना शुरु किया। वाह क्या आवाज़ थी, कानों में कोयल की कूक सी उठती थी। कानों में जैसे शहनाइयाँ सी बजती थीं और मन भाव-विभोर हो जाता था। आरती लहरी जी के साथ मेरी युगलबंदी काफ़ी लोकप्रिय हुई और पसंद की गई।

गुरु कृपा तो मेरे ऊपर थी ही और धीरे-धीरे ऐसा रिश्ता बना जिसकी अभिव्यक्ति सिर्फ भावनाएँ ही कर सकती हैं शब्द तो नहीं। बेगम अख़्तर के घर जाते समय मैं उसी क्षण गुरुदेव साहब की इच्छानुसार उनके साइकिल के पीछे बैठ कर चल देता था। वहाँ पर ढेर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारी बातें, गाना-बजाना खूब होता था। यह वही स्थान है (बेगम अख़्तर साहिबा का घर) जहाँ मैंने ग़ज़ल गायकी के क्षेत्र में प्रवेश किया। मज़े की बात यह कि मैं अपने ही द्वारा कम्पोज़ किये हुए गीत ग़ज़ल भजन गाता हूँ।

कालान्तर में बगम अख़्तर साहिबा के कूच करने के बाद उनकी बरसी 30 अक्टूबर को उन्हीं की ड्योढ़ी पर वर्षों ग़ज़ल गाने का सुअवसर मुझे मिलता रहा। यह मेरी खुशनसीबी ही तो है और क्या? मैं जब गुरुदेव के चरणस्पर्श करता तो वह पैर छूने से मना करते। मेरे द्वारा पूछे जाने पर कि ऐसा क्यों गुरुजी तो वह कहते थे कि मैंने तुम्हें पारंगत एवं सर्वश्रेष्ठ होने का आशीर्वाद दिया हुआ है।

मेरे गुरुदेव ने अपने साथ संगीत सभाएँ, संगीत रुपक के अवसर प्रदान किये जो मुझे सीख देते रहे। रियाज़ करने एवं संगीत साधना करने के तरीकों को बताया। मेरे गुरुदेव ने मुझे क्या नहीं दिया। अपना सम्पूर्ण ज्ञान, शास्त्रीय संगीत, ख्याल, ध्रुवपद, धमार, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, गीत, भजन और लोक संगीत की सारी विधाएँ मुझ पर उड़ेल दीं। इस क्षेत्र में बिताये पल, अनुभव किये पल, कर्म आज भी मन को पुलकित कर देते हैं।

मेरे विचार से जो स्नेह जन्म देने वाली माँ एवं पिता से प्राप्त होता है। प्रथम गुरु तो माँ ही होती है। उन सब की सम्मिलित संयुक्त भावनाओं से भी आगे गुरु हैं। मुझे गुरु में माँ की उदारता, दया, पिता का धैर्य, संरक्षण उससे भी आगे का गुरुत्त्व दिखाई पड़ता है जिन्होंने मुझ अकिंचन पर कृपा करके समाज में मान-सम्मान, धन-वैभव, संगीत की सभी विधाओं के प्रचार-प्रसार प्रस्तुति का उद्देश्य प्रदान किया। इन्हीं शब्दों के साथ मेरी रचनाएँ गुरुदेव को समर्पित हैं। गुरुश्रद्धा विश्वास में निहित है। अन्तर्मन स्थित गुरुजी को कोटि-कोटि नमन निवेदित करता हूं।□

छायानट के पूर्व-प्रकाशित संग्रहणीय विशेषांक

पं. माधव शुक्ल अंक	अंक 18	₹ 4.00
बाल रंगमंच अंक	अंक 35	₹ 6.00
रंगभूमि अंक	अंक 40	₹ 6.00
काशी अंक	अंक 44	₹ 6.00
डॉ. लाल स्मृति अंक	अंक 45	₹ 6.00
प्रसाद अंक	अंक 49	₹ 6.00
अकादमी रजत जयन्ती अंक	अंक 50	₹ 10.00
संगीत अंक	अंक 53	₹ 10.00
लोक रंगमंच अंक	अंक 54	₹ 10.00
शब्द और संगीत अंक	अंक 55	₹ 10.00
पं. भोलानाथ भट्ट अंक	अंक 57	₹ 10.00
काव्य-नाटक अंक	अंक 60	₹ 10.00
संगीत : तब और अब	अंक 61	₹ 10.00
रातनजनकर स्मृति अंक	अंक 64	₹ 10.00
नौटंकी विशेषांक	अंक 76	₹ 25.00
लोकनाट्य विशेषांक	अंक 90	₹ 25.00
लोकनृत्य विशेषांक	अंक 92	₹ 25.00
विजय तेन्दुलकर पर केन्द्रित अंक	अंक 96	₹ 25.00
बादल सरकार विशेषांक	अंक 100	₹ 25.00
ब.व.कारन्त विशेषांक	अंक 103	₹ 25.00
भीष्म साहनी विशेषांक	अंक 106	₹ 25.00
पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र विशेषांक	अंक 107	₹ 25.00
जे.एन.कौशल विशेषांक	अंक 110	₹ 25.00
रमेश मेहता विशेषांक	अंक 113	₹ 25.00
प्रो. सत्यमूर्ति अंक	अंक 116	₹ 25.00
दयाप्रकाश सिन्हा विशेषांक	अंक 117	₹ 25.00
नाट्यांक	अंक 119	₹ 25.00
मोतीलाल क्यूमू विशेषांक	अंक 124	₹ 25.00
दिनेश ठाकुर विशेषांक	अंक 129	₹ 25.00
सिद्धेश्वर अवस्थी अंक	अंक 132	₹ 25.00
डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र' विशेषांक	अंक 134	₹ 25.00
स्वर्ण जयंती अंक	अंक 137-138	₹ 50.00
कथक विशेषांक	अंक 140-141	₹ 50.00
उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ां अंक	अंक 146-149	₹ 50.00

उपरोक्त अंकों की सीमित प्रतियाँ ही उपलब्ध

इन अंकों अथवा 'छायानट की वार्षिक सदस्यता हेतु हमें सीधे लिखें :

सचिव

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,

विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाजत बँसुरी मृदंग

● डॉ. अरुण त्रिवेदी

अतीत कितना भी पुराना हो, पर कुछ स्मृतियाँ रेशमी कपड़ों और स्वर्णाभूषणों जैसी होती है, जरा सा झाड़िए, तो चमकने लगती है। स्व. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व एक ऐसा ही व्यक्तित्व था जो आज भी मेरे दिलो-दिमाग में तरोताज़ा है। वे एक महान संगीतज्ञ थे, उनकी स्मृतियाँ तानपुरे पर आलाप की तरह उतरती हैं, फिर 'सम' पर थिरकने लगती हैं।

स्व. राधावल्लभ जी के सन्दर्भ में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण जो बात पहले स्मरण में आती है, वह यह है कि वे भारतीय शास्त्रीय संगीत के बड़े जानकारों में थे। संगीत उनकी रग-रग में रचा बसा था, यही कारण है कि उनकी संगीत रचनाएँ सरस और स्वाभाविक होने के साथ-साथ लोकप्रिय भी हुआ करती थीं।

बीसवीं सदी के छठे और सातवें दशक के लखनऊ का स्मरण करता हूँ, तो आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र को साहित्य, संगीत और रंगकर्म के बड़े और सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में पाता हूँ। बड़े-बड़े कवियों, लेखकों, संगीतकारों, रंगकर्मियों और कार्यक्रम संचालकों की उपस्थिति ने इसे पूरे उत्तर भारत में एक विशिष्ट स्थान दिला दिया था। वैसे तो यहाँ कई संगीतकार थे, पर राधावल्लभ जी इन सबसे अलग थे। शांत चित्त और सहज स्वाभाविक वृत्ति वाले राधावल्लभ जी सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी एक बड़े कलाविद थे।

शास्त्रीय संगीत में निष्णात राधावल्लभ जी आकाशवाणी पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिये प्रसारित कार्यक्रम 'पंचायत घर' से जुड़े हुए थे, यह कार्यक्रम बाद में 'किसानों के लिये' नाम से प्रसारित होने लगा था। इस कार्यक्रम में लोक-संगीत अधिक प्रसारित होता था, इसलिए राधावल्लभ जी को लोक-संगीत की रचनाएँ भी करनी होती थीं। वे इस संगीत के भी अच्छे जानकार थे। उनका रचा संगीत भी उन दिनों बहुत लोक-प्रिय हुआ था, श्रोता पसन्द करते थे, इसलिए उनकी रचनाएँ बहुत अधिक प्रसारित होती थीं, इस तरह आकाशवाणी की उद्घोषणाओं में उनका नाम बराबर गूँजा करता था। धीरे-धीरे उत्तर-भारत के विविध क्षेत्रों में लोक-संगीत पर राधावल्लभ जी की गहरी पैठ बन गयी थी।

कलाकार किसी भी क्षेत्र का हो उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं, ये विशेषताएँ ही उस कलाकार को लोकप्रियता और अमरता देती हैं। शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भ में यह बात सर्वविदित है, कि सुर और ताल की यह अद्भुत साधना है, जो संगीत को एक पूर्णता प्रदान करती है। राधावल्लभ जी की रचनाओं में यह पूर्णता स्पष्ट दिखायी देती है। मुझे लगता है कि विलुप्त हो रहे लोक-संगीत को बचाए रखने के लिये और उसके प्रोन्नत स्वरुप की संरचना के लिये, राधावल्लभ जी की रचनाएँ सार्थक सिद्ध हो सकती हैं।

राधावल्लभ जी की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा का अन्य कारण उनकी शिष्य मण्डली थी। उनसे बहुत सारे लोगों ने संगीत सीखा, उनके इन शिष्यों ने उन दिनों लखनऊ में बहुत नाम भी कमाया, इस लोकप्रियता के पीछे राधावल्लभ जी का संगीत शिक्षण ही था। इस शिष्य मण्डली में रेबा गौन और उनकी सहेलियों ने सर्वाधिक ख्याति अर्जित की थी। उन दिनों लखनऊ में बहुत सारे लोग थे, पर राधावल्लभ जी अद्वितीय थे।

मेरे पिता स्व. चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' मुख्य रूप से कवि और लेखक के रूप जाने जाते थे, पर यह बात बहुत कम लोग जानते हैं, कि उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत कला का भी अच्छा ज्ञान था, आकाशवाणी पर उनका पहला कार्यक्रम भी संगीत का ही हुआ था। यह संगीत प्रेम ही था, जिसने रमईकाका और राधावल्लभ जी को गहरा मित्र बना दिया। राधावल्लभ जी मेरे लिये पितृव्य जैसे थे, तदनुरूप ही जीवन भर हमारा व्यवहार भी रहा।

कहा जाता है कि शास्त्रीय-संगीत की ध्रुपद-शैली का गायन अपेक्षाकृत कठिन होता है, राधावल्लभ जी इसी कठिन गायकी के अद्वितीय कलाकार थे। पिताश्री प्रायः राधावल्लभ जी को इसी गायकी के लिये घर पर संगीत गोष्ठियाँ करते थे। बफाती उस्ताद ढोलक पर और तबले पर मुन्ने खाँ जैसे बड़े वादक हुआ करते थे, पर जब सखाराम जी की पखावज होती थी, तो लोग सम पर वाह-वाह कह उठते थे।

आज जब इस सब के बारे में सोचता हूँ, तो सब कुछ बड़ा दुर्लभ सा लगता है। आनन्द के वे क्षण पुस्तकों और शोध-ग्रंथों में डूबते चले गये, फिर भी संगीत रस को मैंने अपने जीवन में बचाए रखा, आज जीवन के इस सतत्तरवें पड़ाव पर भी अपनी ढोलक या नाल पर उन क्षणों को थोड़ा सा जी लेता हूँ, संतोष की साँस लेकर स्मृतियों में डूब जाता हूँ, बोल गूँजते हैं- 'बाजत बँसुरी मृदंग'। ❑

अ.प्रा रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
आर.एम.महाविद्यालय, सीतापुर,उ.प्र.

अवधी गीतों के शास्त्रीय गायक : पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी

●डॉ. शरद मणि त्रिपाठी

20वीं सदी का पूवार्द्ध सामाजिक पुनर्जागरण के साथ-साथ संगीत की पुनर्प्रतिष्ठा का भी गवाह रहा है। अत्यन्त समृद्ध भारतीय संगीत संक्रमण काल में घरानों, कोठो, रियासतों और देवालयों तक सीमित हो गया था। ऐसे समय में विष्णुद्वय पं. विष्णु नारायण भातखण्डे एवं पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने संगीत कला को समाज की मुख्य धारा में लाकर अनेक औपचारिक संगीत शिक्षण संस्थान स्थापित किये। संगीत को एक विषय के रूप में विद्यालयीय शिक्षा में मान्यता मिली। अभिजन समाज अपने बच्चों को संगीत व अन्य कला विषयों से दूर रखना ही श्रेयस्कर मानता था। इन्हीं परिस्थितियों में श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी एवं मेरे पिता-गुरु एवं पं. राम नारायण मणि त्रिपाठी जैसे प्रतिभा सम्पन्न कई अभिजात्य साहसी युवाओं ने संगीत शिक्षा ग्रहण करने व संगीत सेवा को अपने जीवन का अभीष्ट चुनने का व्रत लिया।

भातखण्डे जी की प्रेरणा से लखनऊ में स्थापित "मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक (सम्प्रति भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, समतुल्य विश्वविद्यालय) में राधावल्लभ जी, मेरे पिता पं. राम नारायण मणि त्रिपाठी, श्री तारापद चक्रवर्ती, श्री नरेश भट्टाचार्य, चिन्मय लाहिड़ी, रामकृष्ण त्रिपाठी, शिव बिहारी मिश्र, हेमचन्द्र जोशी आदि ने शिक्षा ग्रहण की। पं. एस.एन. राजानजनकर 'सुजान' जैसे समर्थ गुरु की छत्रछाया में शिक्षित-प्रशिक्षित शिष्यों ने परवर्ती जीवन में संगीत जगत को अपनी सामर्थ्यानुरुप महती योगदान से अभिसिंचित किया है।

मैरिस कालेज में श्री राधावल्लभ जी एवं मेरे पिता जी सहपाठी से घनिष्ठ मित्र बन गये, बाद में आजीवन पारिवारिक सम्बन्ध बने रहे। मैं 4 वर्ष का था जब मैंने उन्हें जाना। हम लखनऊ के गणेशगंज मोहल्ले में रहते थे तब। तभी से मुझे श्री राधावल्लभ चाचा जी का पुत्रवत स्नेहाशीष मिलता रहा। 1949 में मसूरी और फिर 1951 में पिता जी गोरखपुर आ गये और आजीवन यहीं शास्त्रीय संगीत की सेवा की। लम्बी छुट्टियों में पिता जी मुझे चाचा जी के पास रहने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिये लखनऊ भेज देते। मैं उनके लाल कुँआ स्थित आवास में अनेक बार 15-20 दिनों तक रहा। चाचा जी लखनऊ आकाशवाणी के स्टूडियो ले जाते जहाँ मुझे-अनेक उच्च कोटि के कलाकारों को देखने-सुनने और बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला। घर पर मैं गाने और तबले का अभ्यास करता तो वह मुझे प्रोत्साहित करते और कहते 'तुम त्रिपाठी जी की तरह (पिताजी) गा बजा रहे हो। इन प्रवासों में मुझे उनको सुनने का भरपूर आनन्द मिला। उनकी मधुर सुरीली आवाज़ में अजीब आकर्षण था।

पं. रातनजनकर जी से विधिवत शास्त्रीय गायन का प्रशिक्षण प्राप्त कर आकाशवाणी में म्यूज़िक प्रोड्यूसर नियुक्त हुए राधावल्लभ जी ने अवधी लोक संगीत का विधिवत अध्ययन, मनन किया और फिर उसी में रच-बस गये। ऐसे मनीषी गुरु से दीक्षा प्राप्त शिष्य जब लोक गीतों को आत्मसात कर जब पूर्ण समर्पण-निष्ठा से गाता है तो अवधी संगीत एवं संस्कृति उपकृत होती है और तब 'राधा वल्लभ चतुर्वेदी' एक प्रतिमान बन जाते हैं। एक लम्बी शिष्य परम्परा, एकल, युगल, समूह-गान के अनगिनत रचनात्मक प्रयोगों से उन्होंने लखनऊ केन्द्र को एक अलग पहचान दिलाई थी। गोरखपुर ने भी कई बार उन्हें सुना था। मेरे पिता जी विशुद्ध शास्त्रीय गायन के आग्रही रहे - रागालाप, ख्याल, तराना ही गाते रहे, सिखाते रहे। एक बार मुझे चाचा जी ने सुनकर पुत्र-शिष्यवत निर्देश दिया 'तुम ठुमरी भी सीखो' और यह कथन मेरे आगे के संगीताभ्यास के लिये बहुमूल्य साबित हुआ। विज्ञान का छात्र होने के नाते उन्हीं के एक शिष्य श्री केवल कुमार ने मुझे आकाशवाणी में सुगम संगीत की स्वर-परीक्षा हेतु प्रेरित किया और 1968 में पुनः आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारण के बहाने अपने चाचा जी से नियमित सम्पर्क होने लगा और पूर्ववत स्नेहाशीष मुझ बरसता रहा।

गौर वर्ण, आकर्षक व्यक्तित्व, सहज-सरल स्वभाव, हंसमुख चेहरा, मिलनसार राधावल्लभ जी में सबको साथ लेकर आगे बढ़ने की धुन थी और इन सबके साथ अद्‌भुत आत्मसम्मान। उनकी मेटैलिक कलर की साइकिल पूरे लखनऊ में अलग ही थी। एक बार अपनी पुत्री नीलम को घुमा कर लौटे तो मुझसे शेयर किया- रेडियो के सामने से गुजरते हुए उन्होंने कहा कि आज जो चाहो दिला दूंगा। पहली तारीख थी, जब में पूरा वेतन था। "शरद बेटा! जानते हो नीलम ने क्या मांगा? रेडिया स्टेशन के टावर के ऊपर लगी हुई लाल बत्ती।" वह चौंके, अवाक और निरुत्तर हुए थे।

श्री राधावल्लभ जी ने कई पुस्तकें भी लिखीं जिनमें से एक 'सा रे गा मा' आज भी उनकी व्यक्तिगत भेंट के रूप में हैं। संगीत जगत में उनका योगदान अप्रतिम है, उनकी रचनाएँ, गीत अमूल्य धरोहर हैं। मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैंने उन्हें देखा था, उनका पितृवत स्नेह, आशीर्वाद मिलता रहा। उनकी अक्षय देह को मेरा विनम्र कृतज्ञ प्रणाम्! ❑

एम.एससी., पीएच.डी. संगीत प्रवीण
सी-190/96 बिलन्दपुर, गोरखपुर

मशहूर ग़ज़ल-गायक उस्ताद राहत अली खाँ
के सांगीतिक जीवन और
हिन्दुस्तानी सुगम संगीत को प्रदत्त
उनके योगदान को उकेरती एक अनुपम पुस्तक

याद-ए-राहत अली

लेखक : नित्यानन्द मैथाणी

मूल्य : रु. 130.00 मात्र
अग्रिम आदेश पर 30% छूट

सचिव,
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,
लखनऊ-10.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविस्मरणीय पल

● अशोक गोस्वामी

मैं उस समय कम उम्र में ही आकाशवाणी, लखनऊ की सेवा में था। प्रायः सभी वरिष्ठ एवं मूर्धन्य कलाकार मेरे आदरणीय पिताजी वायलिन वादक डा. जी.एन. गोस्वामी जी के निकटस्थ होने के कारण मुझसे पुत्रवत् स्नेह रखते थे, जो मेरा परम् सौभाग्य रहा।

उन्हीं में आदरणीय राधावल्लभ जी भी थे जिन्होंने मुझ मार्गदर्शन दिया। विभिन्न विधाओं में भटकने के बजाय मुझे उनके सान्निध्य में ही रहना श्रेयस्कर लगा। मेरे जीवन में उनका यह मार्गदर्शन प्रत्येक स्तर पर प्रतिफलित रहा जिससे मुझे अपना मार्ग प्रशस्त करने में कभी कठिनाई नहीं हुई।

राधावल्लभ जी स्वयं ऐसे विलक्षण प्रतिमूर्ति थे जिनका अधिकार शास्त्रीय संगीत के साथ ही साथ लोकसंगीत पर भी समान रूप से था।

प्राचीन काल से ही यह मान्यता रही है कि लोक संगीत एवं नैसर्गिक प्राकृतिक कल्लोल ही शास्त्रीय संगीत का जनक रहा है। आदरणीय राधावल्लभ जी का इन दोनों ही विधाओं में पारंगत होना उन्हें अत्यन्त बिरले कलाकार की श्रेणी में अवस्थित करता है।

मेरा परम् सौभाग्य है कि उनसे मुझे लोकगीत से उत्पन्न विभिन्न रागों का ज्ञान प्राप्त हुआ। ऐसे महान विभूति का मैं सर्वदा कृतज्ञ रहूंगा।

मेरे आदरणीय पिताजी डा. जी.एन. गोस्वामी जी, जो रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय में इंस्ट्रूमेण्टल म्यूजिक के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष थे, एवं लब्ध प्रतिष्ठ वायलिन वादक रहे तथा स्व. मुश्ताक हुसैन तथा स्व. आशिक अली खां के विधिवत् शागिर्द थे। श्रद्धेय राधावल्लभ जी उनसे सर्वदा अपनी जिज्ञासा का शमन करते रहते थे। जैसे-विशेष रूप से, राग तोड़ी क सभी विभेद एवं प्रकार, उदाहरणार्थ शुद्ध तोड़ी, मियाँ कीा तोड़ी गुर्जरी तोड़ी, विलासखानी तोड़ी के साथ हुसैनी तोड़ी पर अपना वर्चस्व वना चुके थे। हुसैनी तोड़ी वर्तमान में चर्चा से तो परे है ही, उसका ज्ञान लुप्त प्रायः हो चला है। तत्कालीन समय में भी यह अति विरल ही थी।

प्रसंगवश, मेरी स्वयं की आकाशवाणी में रिकार्डिंग चल रही थी जिसे श्रद्धेय राधावल्लभ जी तन्मयता से सम्पन्न कर रहे थे। मेरी प्रस्तुति के उपरान्त भी मेरे द्वारा उसे हुसैनी तोड़ी बताने पर उन्होंने उसे इस रूप में न प्रस्तुत करके वरन् राग तोड़ी का अति विशिष्ट प्रकार बताकर रिकार्डिंग किया।

इस जानकारी पर बाद में मेरे आदरणीय पिताश्री ने भी इस पर अपनी सहमति व्यक्त करते हुए अभिमत दिया कि ऐसे विशिष्ट प्रस्तुतीकरण को तभी किया जाना उचित होता है जब उसमें परिलक्षित सभी उपादान एवं उपांग सर्वथा अनुभूत संज्ञान में हों।

इसी प्रकार मेरे पिताजी डा. जी.एन. गोस्वामी जी ने श्रद्धेय राधावल्लभ जी के सत्संग के फलस्वरूप समाज में अन्य रागों, जैसे कल्याण के प्रकार, उदाहरणार्थ-यमन कल्याण, शुद्ध कल्याण, श्याम कल्याण, हेम कल्याण, खेम कल्याण इत्यादि के विषय में नूतन एवं विशिष्ट ज्ञान का अभ्युदय हुआ। मेरे लिए वे पल सर्वदा अविस्मरणीय रहेंगे। श्रद्धेय राधावल्लभ जी चिरस्मरणीय रहेंगे। □

वरिष्ठ कलाकार एवं पूर्व उप निदेशक
आकाशवाणी-लखनऊ
सी-85, सेक्टर-के, अलीगंज,
लखनऊ-24

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्सान-ए-कामिल : राधावल्लभ चतुर्वेदी

● पं. विनय कुमार अवस्थी

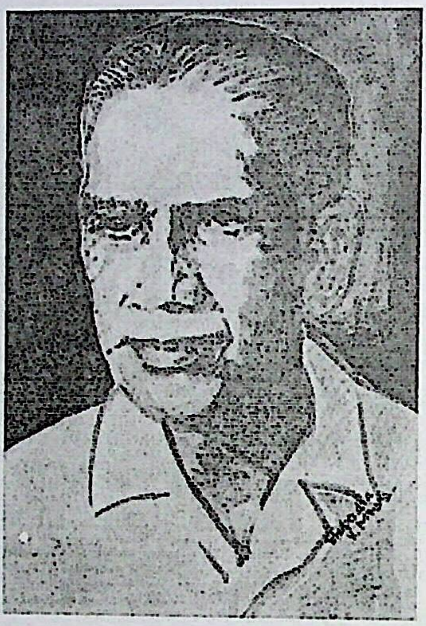

मेरा श्रद्धेय श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी जी से सम्पर्क श्री नन्दराम चतुर्वेदी 'नन्दू' एवं मेरे चाचा श्री पं. कृष्ण कुमार अवस्थी जी के माध्यम से हुआ।

उन दिनों, एक प्रकाशक होने के नाते संगीत विषय पर कुछ प्रकाशित करने की योजना बन रही थी। कथक-नृत्य से सम्बन्धित एक कृति 'कथक-नटवरी नृत्य' श्री के.एस. जैन, मथुरा द्वारा रचित थी जो प्रकाशनाधीन थी।

उसी सन्दर्भ में गायन की विधा को भी प्रकाश में लाने का विचार बना। लिहाज़ा श्री नन्द राम चतुर्वेदी जी से परामर्श के उपरान्त पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी को यह दायित्व प्रदान किया गया जिसे उन्होंने सहज एवं सहर्ष स्वीकार कर लिया। चन्द माह के श्रम के फलस्वरूप ' सा रे ग म' शीर्षक से उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई और उसकी विशेषताओं के कारण उसी वर्ष उपरोक्त दोनों पुस्तकें उत्तर प्रदेश राज्य माध्यमिक शिक्षा परिषद की इण्टरमीडिएट परीक्षा हेतु अनुमन्य हुई।

इन्ही सब के दौरान मैं तबला वादन सीखने हेतु श्रद्धेय श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी के सान्निध्य में लगभग दो वर्ष तक प्रयासरत रहा। इस अवधि में वह मुझे खुद तो, जो कुछ सम्भव था, ज्ञान वर्धन कराते थे। साथ ही, तत्कालीन उद्भट विद्वानों से भी मुझे मिलाते रहते थे। श्री जगदीश नारायण चौबे के घर वह अक्सर रात में लेकर जाते थे जहां दो-दो, तीन-तीन घण्टों का सतत अभ्यास होता था। यह क्रम लगभग दो-तीन वर्षों तक चलता रहा।

बीच-बीच में विशिष्ट आयोजनों में भी ज्ञानार्जन हेतु अपने साथ ले जाते थे।

इसके तारतम्य मे मैं उनके परिवार में भी पारिवारिक सदस्य के रूप में हो गया। तमाम लोग उनके पास वक्त-बेवक्त चले आते थे जिसपर भी उन्होंने कभी स्वयं को असहज नहीं पाया।

ऐसा विलक्षण था उनका व्यक्तित्व। पता नहीं कितनो को उन्होंने अलग-अलग विधाओं में निस्वार्थ भाव से प्रोत्साहित किया। जिनमें एक विलक्षण व्यक्ति कोई विक्टर नाम के एक सज्जन हुआ करते थे जो आकर रोज शौकिया बैठ जाते थे परन्तु एक ही पंक्ति को लम्बे समय तक बार-बार दोहराते रहते थे। पं. राधावल्लभ जी मुस्कराते रहते थे परन्तु कभी उन्हें हतोत्साहित नहीं करते थे।

इस प्रकार सभी स्तरों के लोग उनके पास आते थे, परन्तु उन्होंने कभी किसी को निराश नहीं किया। इसीलिए वे सच्चे अर्थों में इन्सान-ए-कामिल थे। □

मुख्य न्यासी सभापति,
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ
मो. : 9451242324

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पारम्परिक गीतों के संरक्षक

● रामकिशोर बाजपेयी

जब से होश सम्भाला है, लखनऊ के वातावरण को साहित्य व संगीत से परिपूरित पाया है। बचपन में जब मैं लखनऊ के मक़बूलगंज मोहल्ले की संकरी गलियों के बीच रहता था, तो प्रातः तड़के ही घर के पड़ोस व कहीं सुदूर क्षेत्र से चन्द संगीतज्ञों के अभिजात संगीत पर अभ्यास करने के स्वर सुनाई पड़ने लगते थे। दिन में अथवा फिर सायंकाल जब गलियों के बीच से निकलता था तो कुछ सितार वादक व तबला वादक अभ्यासरत मिल जाते थे। यदाकदा क़हीं से बाँसुरी के सुर भी बहते हुए कान से टकराते थे... और हाँ एक कथक नृत्यकार के पैरों की थापें भी सुनने को मिल जाती थीं। इसी प्रकार सड़क चलते सामान्य लोगों के बीच भी साहित्य और संगीत की चर्चाएं ही हुआ करती थीं। कहने का तात्पर्य की लखनऊ का समग्र वातावरण साहित्य एवं संगीत से ओत-प्रोत हुआ करता था।

परन्तु हाँ! संगीत के ऐसे वातावरण में सामान्यतया अभिजात संगीत (शास्त्रीय संगीत) सम्बन्धित विषयों पर ही चर्चा हुआ करती थी। तो भी इसका तात्पर्य यह नहीं कि लोकगीत पर कहीं कोई बात ही नहीं होती थी। लोक गीत पर भी बातें होती थी किन्तु महिलाओं तक सीमित रहकर। चाहे वह सावन के झूले का पर्व हो अथवा फिर घरेलू संस्कारों के बीच संस्कार से सम्बन्धित गीतों के प्रस्तुत करने की बात हो या फिर कोई अन्य पर्व से सम्बन्धित गीत। संगीत के इस क्षेत्र में महिलाओं का ही वर्चस्व और ऐसा वर्चस्व की शहर में सम्भवतः एक भी ऐसा मकान न था जहाँ की महिलाएँ लोकगीत व संस्कारी गीतों को न गाती हों। इन संस्कारी गानों को प्रस्तुत किये जाने की प्रक्रिया में सामान्यतया ढोलक और मंजीरे का ही प्रयोग हुआ करता था। यदि उन गीतों के बीच कभी यदि कोई नारी नृत्य हेतु खड़ी होती तो उसके पैरों में कभी कदार घुँघरू भी बंधे होते जिनकी झंकार वातावरण को और संगीतमय कर देती थी। लखनऊ के लोक गीत व संस्कारी गीतों की यह परम्परा लगभग सन् 1955 तक अबाध चलती रही।

इन लोकगीतों एवं संस्कारी गीतों के प्रचार प्रसार में लखनऊ के तत्कालीन आल इण्डिया रेडियो का विशेष योगदान था। करण कि कुछ ऐसे अप्रचलित लोक व संस्कारी गीत जो अन्यथा किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं थे उन्हें घर की महिलाएँ रेडियो से सुनकर कागज़ पर लिख लिया करती थीं एवं प्रसारण की प्रक्रिया में सुनी गयी उनकी धुन स्वयम् गाकर निकाल लेती थीं। आल इण्डिया रेडियो से इस प्रकार के लोक व संस्कारी गीत महिलाओं हेतु आयोजित कार्यक्रम में प्रसारित होते थे।

उन दिनों पं. (स्व.) राधावल्लभ जी आल इण्डिया रेडियो में कार्यरत थे एवं अपने लोक व संस्कारी गीतों के विशेष जानकार होने के कारण, हाँ कहीं भी उस प्रकार के गीतों की प्रस्तुति होती थी वहाँ उनका योगदान अपरिहार्य हो जाता था। यद्यपि पं. (स्व.) राधावल्लभ जी स्वयम् तत्कालीन मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक विद्यालय से सन् 1940 में संगीत विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की थी किन्तु बाल्यकाल से ही उनकी अभिरूचि लोक एवं संस्कारी गीतों के प्रति ही रही।

संयोगवश उनकी माताश्री स्वयम् इस प्रकार के पारम्परिक गीतों को गाने में पारंगत होने के साथ उनको स्वयम् ऐसे असंख्य गीत कंठस्थ थे। अपने बेटे राधावल्लभ में इस प्रकार की विशेष अभिरूचि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टिगत उन्होंने उसको उन्मुक्त मन से न कि मात्र उन पारम्परिक गीतों की धुनों को समझा दिया वरन उन्हें अनेक रचनायें भी कण्ठस्थ करवा दीं। अब इन पारम्परिक गीतों की प्रचुर सम्पदा को वो अपने गाँव में संजोये नही रखना चाहते थे। अतः उन्होंने निर्णय लिया कि वे उस अकूत सम्पदा के साथ लखनऊ की ओर कूच करें और उन्होंने वैसा किया भी।

परन्तु जब वह लखनऊ पहुंचे तो उन्होंने यहाँ का सर्वत्र वातावरण अभिजात संगीत से परिपूरित पाया। अतः उनको यह समझने में विलम्ब न लगा कि उनकी अपनी पारम्परिक गीतों की निधि की गुणीजनों में तभी पहचान बनवा पायेंगे जब वह स्वयम् लखनऊ की अपेक्षाओं के अनुरूप अभिजात संगीत के एक अच्छे जानकार हो जायें। तदनुसार सन् 1935 के आसपास उन्होंने लखनऊ के तत्कालीन मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक में प्रवेश ले लिया। उन दिनों उस कॉलेज के शिक्षक ख्यातिलब्ध कलाकार ही हुआ करते थे। अतः संगीत सीखने की प्रक्रिया उन्हें घोर परिश्रम करना पड़ा।

सन 1940 में उपरोक्त शिक्षण संस्थान से संगीत विशारद करने के उपरान्त सर्वप्रथम उन्होंने लखनऊ में ही शिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया। साथ ही वह यदाकदा अपने गायन का कार्यक्रम भी प्रस्तुत करने लगे। कहा जाता है कि कभी किसी स्थानीय गायक ने उन्हें द्वेषवश पान में सिन्दूर मिलाकर खिला दिया जिससे उनके कण्ठ से उपजे स्वरों में विकृतता

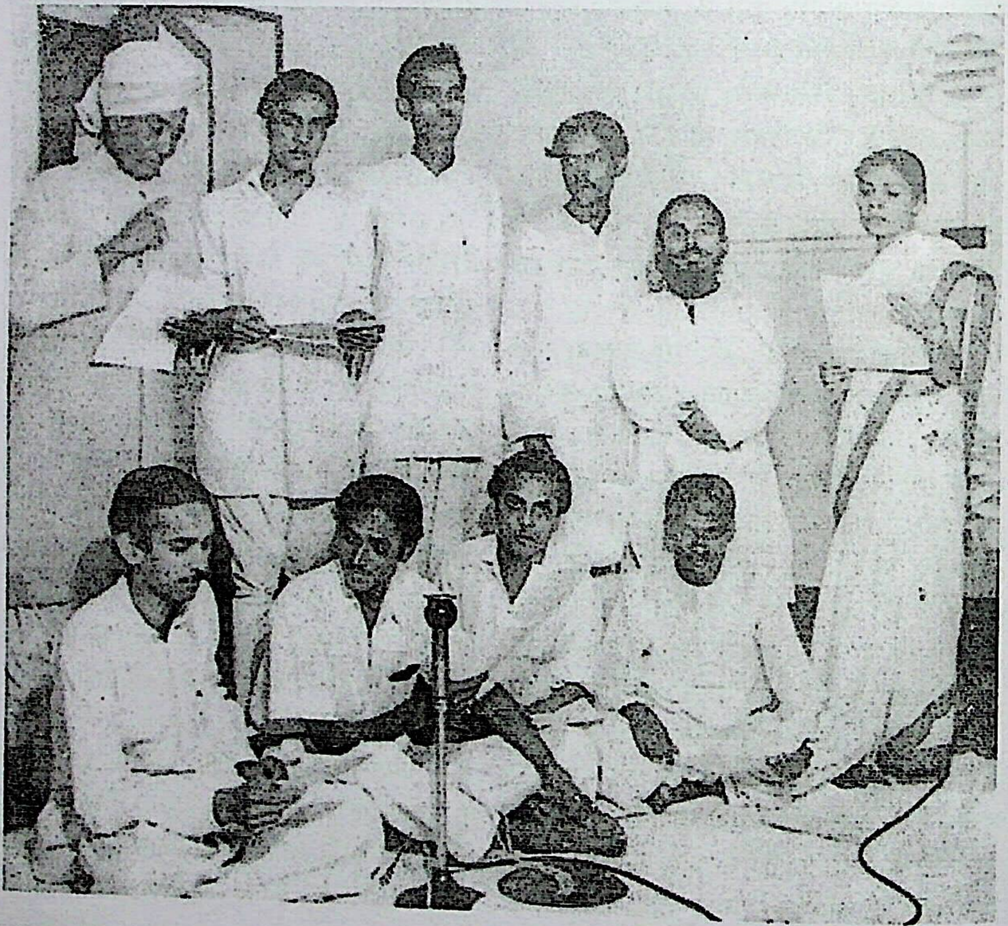

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ गयी, इस विकृतता को देशी भाषा में "गला बैठ जाना" कहते हैं। कण्ठ में आई इस विकृतता के कारण उनकी खुले कण्ठ से गाने में असुविधा होने लगी। अब उनको कण्ठ जो तीन अथवा साढ़े तीन सप्तक तक गाने की क्षमता रखता था वह दो ढाई सप्तकों तक सिमटकर रह गया। उनको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने गायन के कार्यक्रमों को देना बन्द कर दिया।

तथापि यह एक ऐसा समय था जब वह अपनी माँ से पाये प्रसाद एवं आशीर्वाद के सहारे आगे बढ़ सकने में समर्थ थे। उन्होंने फिर लोक व संस्कारी गीतों की ओर अपने ध्यान को केन्द्रित किया। संयोग से तभी उनको लखनऊ के तत्कालीन आल इण्डिया रेडियो के 'पंचायत घर' कार्यक्रम में लोक संगीतकार के पद पर नियुक्ति मिल गई। फिर क्या था... मानों भगवान ने उनको जन सामान्य व गुणीजनों के बीच अपने बालपन में अपनी माँ से पाई पारम्परिक गीतों की विधि की माला पिरोकर प्रस्तुत करने का अवसर दे दिया हो। 'पंचायत घर' व एक अन्य 'महिलाओं के कार्यक्रम' के माध्यम से उनके लोक व संस्कारी गीतों की सर्वत्र धूम मच गई।

इसके उपरान्त उन्होंने स्वयम् अपने प्रयासों से प्रदेश के सुदूर क्षेत्रों में जाकर वहाँ के दुर्लभ लोक गीतों का संग्रह कर उनका आल इण्डिया रेडियो के माध्यम से प्रसारण करवाया। इनमें से अनेक गीतों में उन्होंने शास्त्रीय संगीत का पुट भी भरा जिनमें घाटो, चैती, बिदेसिया आदि लोक गीतों के नाम उल्लेखनीय हैं।

यद्यपि पं. (स्व.) राधावल्लभ जी की ख्याति मुख्यतया उनकी अवध के गीतों के कारण है। कारण कि न कि मात्र उन्होंने इनको स्वयम् गाया व अन्य लोगों से गवाया वरन् उन्होंने अनेक ऐसे गीतों के स्वरों को लिपिबद्ध करके आने वाली पीढ़ियों को उनके गाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे इनकी सीमाओं में बंधकर रह गये थे। वरन् वह समय समय पर स्वजनों के बीच सीमित स्वरों में बंधकर ठुमरी, दादरा, ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि शैलियों में भी गाते थे। उनके द्वारा लोक व संस्कारी गीतों के स्वरों को लिपिबद्ध करके लिखी गयी पुस्तक "ऊँची अटरिया रंग भरी" सबसे अधिक लोकप्रिय हुई।

इस सन्दर्भ में में उल्लेखनीय है कि रेडियो सीलोन एवं आल इण्डिया रेडियो के विविध भारती के फ़िल्मी गीतों के प्रसारण में कभी किसी समय पूरे देश को फ़िल्मी संगीत की संस्कृति से ओत-प्रोत कर दिया था। उस समय पं. (स्व.) राधावल्लभ जी का आल इण्डिया रेडियो के माध्यम से किये गये प्रयासों से ही हमारे पारम्परिक गीतों की रक्षा हो सकी।

अपनी उपरोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त वह अपने सहज स्वभाव के कारण अपने मित्रगणों व सामान्य जनों के बीच बहुत लोकप्रिय रहे। उन दिनों लखनऊ के संगीत का संसार गुणीजनों से भरापुरा था। यहाँ का वातावरण ऐसा कि कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारियों से लेकर अधिकारी गण तक संगीत क्षेत्र के जानकार हुआ करते थे। फिर व्यवसायिक कलाकारों के क्या कहने। सितार के उस्ताद यूसुफ अली खाँ व उनके शिष्य उस्ताद सखावत हुसैन व रसिक बिहारी लाल, वायलन के डा. गोपीनाथ गोस्वामी, पखावज के पंसखाराम आदि कितने ही संगीतज्ञों से लखनऊ भरपूर था। आल इण्डिया रेडियो में 'रमई काका' मुमताज़ अली, मुख्तार अहमत, अर्जुन लाल आदि। पं. (स्व.) राधावल्लभ जी के प्रति सभी का स्नेह था।

उन दिनों सम्भ्रान्त परिवारों के लोग अपने घरों में संगीत की गोष्ठियाँ आयोजित कराते थे। अपनी लोकप्रियता के कारण वे उनमें से अधिकांश गोष्ठियों में आमंत्रित होते थे। स्वरों पर उनकी ऐसी पकड़ कि किसी गोष्ठी में तानपुरा मिलाने का कार्य उन्हीं के सुपुर्द होता था। उल्लेखनीय है कि संगीत के किसी कार्यक्रम में तानपुरा व तबले यदि सटीक न मिले तो गायक या वादक को अपनी प्रस्तुति के सुरीला बनाने में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाती। ☐

बी-1/36 सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने तहज़ीबी विरासत बचाई!

• नवाब जाफ़र मीर अब्दुल्लाह

लखनऊ एक क़दीम शहर है जो अपनी ज़बान, लिबास, तहज़ीब, अख़लाक, वज़ादारी, रवादारी, मिज़ाज, नज़ाकत, आदाब-तस्लीमात, दस्तरख्वान, शेर-ओ-शायरी, ठुमरी, दादरा, कथक, मौसीक़ी, पहले-आप, नायाब इमारतों, बाग़ात और नवाबों के शहर के तौर पर जाना और पहचाना जाता है, जो अपनी ख़ूबसूरती और तहज़ीब की बिना पर दुनिया का सबसे बेहतर शहर समझा जाता था।

1975 ई. से नवाब आसफ़-उद-दौलह बहादुर की क़्वाहिश और गुजारिश पर हिन्दोस्तान से माहिरीन-ए-फ़न, इल्म-ओ-हुनर से भरपूर लोग लखनऊ को आबाद करते रहे और लखनवी होकर पूरी दुनिया में अपना और लखनऊ का नाम रौशन किया।

जनाब पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी भी उनमें से एक थे जिनकी विलादत 12 जनवरी 1917 को मुरादाबाद में हुई जो पं. टीकाराम चतुर्वेदी की छठी औलाद थे। इनके वालिद अंग्रेजों के जमाने में नाज़िर थे और अपने बेटे को आला तालीम देकर दरोगा बनाना चाहते थे। लेकिन इनकी दुनिया कुछ और ही थी और बचपन से ही इनका रूझान मोसीक़ी में था जो उन्हें अपनी माँ से विरासत में मिली थी।

पुख़्ता इरादा और यक़ीन से भरपूर यह कमसिनी में ही अपना घर छोड़कर लखनऊ आए और यहीं सुकूनत इख़्तयार की, जैसे नौशाद साहब ने मोसीक़ी की दीवानगी में अपना लखनऊ छोड़ा और मुम्बई में रह कर मोसीक़ी की दुनिया में लखनऊ का नाम रौशन किया।

भातखंडे जो पहले Marris College of Music था, 1940 में आपने विशारद की डिग्री हासिल की और वहीं उस्ताद हो गए। इसी दौरान आप लखनऊ आकाशवाणी में पंचायतघर में लोकसंगीतकार की हैसियत से मुन्तख़ब हुए और यहीं रह कर आपने वह काम अन्जाम दिया जो अमर हो गया।

ऐसे नायाब और नादिर लोक संगीत ढूंढ-ढूंढ कर जमा किए जो आज और आने वाली नस्लों को हमेशा फ़ायदा पहुंचाएंगे और हमारी तहजीब-ओ-विरासत को क़ायम और दायम रखेंगे। अपने लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत की आमेज़िश पैदा कर के एक नया रंग दिया जिनमें छाटो, चैती, बिदेसिया वगैरा शामिल हैं। पं. जी ध्रुपद, धमार, ख़्याल, ठुमरी, ग़ज़ल भी खूब गाते थे।

मोसीक़ी को उसूलों पर आपने सा रे ग म किताब लिखी जिसे 1952 में उ.प्र. सरकार ने इंटरमीडियट कोर्स में शामिल कर दिया।

पं.जी ने 57 बरस की उम्र पाई और इसी लखनऊ में 10 जून 1974 में इन्तेक़ाल फरमाया।

2017 में इनके 100 साल पूरे हो रहे हैं और हम सभी का फ़र्ज़ है के ऐसे होनहार अश्ख़ास जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी एक खास मकसद में गुजारी और आने वाली नस्लों के लिए हमारी तहज़ीबी विरासत बचाई और संभाली उनके पूरी अक़ीदत से याद किया जाए।

"हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पर रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा"

□

शीश महल, दुर्गा देवी मार्ग,
लखनऊ-226003

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवधी लोक गीतों के महानायक

●डा. योगेश प्रवीन

समय अपने सन्दर्भ अपने सरोकार स्वयं सृजित करता है। इस कथन को पूरी तरह रेखांकित करता है लोक साम्राज्य को समर्पित श्रद्धेय राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का जीवन एवं कृतित्व।

अवध अथवा लखनऊ का सम्पूर्ण चरित्र इस हकीकत के लिए प्रसिद्ध रहा है कि यहां की संस्कृति भाषा और तहज़ीब के उत्कर्ष के लिए जो लोग आगे बढ़े वो सभी तरफ के लोग थे; सिर्फ लखनऊ के नहीं। यही कारण है कि यहां की चेतना अन्नत है और प्रेमिल सहभगिता से सम्पन्न है।

मुरादाबाद (उ.प्र.) जनवरी 1917 में पं. टीकाराम चतुर्वेदी जी के घर कई संतानों के बीच जन्मे पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का ललित स्वभाव लोक संगीत की ओर शुरू से लालायित था। नीलम जी ने स्वयं विदित किया है कि उनके दादा जी उन्हे दारोगा बनाना चाहते थे तो फिर संगीत जैसे लचकीले कैरियर को कैसे पसंद करते?

वर्तमान से 40 वर्ष पूर्व सन् 1977 में विद्या मन्दिर प्रेस रानी कटरा चौक, लखनऊ में मुद्रित तथा कैसरबाग स्थित उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी से ठाकुर जयदेव सिंह जी के तत्वाधान में प्रकाशित लोक रंग की अनमोल कृति 'ऊंची अटरिया रंग भरी' में नीलम चतुर्वेदी जी (श्रद्धेय की आत्मजा) ने उनकी पारिवारिक विभीषिका और मन की तड़प का बड़ा सहज सत्य प्रस्तुत किया है। उसे पढ़ कर ये बात समझ में आती है-

गुलाब ऐसे ही थोड़े गुलाब होता है
ये बात कांटो पे चलने के बाद आती है।

मैं तो यहां यही कहना चाहूंगा कि अवधी लोक गीतों के महत्व को रेखांकित करने वाले चतुर्वेदी जी पहले लोक गायक थे जिन्होंने उन गीतों को न सिर्फ गाया और सिखाया बल्कि उनका एक अच्छा खासा संग्रह है 'ऊंची अटरिया रंग भरी' जो आने वाले समय को वे सौंप गए

आज उसी विधा को सिद्ध प्रसिद्ध गायक गायिकाएं गा रहे हैं, लोकगीत कार्यशालायें संचालित कर रहे हैं, और उनका सुहाना भाव सौरभ समाज को सौंप रहे हैं और ये कहना गलत न होगा कि नयी पीढ़ी तक ये सुन्दर सन्देश बाकायादा पहुंच रहा है।

आज के लोग ठीक तरह समझ चुके हैं कि समाज में किसी दायित्व का अब कहीं कोई बंटवारा नही हैं। हमारा दर्शन भी इसी तरह तरह इशारा करता है। भगवान शिव नटराज नृत्य के; नन्दलाल श्री कृष्ण मुरली के तथा भरतमुनि तमाम संगीत नाट्य शास्त्र के प्रणेता हुए हैं। जिस तरह भोजपुरी लोकगीतों के बहाने 'भिखारी 'ठाकुर' याद किए जाते हैं; बुन्देली फाग के लिए 'ईसरी' का उपकार है; अवध लोकगीतों के सन्दर्भ में श्रद्धेय राधावल्लभ चतुर्वेदी जी को हमेशा याद किया जाएगा। हम उनके पुण्य स्मरण के साथ-साथ नयी पीढ़ी को उनका सच सौंप रहे हैं। ये कहते हुए कि-

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।

❑

'पंचवटी' 89, गौसननगर, पाण्डेगंज
लखनऊ-226018

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

A Sublime Persona
PANDIT RADHA BALLABH CHATURVEDI

• Karuna Shanker

I Knew Pandit Radha Ballabh Chaturvedi for quite a few decades. His life reminds me of what H.w. Long fellow said in his poem 'A Psalm of Life'

"Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime;
And departing leave behind us,
Footprints on the Sands of time"

A man is not known by his name but by his work and contribution to society. There are hundreds and thousands of people who come in to the world and go away without leaving anything to be remembered by.

Pandit Radha Ballabh Chaturvedi was indeed a great man who was venerated by his disciples and the music world has Sublime Persona according to the poet's concept.

One does not have to renounce the world or acquire godly qualities for being classed as sublime. It means how simple and helpful is the person to society.

Pandit Radha Ballabh Chaturvedi did not exhibit any arrogance or pride of being a music maestro. He did make a mark in folk music apart from having a deep and sound knowledge of Hindustani classical music.

He was simple and down to earth in his demeanour. He was an adept both in classical music and folk music of several region.

As a producer of folk/music in all India Radio (AIR), Lucknow, Pandit Balllab Chaturvedi enriched the radio with wide variety of regional compositions.

THE FAMOUS BOOK

His book, Unchi Ataria Rang Bhari (ऊँची अटरिया रंग भरी) is proof of his knowledge and mastery of regional folk music. It is not merely a collection of regional lyrics but with their notation along side world enable anyone to acquire the fine and intricate names of folk tunes.

Pandit Radha Ballabh's book testifies to his relentless efforts for bringing Obscure and rare folk lyrics to the fore for preventing them from going into oblivion .

Hindustani classical traditionally classified into "RAGAS AND RAGINIS' (राग एवं रागिनी) has a grammar, but folk music of every region has in own character, tunes high and low of notes, voice modulation intricate Permutations and combinations of musical notes typical of its region.

Folk music locked Looked in delicate Off-beat notes has amied long defied notation which was done by Pandit Radha Ballabh Chaturvedi in his pioneering efforts.

A MUSIC GENIUS

Pandit Radha Ballabh Chaturvedi as a music genius has, in his novel effort framed them in an elaborate notation scheme in the book.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Folk music has, down the generation, remained alive by word of mouth. The process, underline impart of modern and western music, has lost its tradition. The reason is simple and obvious, daughters of family no longer imbibe folk music from grandmothers, aunts mothers and elderly ladies of neighboring social groups, the girls today have come under the influence of sensuous film musical numbers, foot-tapping strains of modern compositions, having nothing to do with emotions (EMOTIONS) and meaningful messages of folk songs.

GREAT 'GURU'

The attributes of greatness are very many. Such a persons is never vain but a seeker of knowledge, and derives pleasure in encouraging other to rise. Pandit Radha Ballabh Chaturvedi also searched and discovered many obscure folk singers and brought them in programs of AIR Thus providing them a platform for displaying their talent and earn money from the fees paid to them for their performers. This process helped such singers commeet themselves with lovers of folk music.

In the long run these singer started getting place in stage performers which made them known and popular amongst lovers of folk music. This also helped them earned money and keep alive money a rare and vanishing folk tunes and songs.

GURU-SHISHYA TRADITION

Pandit Radha Ballabh Chaturvedi was a fatherly figure like a father who wants his son to excel him and rise higher in position, Pandi Radha Ballabh was keen to see his disciples rise higher than himself. Many of his SHISHYAS (Student) acquired fame and excellence in folk music. His disciples carried forward the tradition of their 'Guru' and groomed their students with dedication art.

Pandit Radha Ballabh's humble dwelling in Lalkuan ¼yky dq¡vk½ in Lucknow was virtually an ' AASHRAM (vkJe½ He followed the traditional GURU-SHISHYA PARAMPARA), apart from the time which he had to give to All India Radio as Producer of folk Moster of the rash of his time was devoted to grooming of his disciples at home.

HOME- AN AASHRAM

The AASHRAM spirit pervaded his home. Pandit Radh Ballabh Chaturvedi was . He willingly imparted knowledge and Framing in folk music ot his disciples who were poor and unable to afford payment of tuition fees.

His house was like a Gurukul. Pandit Radha Ballabh Chaturvedi the guru who was to impart knowledge and his disciples keen to acquire it

His house was more like a Gurukul where the disciples and pupils thronged in great number for most of the time quite a few of these students also had food and the entire lot were given tea and snacks.

Luckily Pandit Radha Ballabh Chaturvedi wife and his daughter Neelam Chaturvedi, who is presently Deputy Director,Doordarshan , Delhi, adapted themselves to the Gurukul life style.

And once again refer to long Fellows poem, Pandit Radha Ballabh Chaturvedi was indeed a great man because he did leave behind Footprints on the sand of time . His memory is cherished by the music world, especially the folk music performers and lovers. She write also has loving memories of this music genius. □

Senior Journalist, Lucknow

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुंदेलखंड के राई नृत्य को बचाने और सहेजने की जरूरत

● सियाराम पाण्डेय 'शांत'

भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है संगीत। नाचना और गाना आनंद की सहज अभिव्यक्ति है। आनंद रसरूप है। वह हवा का एक झोंका है। आता है तो रोम-रोम को पुलकित कर जाता है। गीत और संगीत को उमंग और उल्लास का संचारी सुगंधि भाव कहा गया है। कविता आत्मा का आह्लाद है। नृत्य आत्मा का दिशा-निर्देश है। विनोद शंकर मिश्र की पुस्तक ' द ग्रेट ओरिएंट' की पहली पंक्ति है- 'पोयम्स आर दि मंत्र।' अर्थात कविता मंत्र है। कविता में ही छिपे होते हैं रास और महारास के बीज। रामचरित मानस की आरती यह साबित करती है कि इस धरती पर देव, दनुज, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य सभी गा रहे हैं। 'गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। वाल्मीकि, विज्ञान विसारद। सुक सनकादि सेश अरु सारद।' यह तो एक पक्ष हुआ गायन का। दूसरा पक्ष है नर्तन का। तो भगवान शिव तांडव नृत्य करते हैं और भगवान कृष्ण गोपियों के साथ रास रचाते हैं। ' थी रात शरद उत्फुल्ल वदन। खिल उठा अचानक हरि का मन। सोचा बुलवा लें गोपसखी। हो चीर हरण की लीला भी।' गायन और वादन का प्रबल पक्ष है कि इसमें गाने वाला भी और नाचने वाला भी अपनी सुध-बुध खो बैठता है और नृत्य और गायन का ही होकर रह जाता है। यही हाल श्रोताओं और दर्शकों की भी होती है। 'नैना अंतर आव तू ज्यों हौं नैन झपेऊं। ना हौं देखौं और कूं ना तुझ देखन देऊं' वाली मनःस्थिति बनती है।

उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा प्रदेश ही नहीं, नृत्य और नाट्य संस्कृति का बड़ा केंद्र भी है। लोकनृत्यों का इसका अपना समग्र इतिहास है। नृत्य और संगीत इसकी रग-रग में समाया है। भक्ति का स्वरूप ही संगीतमय है। भक्तिरस मय है। जीवन को संगीत कहा गया है। श्वांसों की भी अपनी लय होती है। उत्तर प्रदेश में यूं तो कई लोकनृत्य प्रचलित हैं और सबका अपना महत्व है लेकिन बुंदेलखंड और बघेलखंड क्षेत्र का राई नृत्य देखते ही बनता है। वैसे तो उत्तर प्रदेश में अलग-अलग जातियों के

अलग-अलग लोकनृत्य हैं और सबकी अपनी विशेषता है। धोबी नृत्य, अहीर नृत्य, कहरही नृत्य, गोड़ऊ नाच, खटिकही नाच, मुसहरी नाच, डोमकच नाच, अगरही लोकनृत्य, करमा नाच, झूमर नाच, शैलान्त्य, बिदेसिया नृत्य,कजरी नृत्य और होली नृत्य। सबकी अपनी विविध ता है। सबके अपने स्वांग और रूपक हैं। सबकी अपनी टेर है। अपनी प्रस्तुति, अपनी कला है लेकिन राई नृत्य बुंदेलखंड और बघेलखंड के प्रख्यात नृत्यों में से एक है। यह नृत्य गुजरात के प्रसिद्ध गरबा नृत्य की तरह ही प्रसिद्ध है। राई नृत्य एक दो रोज का नृत्य नहीं, वरन यह बारहमासा नृत्य है। सही मायने में यह नृत्य बुंदेलखंडी जनमानस के हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति है।

बुंदेलखंड में राई नृत्य विवाह, पुत्र जन्म आदि शुभ अवसर पर किया जाता है। अशोकनगर जिले में तो देवी मंदिर के समक्ष हर साल विशाल करीला मेला लगता है जिसमें राई नृत्य का आयोजन सामूहिक रूप से किया जाता है। यहां लोग अपनी मन्नत पूरी होने पर देवी के मंदिर के समक्ष राई नृत्य कराते हैं। राई नृत्य के केंद्र में एक बेड़नी नर्तकी होती है। नृत्य को गति देता है एक मृदंगवादक राई नृत्य के विश्राम के अवसर पर स्वांग किया जाता है जो वहां उपस्थित जनसमूह को अंदर तक गुदगुदा देता है। इसके बाद फिर राई नृत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है। अन्य लोकनृत्यों में राई जैसी विशेषता देखने को नहीं मिलती। तीव्र गति, आशु काव्य रचना और अद्वितीय लोक संगीत में श्रृंगार व यौवन की बानगी आसानी से देखना हो तो बुंदेलखंड का राई नृत्य देखना अपेक्षित होगा। बुंदेलखंड की तरह ही बघेलखंड में भी राई नृत्य किया जाता है लेकिन इन दोनों जगहों के राई नृत्य में पात्र का विभेद होता है। बुंदेलखंड में राई नृत्य बेड़नी करती हैं जबकि बघेलखंड में पुरुष ही स्त्री वेश धारण कर राई नृत्य करते हैं। बुन्देलखंड में वाद्ययंत्र में मृदंग का इस्तेमाल होता है जबकि बघेलखंड में ढोलक व नगाड़े का प्रयोग होता है।

बघेलखंड में राई नृत्य विशेष रूप से अहीर करते हैं। परन्तु कहीं-कहीं ब्राह्मणियों में भी इसका प्रचलन मिलता है। पुत्र जन्म पर प्रायः वैश्य महाजनों के यहां भी राई नृत्य का आयोजन होता है। स्त्रियां हाथों, पैरों और कमर की विशेष मुद्राओं के साथ नृत्य करती है। राई नृत्य के गीत श्रृंगार प्रधान होते हैं। स्त्री नर्तकियों की वेशभूषा व आभूषण भी परंपरागत ही होते हैं। पुरुष नर्तक धोती, बाना, साफा, और पैरों में घुंघरू बांधते हैं। इस नृत्य और फाग गायन का सामंजस्य देखते ही बनता है। इसमें फागें गाई जाती हैं। मृदंग की थाप पर घुंघरुओं की झंकार, राई नृत्य और उसके साथ किए जाने वाले स्वांग न केवल अपढ़ और ग्रामीण जनों का मनोरंजन करते हैं, बल्कि शिक्षितों को भी सहज ही अपनी ओर खींच लेते हैं।

नर्तकी बेड़नी के साथ मृदंग बजाने वाला नाचता हैं और नाचते हुए बेड़नी के समीप आ जाता है। राई नृत्य के साथ यहां सुप्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी की फागें गाई जाती हैं। ईसुरी की फागों को प्रसिद्धि रंगरेजन नर्तकी और गायक धीरे पण्डा ने दिलाई थी। एक फाग की वानगी यहां विशेषतः दृष्टव्य है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने बुंदेलखंड विकास आयोग बनाने की बात कही है। इसे सूखे से निजात दिलाने की बात कही है। अगर वह अपने वादे पर कामयाब रहती है तो यहां की जनता को भोजन और पानी की चिंता नहीं रहेगी लेकिन मन और आत्मा की तृप्ति तो लोकनृत्य और लोक संगीत से ही होगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि इसे बचाने के लिए भी सरकार के स्तर पर सोचा और कुछ खास किया जा सकेगा।

'बजरई आधी रात बैरन मुरलिया जा सौत भई।
वन से तू काटी गई, छेदी तोय लुहार।
हरे बांस की बांसुरी मनो निकारो ने सार।
बैरन मुरलिया जा सौतन भई।
पोर-पोर सब तन कटे, हटे न औगुन तौर।
हरे बांस की बांसुरी ले गई चित्त बटौर।
बैरन मुरलिया तू सौत भई।'

ईसुरी की फागों में न केवल श्रृंगार रस की बहुलता है अपितु लोकमंगल की भावना को अभिव्यक्त करने वाले रस परिपाक भी हैं। जैसे शांत रस-

'वखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की, छाई पूस-चारे की।
बेबन्देज, बड़ी बेवाड़ा, जौ में दस द्वारे की।
एकउ नई किवार-किबरियां, बिना कुची तारे की।
'ईसुर' चाये निकारो, जिदनां हमें कौन वारे की।'

यह सच है कि लोकनृत्य और गीत-संगीत के लिए प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड से अब लोक संगीत विलुप्त हो रहे हैं। सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के दौर में बुंदेलखंड संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। अगर समय रहते बुन्देली लोक नृत्य परम्पराओं को बचाया न गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया, लोक कलाकारों को प्रोत्साहित न किया गया, लोकनृत्यों को रोजगारपरक न बनाया गया तो सैरा नृत्य, डोमरहा नृत्य, जवारा नृत्य, कीर्तन नृत्य, कानड़ा नृत्य, चांचरा या पाइ-डण्डा नृत्य, झांझिया नृत्य, मोनिया नृत्य, देवी नाच, चमरहा नृत्य, कहरवा नाच, राई नृत्य, ढिमराई नृत्य, कुम्हराई नृत्य, दुलदुल घोड़ी नाच, खशुआ नाच, चांगलिया नाच अतीत बनकर रह जाएंगे। कालांतर में इनका वजूद खत्म हो जाएगा।

बुन्देली लोक वाद्य अलगोजा, मौहर, रमतुला, बीन, डपला, दौंड़, नगाड़ा, खजली, अंजलि, नगड़िया, तांसा, चंग, नरगा, इकतारा, कसौरा, जोरी या झांझ, चिमटा आदि वाद्य बजाने वाले कलाकार धीरे-धीरे सिमट रहे हैं। राई नृत्य करने वाली बेड़नी की हालत अत्यन्त खराब है। अब तो पुलिस उनकी कला में देहव्यापार तलाशने लगी है। इस मानसिकता से उबरना होगा। बेड़िनों को सुरक्षा देनी होगी, उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटाना होगा। कलाकार अपनी कला के प्रदर्शन में यकीन रखता है। राजाओं के दौर से आज तक यही होता रहा है लेकिन पुलिस ने बेड़िन नर्तकियों और उनके आदमियों को जिस तरह जरायम पेशा मानना शुरू किया है, उस मानसिकता पर भी चोट करनी होगी। सरकार को भी राई नृत्य को जिंदा रखने के जतन करने होंगे। समय-समय पर कलाकारों का प्रोत्साहन करना होगा।

राई बुन्देलखण्ड के श्रेष्ठतम लोक नृत्यों में से है। भादो में कृष्ण जन्माष्टमी से प्रारम्भ होकर, यह नृत्य फाल्गुन माह में होली तक चलता है। बेड़िनियां राई नृत्य करते हुए, अपनी शरीर को इस प्रकार लोच देती हैं कि बादलों की गड़गड़ाहट पर मस्त होकर नाचने वाले मोर का सा मंजर उपस्थित हो जाता है। उनका लहंगा सात गज से अधिक का होता है। मुख्य नृत्य मुद्रा में अपने चेहरे को घूंघट से ढंककर लहंगे को दो सिरों से जब नर्तकी अपने दोनों हाथों से पृथ्वी के समानान्तर कन्धे तक उठा लेती है, तो उसके पांवों पर से अर्द्ध चन्द्राकार होकर, कन्धे तक उठा यह लहंगा नृत्यमय मयूर के खुले पंखों का आभास देता है। ऐसा लगता है कि नर्तकी हवा में तैर रही है। राई नृत्य में ताल दादरा होती है पर अन्त में कहरवा अद्धा हो जाता है। साथ में पुरुष वर्ग लोक धुन गाता है। नृत्य की गति धीरे-धीरे तीव्र होती जाती है। राई में ढोलकिया की भी विशिष्ट भूमिका होती है। कभी कभी एक से अधिक ढोलकिए भी नृत्य में होते हैं। ढोलकिए नाचती हुई नर्तकी के साथ ढोलक की थाप पर उसके साथ आगे-पीछे बढ़ते हैं, बैठते हैं, चक्कर लगाते हैं।

नृत्य के चरम पर ढोलकिया दोनों हाथों के पंजों पर अपने शरीर का पूरा बोझ सम्भाले हुए, टांगें आकाश की ओर कर, अर्द्धचंद्राकार रेखा बनाकर आगे-पीछे चलते हैं। इस मुद्रा में इसे बिच्छू कहा जाता है। राई नृत्य में नर्तकी की मुख्य पोशाक-लहंगा और ओढ़नी होती है। वस्त्र विभिन्न चमकदार रंगों के होते हैं। दोनों हाथों में रूमाल तथा पांवों में घुंघरू होते हैं। पुरुष (वादक) बुन्देलखण्डी पगड़ी, सलूका और धोती पहनते हैं। राई के मुख्य वाद्य ढोलक, डफला, झींका, मंजीरा, तथा रमतुला है। इस लोक नृत्यों को बचाने के लिए बुन्देलखण्ड में ही लोक संस्कृति केन्द्र की स्थापना जरूरी है। तभी बुन्देली लोक गीत, नृत्य, तथा लोक वाद्य सुरक्षित रह सकेंगे।

बुंदेलखंड की धरती अपनी कला, परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए गंभीर है। उत्तर प्रदेश सरकार ने बुंदेलखंड विकास आयोग बनाने की बात कही है। इसे सूखे से निजात दिलाने की बात कही है। अगर वह अपने वादे पर कामयाब रहती है तो यहां की जनता को भोजन और पानी की चिंता नहीं रहेगी लेकिन मन और आत्मा की तृप्ति तो लोकनृत्य और लोक संगीत से ही होगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि इसे बचाने के लिए भी सरकार के स्तर पर सोचा और कुछ खास किया जा सकेगा।□

एल-3/480, विनीत खण्ड,
गोमतीनगर, लखनऊ-10

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुचीपूड़ी-भागवत मेला

● मीनू ठाकुर

भारत वर्ष की पावन भूमि में कला के अनेकों रंग देखने को मिलते हैं। जिसमें मुख्यतः हैं शास्त्रीय नृत्य एवं शास्त्रीय संगीत।

भरतमुनि द्वारा रचित नाट्शास्त्र पर आधारित नृत्य को शास्त्रीय नृत्य कहा जाता है। शास्त्रीय नृत्य की उत्पति के संदर्भ में एक छोटी सी कहानी है कि देवलोक में भगवान इन्द्र ने ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि भगवन हमारे मनोरंजन का कुछ तो साधन होना चाहिए। ब्रह्मा जी ने इस बात पर काफी विचार करने के पश्चात अन्य वेदों की भाँति एक नए वेद नाट्यवेद की रचना की। इसके आधार पर ब्रह्मा जी ने सबसे पहले नृत्यनाटिका तैयार की जिसकी प्रस्तुति अप्सराओं ने स्वर्गलोक में की। ब्रह्मा जी अपनी इस रचना से बहुत प्रभावित हुए। उन्होनें इस शास्त्र को अपने शिष्य द्वारा पृथ्वीलोक में भेजा। भरतमुनि ने इस कार्य को आगे बढ़ाया और इस प्रकार शास्त्रीय नृत्य की उत्पत्ति हुई। हमारे देश में अनेक प्रकार के शास्त्रीय नृत्य हैं जैसे भरतनाट्यम, कथक, कुचीपूड़ी, मणीपुरी, कथकली, मोहिनीअट्टम, ओडिसी आदि, ये सभी नृत्य नाट्यशास्त्र पर आधारित हैं।

शास्त्रीय नृत्य मात्र हाथ पैर चलाना नही बल्कि एक साधना है। शास्त्रीय नृत्य केवल मनोरंजन के लिए नही किये जाते, उनमें अध्यात्म, शारीरिक एवं भक्ति का सम्मिश्रण होता है।

दक्षिण भारत की प्रमुख नृत्यशैली कुचीपूड़ी आन्ध्रप्रदेश का एक परंपरागत नृत्य है। पहले ये नृत्य केवल ब्राह्मण पुरुषों द्वारा किया जाता था। सामाजिक परिस्थितियों के कारण ब्राह्मण स्त्रियों का नृत्य करना वर्जित था। इसी कारण पुरुष ही स्त्रियों का वेश धारण कर नृत्य किया करते थे। यह नृत्य पहले भागवत मेला के नाम से जाना जाता था और इसे प्रस्तुत करने वाले ब्राह्मण भागवतुलु कहलाते थे।

उस समय न स्टेज होता था, न लाईट, न माईक, न माइक्रोफोन, लालटेन की रोशनी में रात भर बिना माइक के अपनी तेज आवाज में पूरी रात नृत्यनाटिका प्रस्तुत करते थे। मेकअप के लिए वे लोग प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल करते थे। उनकी अधिकतम प्रस्तुतियाँ रामायण, महाभारत, एवं भागवतम्

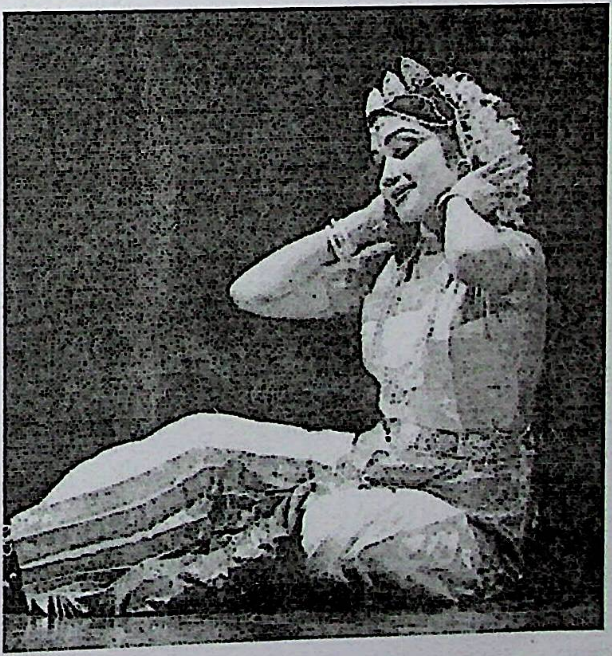

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर आधारित होती थीं।

पहले नृत्य को दो भागों में किया जाता था। नाट्यमेला तथा नटटूव मेला-जो नृत्य मंदिरों में किया जाता था वह नटटूव मेला कहा जाता था। जो कलाकार यह नृत्य प्रस्तुत किया करते थे उन्हें नटटूव मेला कलाकार के रूप में जाना जाता था जो बाद में देवदासी के नाम से मशहूर हुए। जो स्त्रियाँ मंदिरों में भगवान से विवाह कर अपनी पूरी जिंदगी उनके चरणों में अर्पित कर देती थीं उन्हें मंदिरों से बाहर जाना वर्जित था। मंदिरों में रहकर जावली और पदम के माध्यम से नृरय द्वारा भगवान के चरणों में अपनी अर्चना प्रस्तुत किया करती थी उन्हें बाद में देवदासी यानि देव की दासी अर्थात भगवान की भक्त और दासी के रूप में जाना जाता था। जो नृत्य मंदिरों से बाहर किये जाते थे, वे नाट्यमेला के नाम से जाने जाते थे। ये कलाकार अधिकतम नृत्यनाटिकाएँ प्रस्तुत किया करते थे। भगवान के अलावा राजा, महाराजाओं की प्रशंसा में भी ये नृत्य प्रस्तुत किया करते थे और राजा जिसका अच्छा ईनाम देकर उनको सम्मानित किया करते थे।

कुचीपूड़ी नृत्य का नाम कृष्णा नदी के समीप स्थित एक गाँव कुचेलापुरम के नाम पर पड़ा। इस संदर्भ में एक कथा है - कुचीपूड़ी भागवतुलु एक जगह से दूसरी जगह जाकर अपने नृत्यनाटक रात भर प्रस्तुत किया करते थे। एक बार भागवतमेला की प्रस्तुति गोलकुण्डा के नवाब अबुल हसन ने देखी। इन कलाकारों की मनमोहक प्रस्तुति से अत्यधिक प्रभावित होकर उन्होंने कृष्णानदी के किनारे का एक गाँव कुचेलापुरम उन्हें उपहार मे दे दिया और आदेश दिया कि आप इस गाँव में रहकर इस कला का आने वाली पीढ़ियों तक प्रचार करेंगे। कुचेलापुरम् जो धीरे -धीरे कुचीपूडी के नाम से मशहूर हो गया। बहुत से गुरूओं जैसे चिन्ता, वेदान्तम् वेम्पटी, पशुमर्ती, भगवतुला आदि ने अपने परिवार के साथ कुचीपूडी गाँव में रहकर इस नृत्य की साधना की, और आने वाली पीढ़ी को भी इसकी शिक्षा दी तथा, इस शैली को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया। गुरू लक्ष्मीनारायण शास्त्री ने पुरुषों द्वारा किये जाने वाले स्त्रीवेश की परंपरा को तोड़ते हुए ब्राह्मण स्त्रियों को नृत्य सिखाया और उन्हें नृत्य करने के लिए प्रोत्साहित किया तब से आज तक स्त्रियाँ बाखूबी यह नृत्य सीख रही हैं और उच्चकोटि की कलाकारा बन रही हैं। यह नृत्य एकल नृत्य, युगल नृत्य तथा समूह नृत्य के रूप में काफी प्रचलित है।

सिद्धेन्द्रयोगी कुचीपूड़ी नृत्य के आदि गुरू माने जाते हैं वे वेदों तथा शास्त्रों के बहुत बड़े विद्वान थे उनके द्वारा रचित नृत्यनाटिका 'भामाकलापम' जिसके माध्यम से उन्होंने जीवात्मा से परमात्मा का मिलन दर्शाया; आज भी कुचीपूड़ी नृत्य की एक महत्वपूर्ण एवं प्रख्यात प्रस्तुति मानी जाती है। इसके अलावा प्रहलाद नाटकम, गिरिजा कल्याणम, गोल्लाकलापम, रूकमणी कल्याणम आदि मुख्य नृत्य नाटिकाएँ हैं पूर्वारगम, पुष्पांजली, गणेशवंदना, जतिस्वरम, शब्दम, प्रवेश दरू, कीर्तनम, जावली/पदम एवं तरंगम आदि मुख्य प्रस्तुतियाँ हैं।

कुचीपूड़ी नृत्य में पदसंचालन एवं भाव भंगिमाओं का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। जो इस नृत्य को बाकी नृत्यों से अलग बनाता है। इसका साहित्य तेलुगू तथा संस्कृत में होता है। कर्नाटक संगीत, मृदंगम, वायलिन एवं वीणा जैसे वादन का प्रयोग किया जाता है। आज यह नृत्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी मशहूर हैं। दुनिया के कोने कोने से लोग इस कला को सीखने की अभिलाषा रखते हैं। ❑

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत का आध्यात्मिक रूप एवं भाव पक्ष

• स्मृति शुक्ला

भारत शुरू से ही एक धर्म प्रधान देश रहा है। इसी कारण यहाँ की समस्त कलाओं का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रायः सभी धर्मों का सम्बन्ध मनुष्य के मन से है। धर्म कोई वस्तु नहीं है यह तो एक अमूर्त धारणा है जो मन एवं आत्मा को उन्नत करती है। अध्यात्म भी आत्मिक उत्थान का शास्त्र है। धार्मिक आचरण से भी आत्मा उन्नति करती है अतः धर्म एवं आध्यात्म परस्पर अन्तः सम्बन्धित है।

अध्यात्म एक भौतिकेत्तर अनुभूति है। अध्यात्मिक अनुभूति उसी व्यक्ति को होती है जो तिक स्तर से ऊंचा उठ जाता है। विलियम जेम्स ने अध्यात्मक की परिभाषा में धर्म की अपेक्षा नैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया है। इनके अनुसार अध्यात्मवाद उसे कहते हैं जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है और जिससे प्रचुर आशा मिलती हैं। संक्षिप्त रुप से हिन्दी शब्द सागर में अध यात्म के निम्न अर्थ हैं-

अध्यात्म :- आत्मा का परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान या विवेचन। आत्मा या परमात्मा विषयक।

जहाँ साधारण मानव भौतिक मूल्यों स्थूल उपकरणों के द्वारा शारीरिक सुख समृद्धि प्राप्त करता है वहीं दार्शनिक व चिन्तक, ऋषि-मुनि व कलाकार आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा सूक्ष्म उपकरणों से परमानन्द का अनुभव करते हैं। भारतीय दर्शन में ललित कलाओं के माध्यम से अलौकिक आनन्द का अनुभव किया जा सकता है और यही कला का अध्यात्म है। समष्टिगत आनन्द में विलीन होना ही अध्यात्मिक आनन्द है। आध्यात्मिक आनन्द के तथ्यों की खोज ही सौन्दर्य साधकों तथा रस साधकों का मूल लक्ष्य है अर्थात संगीत का कलाकार जब भी स्वर साधना द्वारा स्वरों में विलीन होने की अवस्था को प्राप्त होता है तो उस आनन्द को आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति कहा जाता है। संक्षिप्त में अध्यात्म एवं भौतिकता से परे की अद्भुत अनुभूति है जो चिरस्थायी है। अध्यात्मवाद में आस्था तथा श्रद्धा रखने के अनेक माध्यम हैं जो भिन्न धर्मों दर्शनों या कलाओं द्वारा व्यक्त किए गए हैं जिनका मूल तत्व आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत तथा प्रकृति है।

भारतीय समाज में आध्यात्मिक महत्ता निहित है इसी कारण यहाँ की कलाएं प्रारम्भ से ही धर्म के साथ जुड़ी हुई हैं तथा संगीत भी आध्यात्मिकता से सराबोर रहा। संगीत सर्वाधिक आनन्द प्राप्त करने का साधन है। संगीत मोक्ष प्राप्ति का एक सशक्त साधन माना जाता है। संगीत साधना के अन्तर्गत व्यक्ति अपने आत्म की पहचान लेता है। My music my life में पं. रविशंकर लिखते है-"Througha music one can reach god" संगीत व्यक्ति को एकाग्रता प्रदान कर उसके मन का तन्मय कर देता है जिससे उसे आध्यात्मिक आनन्द एवं आत्मिक सुख का अनुभव होता है। इस संसार रूपी प्रयोगशाला में संगीत ही एकमात्र अश है जो हमारी आत्मा का उपचार करता है। पं. रविन्द्रनाथ ठाकुर जी ने कहा है-"प्राण और मन देकर भी जिसके समीप मैं नहीं जा सकता; गान के माध्यम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से मैं उसी के चरण छू लेता हूँ।"

संगीत के आध्यात्मिक रूप में प्रयोग होने के अनेक प्रमाण वेदकाल में भी प्राप्त होते हैं। के0 वासुदेव शास्त्री के अनुसार 'वैदिक काल में संगीत कला मोक्ष प्राप्ति के ध्येय अपनाकर साधना करने से था। से साधक को इहलोक-परलोक की प्राप्ति की इच्छा की पूर्ति हो जाती थी, संगीत साधना शांतिमय वातावरण में जीवन व्यतीत करने का सबसे सरल उपाय माना जाता था।' ऋग्वेद के श्लोक में वर्णन है

'तमु ष्टवाम य इमा जजान'

(ऋग्वेद, 8/85/6)

अर्थात् हम उस ईश्वर की स्तुति गुणगान करें जिसने यह सारी सृष्टि उत्पन्न की है।

अमलदास शर्मा भक्ति संगीत नामक पुस्तक में संगीत के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-

'जपकोटिगुनं, ध्यानं ध्यानकोटिगुणं लयः।
लय कोटिगुनं गानं गानात् परतरं नहि।।'

(भक्ति संगीत, पृ. 17)

ऐसी उच्चतम प्रशंसा और किसी विषय की नहीं की गयी है, संगीत विद्या सर्वकालीन और सर्वदेश की प्रेम-भक्ति तथा सम्मान की विद्या में यह बात सर्वदेश के मनीषीगण मुक्त कष्ठ से स्वीकारते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग प्रत्येक युग में किया गया। वेदकाल से ही संगीत के आध्यात्मिक प्रयोग के प्रमाण उपलब्ध होने लगते है। हमारे संतजनों में संगीत की शक्ति की पहचान थी। वे जानते थे कि संगीत में ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मानव के मन में सद्भावना का संचार करके आध्यात्म की ओर मानव मन को मोड़ा जा सकता है। भक्ति मार्ग अपनाकर भगवद् भजन करने से साधक का मन शीघ्र ही साधना में लीन होने लगता है। भक्ति के नौ प्रकार बताए गए है जिसे नवधा भक्ति कहते हैं। अमल दास शर्मा के अनुसार 'वस्तुतः संगीत एक आध्यात्मिक भाषा है जिसके माध्यम से मानव हृदय की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ प्रदर्शित होती हैं संगीत में हमें हृदयानुभूतियों की अभिव्यक्ति कर सम्यक तोष मिलता है।" संगीत का प्रयोग लोकरंजन तथा ईश्वर भक्ति दोनों के लिए उपयुक्त है। संगीत को नादब्रह्म की उपासना मान मोक्ष प्राप्ति की विधायिका कहा गया है। संगीत की शक्ति अपार है। संगीत द्वारा मनुष्य को असीम शान्ति प्राप्त होती है, संगीत साधना की प्रशंसा में याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं-

'वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुतिजातिवशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्ग स गच्छति।

(याज्ञवल्क्य स्मृति-3,115)

अर्थात-जो वीणा-वादन की कला का तत्वज्ञ है श्रुतियों और जातियों के ज्ञान में विशारद हैं जिसे ताल लय एवं गतियों का ज्ञान है, वह अनायास ही मोक्ष प्राप्त करता है।

संगीत में चंचल वृत्तियों को केन्द्रीभूत करने, साध्य के साथ एकीकरण तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन कराने, भक्ति में तन्मयता लाने और परम शान्ति प्रदान करने की असीमित शक्ति है। अररतू के अनुसार-संगीत की मधुर ध्वनियों के आरोह-अवरोह किसी प्रकार की प्रतिमाएं मस्तिष्क में नहीं खींचते, बल्कि विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति कराते है।" कला की अनुभूति की विशिष्टतां ही आत्म-विस्मृति उत्पन्न आत्म प्रत्यक्ष है। आत्म निमग्न होना डूब जाना, विह्वल और विभोर हो उठना ही कलात्मक अनुभव का सार है जो संगीत में सर्वाधिक होता है। संगीत को कल्पवृक्ष से भी बढ़कर महावृक्ष माना गया है क्योंकि कल्पवृक्ष तो मात्र कामनाओं की पूर्ति करता है परन्तु संगीत रूपी महावृक्ष तो संगीत में डूबे हुए सामाजिक व्यक्ति को कामना रहित ही बना देता है, उसे बिन मांगे ही सब कुछ मिल जाता है। स्वर ब्रह्म की उपासना से आत्म-बल एवं शान्ति मिलती है तथा मनुष्य भय से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त होकर ऐहिक तथा पारलौकिक सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक काल में संगीत का आध्यात्मिक रूप देखने को मिलता था। रामायण तथा महाभारत काल में भी संगीत धर्म प्रधान रहा। मूल रूप से वैदिक काल में संगीत का आध्यात्मिक रूप ही प्रखर था। मध्यकाल में मुसलमानों का उत्तर भारत में आगमन हुआ। जिससे हमारी संस्कृति प्रभावित हुई। इस काल के भक्ति कवियों में सूर, कबीर, तुलसी, मीरा आदि के भक्ति पूर्ण काव्य के प्रचार से संगीत कला भगवत प्राप्ति का साधन बन कर उच्चतम शिखर पर पहुँची। मन्दिर, देवालय आदि स्थानों में कीर्तन, पूजा-पाठ आदि धार्मिक आध्यात्मिकता की सूचक थी। श्रीमद्भगवद्गीता में संगीत कीर्तन के रूप में प्रयोग किये जाने के कई दृष्टांत प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के विभिन्न स्थलों पर कीर्तन महत्ता का वर्णन प्राप्त होता है-

"यज्ञेः संगीर्तनशयैर्यजन्ति हि सुमेधसः।"

बुद्धिमान मनुष्य कीर्तन प्रधान यज्ञों के द्वारा ही ईश्वर का भजन करते हैं।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्!
अर्चनं वन्दनं दास्यं व्यामात्यनिवेदनम्।।"

इस श्लोक में श्रवण के पश्चात कीर्तन को रखा गया है अतः शास्त्र श्रवण का फल कीर्तन है। कीर्तन के दृढ़ीभूत होने पर विष्णु भगवान का स्मरण तथा भक्ति के अन्य अंगों का सम्पादन हो सकता है।

इस प्रकार कीर्तन का प्रयोग ईश्वर आराधना और अध्यात्म के लिए किया गया। संगीत एक योगिक विद्या है जिसकी तीव्र तथा तीव्रतर ध्वनियाँ मनुष्य में स्नायुओं को झंकृत कर सुषुप्त कुंडलिनी को जागृत कर देती है तथा मानव को आत्मानुभूति की चरम सीमा-मोक्ष के द्वार तक पहुंचा देती है जो भारतीय जीवन दर्शन का अंतिम लक्ष्य है।

हमारे शास्त्रीय संगीत की विशेषता रागदारी है। हमारे यहाँ राग-रागिनियों का संबंध देवी-देवताओं से संवद्ध किया गया और प्रत्येक का काव्यमय भाषा में ध्यान और भावात्मक चित्र चित्रित किया गया है। प्रत्येक राग के पृथक-पृथक देवी तथा देवता हैं, उदाहरण के लिए-

भैरव-भैरोशिव छवि शिर जटा श्वेत वसत शयनैन
मुंडन को मारागरे, सिद्ध रूप सुख देन।।

संगीत के संबंध में प्राचीन दार्शनिकों का दृष्टिकोण अध्यात्म से ही सम्वन्धित रहा है। प्रत्येक काल में संगीत का प्रयोग धर्म एवं अध्यात्म के साथ ईश्वर आराधना के लिए किया गया। प्रस्तुत विवरण के आधार पर संगीत का अध्यात्मिक प्रयोग मानव द्वारा किया जाना प्रमाणित होता है।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि प्राचीन युग में किसी भी देश का संगीत चाहे वह लौकिक हो या आध्यात्मिक, लेकिन वह भक्ति भावना से ओतप्रोत था। भारतीय संगीत एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जहाँ सृष्टि ने न केवल भौतिक बल्कि आत्म साक्षात्कारी सुखों की भी अनुभूति की है। □

शोध छात्रा (यू.जी.सी./नेट), गायन विभाग
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो. 9415182326, 9936123678

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अग्रवाल डा. वन्दना, भारतीय संगीत, शलभ पब्लिकेशन हाउस, मेरठ,
2. सचदेव डा. रेनू, धार्मिक परम्पराएँ एवं हिन्दुस्तानी संगीत, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली
3. शर्मा डा. सुनीता, भारतीय संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन 1996
4. शर्मा डा. उमा शंकर, संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
5. शर्मा डा. स्वतंत्र बाला, सौन्दर्य रस एवं संगीत, प्रतिभा प्रकाशन, 2005
6. www.unn-hp.org

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथक नृत्य का साहित्य

● बीना सिंह

कथक नृत्य उत्तर भारत की प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य शैली है। इस नृत्य का सम्बन्ध भारत की अन्य शास्त्रीय शैली की भाँति ही मन्दिर से जुड़ा रहा है। कथक नृत्य की व्याख्या अलग-अलग विद्वानों द्वारा अलग-अलग ढंग से की गई है तथा सार रूप में एक ही है जिसे हम इस प्रकार समझ सकते है "कथन करे सो कथक कहावे।" अर्थात कथा वाचन करने वाले को कथक कहते हैं। यह कथायें धार्मिक घटनाओं पर आधारित होगी, राम हों या कृष्ण, विष्णु हों या शिव सभी कथक की कथानक हो सकते हैं। वर्तमान में किसी भी जन सामान्य के जीवन पर आधारित कथायें भी इस नृत्य में स्थान बना रही हैं। कला अपने देश काल और परिस्थितियों को प्रतिबिम्बित करती है। कथक नृत्य का विकास जिस प्रकार हुआ उस पर अपने देश काल का प्रभाव देखने को मिलता है। भारत वर्ष में दक्षिण भाग की अपेक्षा उत्तर भारत में विदेशियों का प्रभुत्व एवं राजनीतिक उथल-पुथल का प्रभाव अधिक रहा, इस कारण उत्तर भारत के सामान्य जीवन रहन-सहन, खान-पान साहित्य, कला एवं संगीत में दक्षिण की अपेक्षा अधिक परिवर्तन हुये। कथक नृत्य इसका उत्तम उदाहरण है।

कथक नृत्य मन्दिरों में रहने वाले कथा वाचकों द्वारा ईश्वर के यशगान एवं जन सामान्य के लिये भक्तिपूर्ण कथा वाचन एवं नर्तन था जो मन्दिरों से निकल कर दरबारों की शोभा बना। ब्रिटिश शासन काल में यह नृत्य एवं नर्तक समाज के द्वारा बहिष्कृत होने की अवस्था में किसी तरह अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास कर रहे थे। पुर्नजागरण काल में भारत को पुनः अपने खोये अस्तित्व एवं स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करना पड़ा तभी पुनः भारत की सभ्यता एवं संस्कृति का पुर्नोरुद्धार हुआ और भारत की शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ स्थापित हुई। कथक नृत्य आज उत्तर भारत की शास्त्रीय शैली के रूप में जाना जाता है। इस नृत्य का जिस प्रकार विकास हुआ उसकी सबसे आश्चर्यजनक और सुन्दर बात यह है कि शास्त्र की सीमा में रहते हुये भी नृत्य में अद्भुत लचीलापन है जो देश काल परिस्थितियों के बन्धन को नहीं मानता। भरत नाट्य शास्त्र में वर्णित नृत्य की तकनीकि का पालन करते हुए भी किसी कठोर बन्धन को यह नृत्य लचीला बना लेता है। इसका कारण यह है कि इस नृत्य में लोकधर्मी तत्व अधिक सशक्त हैं। इस नृत्य में नृत्य (नृतांग) तथा भाव प्रदर्शन दोनों में युग के अनुकूल अपने में परिवर्तन करते हुये भी शास्त्रीयता की मर्यादा एवं शुभ सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। कथक नृत्य के नृत्याचार्यों ने सदैव अपनी मौलिक परिकल्पना से इसको समृद्ध और समसामयिक बनाये रखा है जो इस नृत्य के स्वरूप में अपरिमित संभावनाओं के कारण ही हो पाया है।

कथक नृत्य का कलेवर नृत पक्ष "नृतांग" एवं "अभिनय पक्ष" भाव प्रदर्शन से मिलकर बना है। नृतांग मुख्य रूप से आंगिक अभिनय प्रधान होता है। अभिनय पक्ष में मुख्य रूप से भाव प्रदर्शन किया जाता है चाहे वह किसी पौराणिक कथा को लेकर किया जाये अथवा गीत, ठुमरी, भजन आदि पर।

कथक नृत्य के साहित्य की चर्चा करते समय मुख्य रूप से भाव प्रदर्शन के लिये प्रयोग होने वाले साहित्य की ही चर्चा होती है परन्तु कथक नृत्य का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य नृत्यांग के लिए नृत्य के विशेष बोलों पर आधारित है तथा भाव प्रदर्शन के लिये काव्य साहित्य पर आधारित है। सर्वप्रथम हम कथक नृत्य के नृत्यांग साहित्य की चर्चा करेंगे।

कथक नृत्य के नृत्यांग में प्रयोग हाने वाले बोल मन्त्र स्वरूप हैं। सार्थक अथवा निरर्थक दोनों ही बोलों का प्रभाव रस उत्पन्न करने के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि काव्य गीत प्रकार। अतः यह नृतांग बोल भी कथक नृत्य का महत्वपूर्ण साहित्य है। नृत्यांग के बोलों की उत्पत्ति महेश्वर सूत्र के ग्यारहवें सूत्र "त" "थै" "त्" वर्णो से हुई।[1] इसके साथ-साथ विभिन्न वाद्य यन्त्रों की ध्वनि प्रकृति के पशु, पक्षी, मनुष्य की वाणी से बोलों को चुनकर नृत्य के लिये उपयुक्त बोलों से विभिन्न प्रकार की ताल संरचनायें की गई हैं। इनका संग्रह नृत्य के नृत्यांग साहित्य का निर्माण करता है। कथक के नृतांग साहित्य के मुख्य चार आधार है-1. ततकार, 2. हस्तकर, 3. भ्रमरी, 4. ताल प्रबन्ध या ताल संरचना।

ततकार - इसे कथक नृत्य के नृतांग का आधार कह सकते हैं। कथक नृत्य एक मात्र ऐसी नृत्य शैली है जिसमें पद संचालन मात्र ताल और लय को दर्शाने के लिये नहीं होता बल्कि पैर से नृत्त के बोलों का वाद्य संगत के साथ निकास आवश्यक होता है। अंग संचालन के साथ पदाघात करते हुये नूपुर की ध्वनि से बोलों का निकास कथक नृत्य के नृत्त को भी सरस एवं आकर्षक बना देता है। नूपुर के माध्यम से नृत्त के बोलों को पैरों द्वारा आघात करके निकालना ततकार के अभ्यास द्वारा ही संभव है। कथक नृत्य की शिक्षा का पहला चरण ततकार ही हैं। ततकार को कथक नृत्य की वर्णमाला कह सकते है। इस ततकार के माध्यम से पैरों द्वारा बोल के निकास के साथ-साथ लय का भी अभ्यास किया जाता है। ता थेई तत् आ इन बोलों के अभ्यास से पैरों तथा लय साधते हैं इस मंत्र पर-अधिकार प्राप्त करके तिग्धा तिरकिट दिगदिग थर्री धिलांग आदि बोलों का अभ्यास इसी ततकार के माध्यम से किया जाता है। कथक के नृतांग साहित्य की यही वर्णमाला तथा उसके अलंकार कहे जा सकते हैं।

हस्तक- कथक नृत्य का नृत्त आंगिक अभिनय प्रधान है, तथा इसमें हस्त संचालन की विभिन्न मुद्रायें कथक नृत्य के आंगिक अभिनय की सांकेतिक भाषा है। इसमें प्रयोग होने वाले हस्त एवं हस्तक नाट्य शास्त्र की हस्त मुद्राओं तथा करणों का ही रूप हैं। हस्तक शब्द कथक नृत्य में हस्त मुद्रा तथा विभिन्न लय बद्ध अंग संचालन दोनों के लिये प्रयोग में आता है। शब्दों के प्रयोग के स्थान पर हस्त मुद्रायें तथा लय ताल एवं पद संचालन सहित हस्तकों का प्रयोग नृत्य की मौलिक भाषा के रूप में अपना स्थान रखती है। विभिन्न हस्त मुद्राओं से नर्तक भिन्न-भिन्न भावों, विचारों आदि से दर्शक को अवगत करवाता है। कथक नृत्य में नाट्य शास्त्र तथा अभिनय दर्पण में वर्णित हस्त मुद्राओं का प्रयोग होता है। यह हस्त मुद्रायें तीन प्रकार की हैं। (1) असंयुक्त (2) संयुक्त तथा (3) नृत्त हस्त। इनके साथ पद संचालन के संयोग से कथक नृत्य प्रस्तुत होता है। इन हस्त मुद्राओं का अध्ययन कथक के नृतांग साहित्य का महत्वपूर्ण चरण है।

भ्रमरी- भ्रमरी कथक नृत्य की मौलिक विशेषता है। कथक नृत्य में विशेष रूप से ऐसे टुकड़े या ताल संरचनायें प्रस्तुत की जाती हैं, जो भ्रमरी या चक्कर की तैयारी का प्रदर्शन करें। लय ताल में कभी एक पैर से घूमना कभी तत् थेई दोनों पैर से चक्कर लेना कभी "तऽत थेई" के बोल द्रुत गति घूमना आदि नृत्य में चमत्कार द्वारा अद्भुत रस की सृष्टि करता है साथ ही विभिन्न प्रकार की भ्रमरी का प्रयोग कथक नृत्य शैली की निजी विशेषता है। देशी भ्रमरी का उल्लेख अभिनय दर्पण, नृत्त रत्नावली, नृत्य रत्नकोश आदि मध्यकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है कथक नृत्य में इनका प्रयोग चमत्कारिक रूप से होता ही है शास्त्र के अनुसार भी इनका अभ्यास ततकार एवं हस्तक की भाँति करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। चार पदाघातों वाले चक्कर "तिग धा दिग दिग," तीन पैर के चक्कर "तत् तत् थेई" दो पैर से "तत् थेई" तथा एक पैर के चक्कर "धान" तान की विविधता कथक नृत्य के चक्कर में दिखती है। पदाघातों के आधार पर एक पाद चक्री, द्विपाद चक्री नाम इन्हे दिये गये हैं। कथक नृत्य में पूरा चक्कर तथा दाई ओर बायी ओर से आधा-आधा घूम कर विपरीत चक्र। "इसी प्रकार कथकों की परम्परा में कमल चक्र, मदन चक्र, अर्धचन्द्र चक्र आदि नाम भी मिलते हैं।" इन चक्करों को लेने में हस्तकें की विविधता भी देखने को मिलती है। दोनों हाथों को सीधा खोलकर कभी एक हाथ सीधा खोल कर दूसरा ऊपर उठाकर कभी दोनों हाथ वक्षस्थल के सामने रखकर घूमना आदि। इस चक्कर या भ्रमरी का प्रयोग कथक नृत्य की मौलिक विशेषता के रूप में स्थान रखती है। भ्रमरी का ऐसा प्रयोग अन्य किसी भी शास्त्रीय नृत्य शैली में नहीं मिलता।

ताल प्रबन्ध - कथक नृत्य के नृतांग साहित्य का विस्तृत स्वरूप ताल प्रबन्ध के अन्तर्गत आता है। इसमें कथक के नृत्त के स्वरूप को आंगिग अभिनय द्वारा ताल एवं लय के साथ प्रस्तुत करते हैं तथा कुछ संरचनाओं को भाव के साथ भी ताल लय में प्रस्तुत करते हैं। दश रूपक में धनंजय के अनुसार "नृत ताल लया श्रयम्" तथा "अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं" अर्थात जब ताल संरचनाओं को ताल और लय के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं तो वह नृत्त है तथा जिन ताल संरचनाओं को भाव पूर्ण ढंग से लय ताल में प्रस्तुत करते हैं वह नृत्य है। आचार्य नन्दिकेश्वर के अनुसार भी-"नृत्यं गीताभिनयनं भावतालयुत भवेत्" अर्थात गीत का अभिनय ताल एवं लय में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार कथक का नृतांग साहित्य ताल संरचनाओं की विविधता से सुसज्जित है। इन ताल संरचनाओं को कथक में बोल कहते हैं तथा मुख्य रूप से दो श्रेणी रख सकते हैं। (1) विशुद्ध नृत्त के बोल एवं (2) कवित्त तथा कवितांगी बोल। विशुद्ध नृत्त के बोलों में पुनः तीन प्रकार की श्रेणियां है। (1) नृत्त के बोल, (2) तबले-पखावज के बोल (3) परमेलू "डॉ. पुरू दाधीच के अनुसार समस्त बोलों को मोटे तौर पर चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- (1) विशुद्ध नृत्त के बोल, (2) तबला पखावज के बोल (3) परमेलू (4) कवित्त।

नृत्त के बोल- इसके अन्तर्गत ततकार के बोलों पर आधारित संरचनायें, नटवरी नृत्य के बोलों पर आधारित बोल, लयकारी के आधार पर बनी नृत्य संरचनायें जैसे दुपल्ली, चौपल्ली, तिपल्ली आदि लोम-विलोम संरचना आती है। जैसा कि पूर्व में मैनें बताया कि उत्तर भारत में बाहरी शासकों का अधिक समय तक प्रभाव होने के कारण उसका प्रभाव इस नृत्य शैली के साहित्य, स्वरूप, वेशभूषा पर बहुत पड़ा। इसके नृतांग साहित्य में अनकों संरचनाओं के नाम में फारसी तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है। आमद, सलामी, कमाली, फरमाइशी, दर्जेदार बोल, ज़रब शब्दावली ताल संरचनाओं के नाम हैं।

तबला-पखावज के बोल- तबला तथा पखावज कथक नृत्य के मुख्य घन संगत वाद्य हैं। नृत्त में प्रस्तुत किये जाने वाले बोल इन वाद्य यन्त्रों पर बजाये जाते हैं, जिन पर नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। इन वाद्यों के बोल नृत्त के बोलों के साथ मिलते जुलते रहते हैं, अतः धीरे-धीरे इनके बोलों को भी नृत्य में स्थान मिलने लगा। पखावज पर बजने वाले जोरदार बोल "परन" आज कथक नृत्यांग का अभिन्न अंग है। परन के प्रकारों में गणेश परन, दुर्गा परन आदि कवितांगी बोल हैं। इनको अभिनय के साथ नृत्य में प्रस्तुत किया जाता है। इन्हीं बोलों से प्रभावित होकर पक्षी परन, बादल-बिजली परन आदि की रचना भी कथक नृत्य में की गई है।

कवित्त तथा कवितांगी बोल- कथक नृत्य के नृत्तांग साहित्य में कवित्त तथा कवितांगी बोलों में काव्य का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य के बोलों के साथ समन्वय प्रस्तुत किया जाता है। कवित्त का हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्य में प्रचलन हुआ। नृत्य म भाव को प्रस्तुत करने के लिए कवित्त प्रयोग में लाया जाता है। यह कवित्त तालबद्ध रचना होती है। नृत्य में प्रयोग होने वाले कवित्त में नृत्य के बोलों का समावेश भी होता है। भावाभिव्यक्ति के सौन्दर्य के साथ ताल के अनुरूप सम पर आना इन कवित्त की अनिवार्यता है। अतः काव्य छन्दों में नृत्य के बोलों के समान संरचनात्मक दृष्टि से बोलों का संयोजन किया जाता है। यह कवित्त एवं विभिन्न कवित्तांगी परने कथक नृत्य के साहित्य में नृत्य एवं साहित्य के बोलों के समन्वय का अद्‌भुत उदाहरण हैं।

परमेलू- कथक नृत्य के बोलों में निरर्थक एवं सार्थक शब्दों के मिश्रण से नृत्य प्रस्तुत करने का प्रथम चरण है। पर मेले या प्रिमलू शब्द का अर्थ है दूसरों के मेल से बना हुआ "प्रर+मेल"। इस प्रकार कथक नृत्य में प्रथम बार विभिन्न वाद्य यन्त्रों, झींगुर आदि कीट पक्षियों की ध्वनि या कभी-कभी काव्य शब्दों का ध्वन्यात्मक प्रयोग जिन बोलों में मिलता है उन्हें परमेलू या प्रिमलू कहते हैं। इस नृत्य में शब्दों को इस प्रकार सार्थक अर्थ मिला है इसका सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित परमेलू में देखिये-

तत तत ता दृग दन झिझि कत थो थुऽग तक थुन तक तिग्धा दिगदिग थेई

तत् तत् बोल तक तक (देखना) का अपभ्रंश है। इस परमेलू की व्याख्या इस प्रकार है कि अज्ञात यौवना नायिका (जिसकी आयु 13 वर्ष से आरम्भ होती है।) नायक को देखती है और उसकी आंखों के भाव देखकर घबरा कर झिझकती है (दन दन झिझिकत) (थो थुड़ग तक थुंन तक तिग्घा दि दिग दिग दिग थेई) फिर मन ही मन प्रसन्न हो उछलती कूदती भाग जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कथक नृत्य के (निरर्थक) बोलों की ध्वनि, भावों को संम्प्रेषित कर सके इस प्रकार के बोलों का चयन ताल संरचनाओं में किया जाता है और इस प्रकार यह भी सिद्ध होता है कि ये नृत्त के बोल अर्थहीन नहीं होते हैं।

कथक नृत्य के नृतांग साहित्य की चर्चा के बाद अब हम इसके भाव प्रदर्शन के साहित्य की चर्चा करेंगे। नृत्य में काव्य एवं गीत का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जिस प्रकार नाट्य में संवाद के लिये, अभिनय के लिये, गद्य में भाषा का प्रयोग होता है, नृत्य में उसी प्रकार भाव प्रदर्शन के लिये काव्य साहित्य एवं गीत का प्रयोग किया जाता है। आचार्य नन्दिकेश्वर के अनुसार-

नृत्यं गीताभिनयनं भावतालयतं भवेत्।।
आस्येनालम्बयेदगीतं हस्तेनार्थ प्रदर्शयेत्।
चक्षुर्भ्यो दर्शयेद् भावं पादाभ्यां तालागाचरेत्।।

अर्थात गीत का अभिनय ही नृत्य है जो भाव और ताल से युक्त है। इसमें मुख से गीत गाना चाहिये तथा हाथों से गीत के शब्दों का प्रदर्शन करना चाहिये, आंखों से शब्दों के भाव प्रगट करना चाहिये तथा पद संचालन द्वारा ताल का निर्वाह करना चाहिये। कथक नृत्य में भाव प्रदर्शन की विधि आचार्य नन्दिकेश्वर के दिशा निर्देश का पालन करती है। कलाकार पहले मुख से गाकर गीत प्रस्तुत करता है फिर उस पर भाव प्रदर्शन करता है। कथक नृत्य में लोकधर्मी तत्व अधिक निखर कर सामने आया है। इसके भाव प्रदर्शन के साहित्य में शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय शैली के गीतों का समान रूप से प्रयोग किया जाता है।

कथक नृत्य का भाव प्रदर्शन साहित्य समय की प्रचलित गायन शैली पर आधारिंत रहा है। पूर्व में श्लोक, स्रोत, अष्टपदी प्रबन्ध आदि गान परम्पराओं का प्रयोग कथक नर्तन में होता था। इसके बाद ध्रुवपद गान परम्परा पर नृत्य किया जाने लगा। समय के साथ चाचँर, धमार, चैती, कजरी, होरी आदि का भी प्रयोग कथक में होने लगा। वर्तमान समय में कथक में मुख्य निम्नलिखित गीत का प्रकार प्रयोग में है-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) ध्रुपद (2) भजन (3) चतुरंग (4) तिरवट (5) तराना (6) ठुमरी (7) दादरा (8) चैती (9) अष्टपदी (10) गजल।

(1) ध्रुपद- भारतीय शास्त्रीय गायन की यह शैली कथक नृत्य में ध्रुपद नाम से प्रस्तुत की जाती है। मुख्य रूप से वीर रस तथा शांत रस प्रधान रचनाओं के अतिरिक्त श्रृंगार रस की रचनायें भी ध्रुपद में प्राप्त होती हैं। नृत्य के लिये उपयुक्त रचनायें हिन्दी, उर्दू तथा ब्रजभाषा में विलम्बित, मध्य तथा द्रुत-लय में गायक प्रस्तुत करते हैं तथा नर्तक नृत्य प्रस्तुत करते हैं।

(2) भजन- मन्दिरों के आश्रय में पला बढ़ा कथक नृत्य ईश्वर आराधना का माध्यम था। इस नृत्य का भक्ति नर्तन पक्ष अत्यन्त प्रबल एवं महत्वपूर्ण है। वैष्णव सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों के पद सूर, कबीर, मीरा, तुलसी सभी का काव्य साहित्य कथक नर्तकों का सदैव से प्रिय रहा है। आज भी कथक नर्तक इन रचनाओं को अपना ही मानते हैं। इन कवियों की रचनायें भी कथक नृत्य के बोलों से अलंकृत है।

(3) चतुरंग - जैसे कि इसके नाम से स्पष्ट है चार अंग जिस गीत में उपस्थित हों वह चतुरंग है। इस गीत रचना में ख्याल, तराना, सरगम तथा त्रिवट का समावेश होता है। यह कथक नृत्य में काव्य साहित्य का अद्भुत रूप है जिसमें शब्द, तराने के बोल, किसी रागों की सरगम तथा नृत्य के मुख्यतः जोरदार बोल या परन का समन्वय होता है।

(4) तिरवट- तराने की भाँति ही गायी जाने वाली यह शैली वर्तमान में कथक में कम प्रस्तुत की जाती है। इसे तराने की भाँति विभिन्न रागों में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु तराने की अपेक्षा इसमें बोल कठिन होते हैं तथा मृदंग के बोल का अधिक प्रयोग होता है।

(5) तराना - यह ख्याल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें प्रयोग होने वाले गीत के बोल ता, ना, दा, रे तदारे ओदानी ऐसे निरर्थक बोल होते हैं। परन्तु कुछ लोग इन्हें अमीर-खुसरो द्वारा रचित, अरबी भाषा के शब्द भी कहते हैं। कुछ भी हो तराना में राग, लय और ताल का आनन्द है अर्थात स्वर की सत्ता शब्द पर भारी है अतः आनन्द आता है। लय एवं ताल का सौन्दर्य होने के कारण कथक नृत्य में इसका प्रयोग पूर्णतः सार्थक है।

(6) ठुमरी - ठुमरी श्रृंगार रस प्रधान उपशास्त्रीय गायन शैली है। इसकी प्रकृति चंचल, सरस तथा भावाभिनय प्रस्तुत करने में सर्वथा उपयुक्त है। कथक नृत्य के भाव प्रदर्शन का सौन्दर्य एवं साहित्य ठुमरी के माध्यम से पूर्णता में प्रस्तुत होता है। ठुमरी का समावेश कथक में मुख्य रूप से मुगलकाल की देन है अवध के अंतिम नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में कथक नृत्य के वर्तमान स्वरूप की रूप रेखा बन रही थी तभी ठुमरी भी कथक नृत्य के अभिनय के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित हो रही थी। नवाब साहब ने स्वयं भी अख्तर उपनाम से अनेकों ठुमरी की रचना की तथा उनके दरबार में कथक के आचार्य एवं दरबारी नर्तक बिन्दादीन जी ने भी कथक में लगभग 1500 ठुमरियों की रचना की जिन पर आज भी कथक के सभी कलाकार अभिनय प्रस्तुत करते हैं। यह श्रृंगार रस प्रधान गीत प्रकार कथक नृत्य में अभिनय प्रदर्शन में अनिवार्यतः प्रमुख स्थान रखता है। ठुमरी दो प्रकार से प्रस्तुत की जाती है बोल-बाँट की ठुमरी तथा बोल-बनाव की ठुमरी। इन ठुमरी के अभिनय प्रदर्शन में अभिधा, व्यंजना और लक्षणा अर्थ के तीनों स्तरों का काव्य के सौन्दर्य के नृत्य के भाव सौन्दर्य के साथ मिलाकर कलाकार संगीत के सच्चिदानन्द स्वरूप का साक्षात् दर्शन करने में तथा दर्शकों को इसकी अनुभूति करवाने में सक्षम होता है। यद्यपि ठुमरी श्रृंगार प्रधान रचना है परन्तु इसके द्वारा प्रेम के शाश्वत स्वरूप की अनुभूति करवाना कलाकार की परिपक्वता को दर्शाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(7) दादरा- दादरा गायन की एक शैली है जो दादरा ताल के नाम पर आधारित है। अभिनय प्रस्तुत करने के लिए कथक नर्तक इन श्रृंगार प्रधान रचनाओं का प्रयोग करते हैं। मध्य तथा द्रुत लय में लग्गी-लड़ी का आनन्द नृत्य की गति के साथ आनन्द देता है।

(8) चैती- चैत मास में गाई जाने वाली उपशास्त्रीय गायकी को भी कथक नृत्य के लोकधर्मी स्वरूप में स्थान प्राप्त है। मुख्यतः भगवान श्री राम की लीलाओं पर आधारित रचना चैती में प्रस्तुत की जाती है जिसे कथक नर्तक बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

(9) अष्टपदी - प्रायः भक्तिभाव से पूरित यह रचना कथक नृत्य साहित्य में सम्मिलित है। बिन्दादीन जी ने भी अष्टपदी की रचना विशेष रूप से कथक नृत्य में प्रस्तुत करने के लिए किया। कथक नर्तक विभिन्न भक्त कवियों की अष्टपदी प्रस्तुत करते हैं।

(10) गजल - कथक नृत्य का लखनऊ घराना श्रृंगार रस से भरपूर रहा है। मुगलकाल में इसके नृत्य में दरबारी प्रभाव के कारण विलासिता से भरपूर साहित्य का समावेश हुआ। उसी युग में ग़ज़ल पर दरबार में कथक नृत्य के अन्दाज में प्रस्तुतिकरण का चलन आरम्भ हुआ। आज यह ग़ज़लें कथक के भावप्रदर्शन का अभिन्न अंग है।

कथक शास्त्रीय नृत्य शैली मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश में पुष्पित पल्लवित हुई अतः यहाँ की प्रचलित उपशास्त्रीय गायकी जैसे चैती, कजरी, होली आदि ने कथक नृत्य में सहज रूप से अपना स्थान बनाया है और कथक नृत्य के काव्य साहित्य को समृद्ध किया है। □

भातखण्डे संगीत संस्थान
सम विश्वविद्यालय, केसरबाग, लखनऊ-1

संदर्भ ग्रन्थ

(1) कथक नृत्य शिक्षा भाग-2, डॉ. पुरू दाधीच
(2) कथक नृत्तम् - डा. जय चन्द्र शर्मा
(3) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य-भाग एक, पृ. 45
(4) अभिनय दर्पण-आचार्य नन्दिकेश्वर

लेखकों से

1. छायानट में संगीत एवं अभिनय-कलाओं से सम्बन्धित लेख, नाट्यालेख एवं सांस्कृतिक परिदृश्य की व्याख्या ही प्रस्तुत की जाती है।
2. अपनी रचनायें रजिस्टर्ड डाक/कोरियर/ईमेल से कृपया सीधे अकादमी के पते पर ही भेजें। हमारा पता है : **सम्पादक, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, पोस्ट बॉक्स नं0 30, विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226001.**
upsna.chhayanat@gmail.com
3. रचना मौलिक तथा अप्रकाशित होनी चाहिए। अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति अवश्य भेजें।
4. लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर साफ-साफ लिखें अथवा टंकित करके भेजें। अस्पष्ट हस्तलेख से लिखित रचनाओं पर विचार नहीं किया जायेगा।
5. **छायानट में केवल पूर्णकालिक नाट्यालेख ही प्रकाशित होते हैं। कृपया अयाचित एकल, एकांकी अथवा लघु नाट्यालेख मत भेजें। नाट्यालेख भेजने के पूर्व सम्पादक से पत्र-व्यवहार अवश्य करें।**
6. शब्द-संख्या सामान्यतः 2500 से अधिक न हो।
7. प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के होते हैं। उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है। लेखों में दिये गये विवरण और तथ्यों की प्रामाणिकता के लिये हर प्रकार की जिम्मेदारी लेखक की होगी।
8. अस्वीकृत रचना प्राप्त करने के लिये टिकट लगा लिफ़ाफ़ा साथ भेजें।
9. पुस्तक-समीक्षा के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिये।
10. प्रकाशित रचनाओं पर बाध्यतारहित यथासम्भव मानदेय दिया जाता है।
11. अपने शहर की महत्वपूर्ण नाटकीय एवं संगीत-विषयक कार्यक्रमों की सचित्र रपट भेजें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगात्मा

● डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी

प्रथम दृश्य

(आधुनिक रंगमंच है। नीलाकाश, समुद्र एवं पृथ्वी को अलग-अलग रंगों में दर्शाता हुआ एक परदा पूरे रंगमंच पर लटक रहा है। उस परदे पर सफेद रंग शेड से निर्मित बहुवर्णी चार युगों के प्रतीक विद्युत आलोक लहरा रहे हैं। कृतयुग के लिए सुनहरा विद्युत आलोक, त्रेता के लिए हरितवर्ण, द्वापर के लिए रक्तवर्ण तथा कलियुग के लिए नीलवर्ण विद्युत आलोक को वृत्ताकाररूपेण परदे पर दर्शाया जा रहा है। ये विद्युतवर्ण कुछ इस तरह की तकनीक से लहराये जा रहे हैं कि क्रमशः कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के भास्वर होने का संभ्रम पैदा होता है।

प्रेक्षागृह में शनैः शनैः प्रकाश क्षीण होता चला जाता है। मंच पर प्रकाश बढ़ने लगता है। पार्श्व में संगीत की दूरागत सामध्वनि धीरे-धीरे उभरने लगती है। 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय' का स्वर उभरता है। धीरे-धीरे स्वर तेज होने लगता है। प्रेक्षागृह में बैठे प्रेक्षकों को यह भ्रम होने लगता है कि कोई है, जो परदे के पीछे से सस्वर करुणार्द्र भाव से कुछ पुकार रहा है–

इतने में मंच पर सूत्रधार आ जाता है।)

सूत्रधार : (प्रेक्षकों की ओर मुखातिब होते हुए) अरे! मेरे सामने तो स्त्री-पुरुषों का जमघट लगा हुआ है। सन्तति की परम्परा में ये सब जैविक सृष्टि की मैथुनी कृतियों के प्रमाण हैं।

(तेजी से बाएँ पार्श्व से एक सुन्दर नटी यह कहते हुए प्रवेश करती है।)

नटी : मैथुनी सृष्टि!–हाँ, हाँ, मैथुनी सृष्टि! –मैं इसे प्रमाणित कर दूँगी।

सूत्रधार : अरे सुन्दरी! .... तुम कैसे प्रमाणित करोगी? इसे तो युग-युगान्तरों से आज तक चतुर्युग भी प्रमाणित नहीं कर सके।

नटी : क्या कहते हो, आजीवक! हम यहाँ जाबाला-सत्यकाम को पेश करेंगे। वह मैथुनी सृष्टि का पुष्ट प्रमाण है।

सूत्रधार : जो नाट्य सोफोक्लीज, यूरीपाइडीज, एरिस्टाफेनीज़, शैली, भर्तृहरि, विशाख, चेखव, आदि प्रस्तुत नहीं कर सके। सात समुन्दर हार गये, पर प्यास बुझी न पानी से–प्रेम और वासना के मध्य दोलायमान स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों से व्युत्पन्न सन्तति की परम्परा में मानव की सनातनता के रहस्य को तुम कैसे सिद्ध करोगी?......

नटी : (बीच में ही सूत्रधार को रोकते हुए) मैं जाबाला को पेश करूँगी। जाबाला युग-सत्य है। सत्यकाम युग-बोध है। चारों युग इन दोनों के चहुँ ओर चक्कर काट रहे हैं। तुम देखते जाओ। जो चीज़ मंच पर बड़े-बड़े नाटककार पेश नहीं कर पाये, उसे हम पेश करने जा रहे हैं...हम पेश कर रहे हैं...प्रस्तुत कर रहे हैं...

(यह कहते-कहते नटी अपनी देह को नृत्य की दर्दनाक भाव-भंगिमा में घुमाव देते हुए मंच से हटती चली जाती है। नेत्रों में तथा हाव-भाव में जिज्ञासा लिए हुए सूत्रधार भी नटी के पीछे-पीछे चल देता है। प्रकाश एक बारगी ही तीव्र हो धीरे-धीरे मन्द होने लगता है। संगीत का स्वर तेज हो जाता है और परदा धीरे-धीरे उठने लगता है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(मंच के दोनों ओर दो ऊँची-ऊँची मीनारें खड़ी हैं। पीछे एक पर्वत-शृंखला का भाग है, जिसके आगे पर्वत का कुछ कटावदार भाग इस तरह निकला हुआ है, जैसे प्रकृति ने पर्वत को काटकर एक सुन्दर अनगढ़ पीठिका बना दी हो। पीठिका के दोनों ओर का पर्वतीय भाग मीनारों के पीछे जाकर उनसे लगते हुए समाप्त हो जाता है। पर्वत के पीछे से आकाश का कुछ भाग दिखाई देता है।

परदा खुलता है

(मंच पर सघन अन्धकार छाया हुआ है। संगीत की विचित्र-सी ध्वनियों के बीच मीनारों पर धीरे-धीरे प्रकाश पड़ता है, जहाँ दो पुरुष खड़े हुए हैं।)

पहला पुरुष : ईश्वर की सबसे सुन्दर रचना है—मानव। मानव को अन्य जीवों से श्रेष्ठतर बनाने के लिये प्रकृति के माध्यम से ईश्वर ने उसे दो अनोखी निधियाँ प्रदान की हैं। इनमें एक है बुद्धि-विवेक। मानव जाति का जो सर्वोत्तम विकास आज हमें दिखाई देता है, वह विभिन्न युगों में निरन्तर होने वाले क्रमिक बौद्धिक विकास का परिणाम है। अधुनातन ज्ञान-विज्ञान उसी निरन्तर विकसनशील बुद्धि का प्रतिफल है...

दूसरा पुरुष : तो क्या सत्य यही है?

पहला पुरुष : हाँ। मगर यह युग-सत्य नहीं है।

दूसरा पुरुष : क्यों?

पहला पुरुष : इसलिए कि ज्ञान-विज्ञान के विकास का सत्य परिवर्तनीय है—और जो हर युग में बदलता रहा है, जिसमें विकसनशीलता की प्रवृत्ति रही है, वह युग-सत्य नहीं होता। हो ही नहीं सकता।

दूसरा पुरुष : फिर युग-सत्य क्या है?

पहला पुरुष : प्रेम। ईश्वर प्रदत्त दूसरी निधि—जो सदा, हर युग में, हर काल में एक समान रहा है, अपरिवर्तित रहा है, किन्तु जिसे मानव न भूलकर भी भूल जाता है, भूल जाना चाहता है पर भूल नहीं सकता...

दूसरा पुरुष : क्यों?

पहला पुरुष : इसलिये कि वह युग-सत्य है, जिस पर सारी सृष्टि की रचना-प्रक्रिया अवलम्बित है। युगों से इसी परम सत्य की खोज में भटकता हुआ युगात्मा काल-सत्य को झुठलाता चला आ रहा है। सत्यान्वेषण की कामना लिये अतृप्त युगात्मा आज भी भटक रहा है, तड़प रहा है...जाने किन-किन युगों से भटका है यहाँ! न जाने किन-किन स्थानों पर खोजा है उसने?

दूसरा पुरुष : मिला उसे?

पहला पुरुष : नहीं। नहीं मिला। तभी तो वह आज भी भटक रहा है।

दूसरा पुरुष : कहाँ?

पहला पुरुष : देखो। नीचे देखो।

(दूसरा पुरुष नीचे देखता है।)

दूसरा पुरुष : ओह! मगर वहाँ तो घना अन्धकार है।

पहला पुरुष : नहीं। ध्यान से देखो वहाँ—अन्धकार नहीं प्रकाश है वहाँ—उज्ज्वल, लाल, सूर्योदयी प्रकाश!...

(सहसा संगीत का तीखा कोलाहल गूँजता है, जो क्रमशः दूर होता जाता है। इन दूर होती ध्वनियों के बीच मंच के बीचोबीच लाल रंग के प्रकाश-वृत्त में एक धार्मिक तीर्थयात्री के वेश में युगात्मा खड़ा दिखाई देता है—धोती, कुर्ता पहने, पीठ पर गठरी, सिर पर जरीदार पगड़ी, सहारे के लिये हाथ में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाठीनुमा लकड़ी। माथे पर कुंकुम का तिलक और चेहरे पर लम्बी यात्रा की थकान के स्पष्ट लक्षण हैं। मंच पर लाल प्रकाश के गिरते ही मीनारों पर अँधेरा छा जाता है।)

युगात्मा : (दर्शकों की ओर घूमकर)

मैं उस भू पर घूम चुका हूँ,
जिसके उद्यान में
काल ने सीखा है पद-विन्यास मनोहर।
घुसते ही प्रथम बालक धन्य युग का
आलिंगन किया मैंने पहले,
मैं हूँ एक तीर्थयात्री!
ओ मेरे नवीन वस्त्र धारण किये पुराने सौभाग्य!
अपने सुगन्धित मधु को
मेरे स्वप्नों से मिला दोगे क्या?

(दर्शकों से परिचित होने का अभिनय करते हुए)

एक और पंद्य गाने से बुरा तो न मानोगे?
शीतल दुग्ध-सरिता में तैरता हुआ
स्नान करके आया है वसन्त,
बाहर निकलकर वसन्त जहाँ
छाया में अपने गीले कपड़े बदल रहा था,
मैं रास्ता भूलकर पहुँचा वहाँ,
मेरा सारा शरीर परागमय हो गया।
सभी जगह घूमता हुआ मैं
अन्त में आ पहुँचा यहाँ—
एक मर्मस्पर्शी क्षण में!

(युगात्मा धीरे-धीरे पीछे मुड़ता है। उसके मुड़ने के साथ आकाश पर लाल और नीले रंग की मिलीजुली आभा उभरने लगती है। युगात्मा को घेरनेवाला लाल प्रकाश धीरे-धीरे लुप्त होने लगता है और उसके स्थान पर पीला प्रकाश फैल जाता है। मंच पर घूम-घूमकर निरीक्षण करते हुए)

ओह! मैं आ पहुँचा यहाँ किसी तरह
युग-युगान्तरों के उपरान्त, मन्वन्तरों के पश्चात्।
यह युगात्मा सबसे है सुपरिचित—
वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास सभी
शार्दूल भूमि में सिर झुकाए
घास चर रहे हैं,
ऐसी भूमि में जागकर आँखें खोलते हुए
देखे मैंने अनेक मनोहर रंग,
नादधारा में प्रवाहित होता हुआ
सोया करता था मैं जहाँ।
हजारों जिह्वाओं से बोलते हुए
तीर्थ आये मेरे समक्ष,
जिसमें डुबो दिया मैंने
अपने अनेक जन्मों के अज्ञान को।
किलों औ' रणभूमियों को पार कर
बड़े-बड़े कदमों से आगे बढ़ा मैं,
श्मशान भूमि में,
शून्य अर्द्धरात्रि में,
शान्त, निष्पन्द, हाथ-पैरों को समेटकर सोया मैं।
मेरे समक्ष तब एक नयी पीढ़ी
नवपुष्पवत् पुष्पित हुई।
मैंने नैमिषारण्य में खड़े होकर
सुनीं बहुत-सी कहानियाँ,
कितने ध्यानावस्थित थे
वे श्रोतागण वहाँ पर।
भीड़ लग गई थी लोगों की,
कला-प्रेमी थे वे तुम्हारे समान ही।
कथा सुनने को कातर थे उनके कान,
कितने कोमल थे उनके मन,
बिना किसी बाधा के
सुन रहे थे वे कथा बड़े ध्यान से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ जो नाटक अभिनीत होने जा
रहा है,
जानते हो कौन-सा है
वह नाटक अभिराम?
युगात्मा है नायक उसका
'युगात्मा' ही उसका नाम।
ठहरो!
मैं नटी को बुलाता हूँ
कथा को सविस्तार बताने के लिए।

(हल्की पदचाप सुनकर एक ओर देखता हुआ)

देखो, नटी आने के लिये तैयार हो
गयी है।

(सुमधुर संगीत-ध्वनियों के बीच सुन्दरी जबाला मीनार के आगे से प्रवेश करती है। आकर्षक चेहरा, नर्तकी की वेशभूषा। गले में एक पेण्डुलमवाली काली माला।)

युगात्मा : नटी, तुम एक कुशल अभिनेत्री हो।
नाम क्या है तुम्हारा?
(नटी अपना वास्तविक नाम 'सुभी' बताती है और लजा जाती है।)

युगात्मा : यह तुम्हारा नाम है न? कोई भी यह नाम जानना नहीं चाहता। असली नाम क्या है?

नटी : जबाला।

युगात्मा : बहुत अच्छा। जबाले! तुम्हारी कथा सुनने के लिए जन्म संस्कारयुक्त श्रोतागण कातर हैं। जन्म कहाँ हुआ था तुम्हारा? कौन-कौन-सी कथाएँ तुम्हारे बारे में कही जाती हैं?

जबाला : मेरा अपना कोई घर नहीं, कोई घोंसला नहीं। मैं हूँ गगन-गायिका! मैं कभी लौटती नहीं हूँ। सारे युग मेरे अपने हैं। लेकिन वैदिक युग मुझे प्रिय है सर्वाधिक।

युगात्मा : इस युगात्मा की ओर तनिक ध्यान से देखो तो। मैं सुपरिचित हूँ न? जरा याद तो करो।

जबाला : बिल्कुल याद नहीं। मेरा मूल परिवार है उपनिषद्, जहाँ मैंने अपनी माँ का पिया है दूध।

युगात्मा : तब मैंने तुम्हें देखा था न?
मुझे सब कुछ याद है
पूर्ण रूप से, विशद् रूप में।
तुम भूल गई हो, हे संचारप्रिये!
यह युगात्मा भी एक संचारी है,
तुमसे बातें करना भी आनन्ददायक
है,
बताओ, आगे बताओ, जरा सुनूँ तो!

जबाला : सत युग से मैं हूँ यहाँ।
त्रेता, द्वापर, कलि—सभी युगों में
आती-जाती रहती हूँ मैं,
आगे भी जाना है मुझे अभी।

युगात्मा : तो आओ, इस युगात्मा का हाथ पकड़कर भावी यात्रा पूरी कर लो!

जबाला : अभिलाषा अच्छी है...
मगर जबाला के हाथ
पुराने जमाने से बड़े कठोर हैं...
जानते हो, अनुभव है?

युगात्मा : ठहरो—याद कर लूँ जरा।

जबाला : (गले में पड़ी काली माला दिखाते हुए) यह काली माला देखी है कभी?

युगात्मा : शायद पहले कभी देखी है—
हाँ...कुछ-कुछ याद आती है।

जबाला : देखी होगी स्नेह की काली मुद्रा,
अपने कीमती संचित मोहों को
अपनी छाती से लगाये हूँ मैं
ध्यानपूर्वक, यह है मेरा व्यामोह,
जिसको मैं रोमांचपूर्वक स्वीकार करती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ।

युगात्मा : अव्यक्त मनोहर है तुम्हारा भाषण,
ध्वन्यात्मक सुन्दर है जिह्वा-विन्यास,
मेरे लिये तो वह है सुविशद् औ'
सुग्राह्य
दूसरों को अज्ञात औ' अज्ञेय।

जबाला : इसमें मेरा क्या अपराध?

युगात्मा : यह कवितामयी वाणी बन्द करो।
सुन्दरी जबाले, अपनी हृत्तरंग को
करो स्पष्ट यथार्थ रूप में, पूर्णतया,
दुःख हो या सुख--सभी कुछ बताओ।

जबाला : सुख? इस जबाला को? अभी तक
तो ऐसा हुआ नहीं।

(सिर पर हाथ रखते हुये अत्यन्त विषाद के साथ मंच पर एक चक्कर लगाते हुये किसी पागल स्त्री के समान उच्च स्वर में पुकारती है।)

सत्यकाम!...सत्यकाम!!...

(संगीत का तेज स्वर उभरता है, वाणी गूँजती है और प्रकाश मन्द पड़ता है। युगात्मा आश्चर्य से जबाला की ओर देखता है और बिना पीछे मुड़े धीरे-धीरे विंग्स में चला जाता है।)

सत्यकाम!...मेरे बेटे सत्यकाम!!...

(नेपथ्य से एक शान्त आवाज गूँजती है।)

आवाज : असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय...

जबाला : असतो मा...सद्गमय—मेरा बेटा असत्य
से सत्य की ओर जाना चाहता है—हे
भगवान! यह क्या है?—सत्य-असत्य
मैं नहीं जानती...मैं नहीं सह सकती।
मेरा सिर चकरा रहा है—बेटे
सत्यकाम!...मैं तुम्हें देखना नहीं
चाहती। तुम भी मुझे कभी मत देखना.
..इस पापी माँ पर दया करो। जबाला
पापात्मा है—देखो, वह जा रही है बिना
किसी अपशकुन के...

(संकट-भार से युक्त जवाला का प्रस्थान। दूसरी दिशा से सत्यकाम प्रवेश करता है। वह चुनरीदार पीताम्बर धारण किये है। कमर पर लाल रंग का फेंटा बाँधे है। सुगठित शरीर। माथे पर लाल कुंकुम का तिलक। सुन्दर चेहरा। कौमार्य अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।)

सत्यकाम : दुर्गम है पथ मेरा,
परन्तु मुझे दुःख नहीं।
दृढ़ निश्चय है मेरा यह
जब तक पहुँचता नहीं स्वलक्ष्य तक
बिना आँखें बन्द किये, बिना थके,
बिना रुके बढ़ते ही रहेंगे ये मेरे पग।

(जोर से पुकारकर)

मुझे जननेवाली हे जबाले!
यह पुत्र खड़ा है तेरी प्रतीक्षा में
छूकर तेरे चरण विदा लेने के लिये।

(जवाला अपराधिनी की तरह प्रवेश करती है।)

माँ!...ओ माँ!!

(जबाला को देखकर अहंकारसहित)

काले धब्बे से रहित
प्रकाश-राजवीथी पर,
देखो, यह सत्यकाम कदम रखता है।
मिट्टी का ढेर जो माणिक्य बन जाता
है,
नित्य सत्य के संस्पर्श से,
वही नित्य सत्य मुझमें मुस्कुराता है।

(जवाला रोती है। सत्यकाम उस पर ध्यान नहीं देता है।)

अदृश्य विश्व-चेतना मेरे आर्द्र
कपाटों को
खोलती है अपने दुकूल के द्वारा।
कोई अन्धकार इस आनन्दमयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभूति को
कर नहीं सकता अपहृत,
जो इस मुकुल पर है जागृत।
(माँ को रोती देख उसका हाथ पकड़कर)
माँ, क्या दुःख है तुम्हें?
कौन-सा सन्ताप कुरेदता है तुम्हें?

जबाला : कोई दुःख, कोई सन्ताप नहीं बेटे!

सत्यकाम : माँ, तुम छिपाना क्यों चाहती हो?
क्या भय है तुम्हें सत्य बताने में?

जबाला : जानना चाहते हो मुझसे मेरे बेटे—
छिपाना अब सम्भव नहीं।
(गले में पड़ी काली माला को पकड़कर)
यह काली माला है सत्य,
अब मैं इसे छिपा नहीं सकती।
परन्तु...रखना सहानुभूति अपनी
इस माँ के साथ...
कुपित मत होना...
बेटे के हठ करने औ' हृदयशून्य
हो जाने पर...
माँ सभी कुछ सह लेगी।
सत्य जानना चाहते हो सत्यकाम?

सत्यकाम : जानना है सत्य, जानकर ही मानूँगा।

(जबाला मंच का एक चक्कर लगाती है और पीठिका पर जाकर खड़ी हो जाती है। मंच पर छाया प्रकाश सहसा लुप्त हो जाता है और आकाश पर नीला प्रकाश छा जाता है। अगले ही क्षण लाल प्रकाश के दो वृत्त मंच पर उभरते हैं—एक पीठिका पर खड़ी जबाला पर, और दूसरा सत्यकाम पर। जबाला का चेहरा गहन गम्भीर हो जाता है।)

जबाला : फेंको, चाहे जितने पत्थर फेंको,
वे सब हैं पुष्पवत् इस सीता के
लिये।

सत्यकाम : माँ, सीता? कौन-सी सीता?

जबाला : त्रेता युग की—जनकपुरी का मधुर
स्वप्न जानकी।

सत्यकाम : तो...जबाला...?

जबाला : जबाला ही है सीता
औ' सीता ही जबाला है।

सत्यकाम : कैसा है विधि का विधान?
कैसा है यह जादू?

जबाला : (पीठिका से नीचे उतरकर)
वह समाज जिसने मुझे प्यार दिया,
साकेतवासियों ने पतितत्व आरोपित
किया
मुझ पति-भक्ता में, अग्निसाक्षी का
तिरस्कार कर।

सत्यकाम : भूल जाओ यह कहानी पुरानी
किसी की।

जबाला : कैसे भूलूँ मैं उसे?
एक धोबी ने अपने उस हाथ से,
जिससे कपड़े धोता है वह,
किया प्रहार मेरे ऊपर, पहले पत्थर
से।
तब समाज ने पत्थर फेंके
मेरे ऊपर एक साथ...
और अन्त में...अन्त में...
पके प्रेम के पत्थर से
मेरे प्यारे आर्यपुत्र ने
त्याग दिया मुझे घर से
और छोड़ दिया मुझ गर्भिणी को
जंगल में।

(सत्यकाम जबाला को हिलाकर जैसे जगाता है। जबाला जैसे नींद से जागी हुई-सी खड़ी रहती है।)

सत्यकाम : माँ...माँ...जागो!...जागो माँ।
माँ जबाला हूँ, सीता नहीं।
मैं जबाला-पुत्र हूँ सत्यकाम,
सीता-पुत्र नहीं।

जबाला : जाने क्या-क्या बक गयी मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनजाने में,
मेरे बेटे भूल जाओ उसे,
नाचीज़ माँ का वह स्वप्न-प्रलाप।

(मंच पर पूर्ण प्रकाश फैल जाता है।)

सत्यकाम : आज्ञा दो जाने की माँ!
लौटेगा विश्वविजयी हो तेरा यह पुत्र।

जबाला : भय लगता है मुझे, मेरे बेटे।
झुकता क्यों नहीं तेरा सिर,
सत्य की खोज करते-करते?
आँखों पर बँधी गँठीली पट्टी को
खोलो तो पहले तुम,
आज्ञा माँगो तब मुझसे जाने की।

सत्यकाम : कोई भी पट्टी खोलनी नहीं है अब,
जाना है बहुत दूर मुझे।

(जबाला के चरणों पर गिरता है। जबाला सत्यकाम को पकड़कर उठाती है और उसे पीठिका पर ले जाती है।)

जबाला : (गले से उतारकर काली माला पुत्र को देते हुए) बेटे सत्यकाम...
उत्तररहित प्रश्न के समक्ष
इस मुक्तामाला के पदक की ओर
देखना एकटक।
इस लोलक की ओर यदि तुम
देखोगे
बिना किसी दुर्बलता के,
तो कोई भी गाँठ खोल सकोगे।

(सत्यकाम वह माला ले लेता है और जबाला अपने पुत्र का चुम्बन करती है।)

सत्यकाम : (माला को ध्यान से देखते हुए) सच है! इस काली माला की ओर देखते ही मेरे हृदय में आनन्द की तरंगें उठने लगी हैं। विजय, कुत्ते की तरह पूँछ हिलाती हुई मेरा अनुगमन करती है।

(सत्यकाम वह माला पहन लेता है। जबाला सत्यकाम के कन्धे पर हाथ रखते हुए रंगमंच के किनारे तक जाकर उसको विदा देती है। रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है।

एक क्षण के पश्चात् धीरे-धीरे दो लाल प्रकाश-वृत्त उभरते हैं। आकाश में बिजली चमक रही है। जबाला दर्शकों की ओर पीठ किये खड़ी है। सत्यकाम दूर खड़ा अपनी माँ को उत्कण्ठापूर्वक देख रहा है।)

सत्यकाम : माँ...किसने कहा तुमसे,
सत्य का मार्ग है दुर्गम?
(जबाला मौन रहती है।)
उत्तर दो माँ!
मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दोगी क्या?
अपने इस पुत्र को भूल गयीं क्या?

जबाला : (दर्शकों की ओर मुड़कर, और एक स्वप्न देखती हुई-सी, पीठिका से उतरकर सत्यकाम की ओर बढ़ती है) कर्ण...मेरे बेटे...तुम कुन्ती के प्रति निष्ठुर मत हो
..यह दुर्भाग्यशालिनी तेरी माँ है न?

सत्यकाम : माँ कुन्ती नहीं, जबाला है। (अहंकारपूर्वक)...और मैं... जबाला-पुत्र सत्यकाम!

जबाला : तू जबाला-पुत्र कर्ण...
तू कुन्ती-पुत्र सत्यकाम!
(एक क्षण के पश्चात्)
कर्ण...मेरे बेटे!...कौन्तेय!!
(बेटे के प्रति लाड़ दिखाती है।)

सत्यकाम : (दूर छिटककर) मैं कौन्तेय नहीं, राधेय हूँ!

जबाला : क्या?...तुम मेरे बेटे नहीं हो क्या?
माँ की पीड़ा मैंने सही है, राधा ने नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यकाम : तो भी मैं राधेय हूँ।
कैसे भूल सकता हूँ उस प्रेम-निधि को?

जबाला : हृदयशून्य है कर्ण क्या?
द्वापर में अपनी आँखों के समक्ष
हृदय को द्रवीभूत करनेवाली
देखी थीं मैंने आग्नेय घटनाएँ अनेक,
उन्हें यह माँ भूलेगी नहीं कभी।

सत्यकाम : कूलों को तोड़ती-फोड़ती हुई
नदी के वक्षस्थल पर
फेंक दिया था जिसने नवजात शिशु को!
कैसे भूल सकता हूँ मैं–
मातृवात्सल्य उदाहरणा माँ को?

जबाला : बेचारी माँ की परीक्षा मत लो...
उस जलते हुये क्षण में भी इस वक्षस्थल में
आर्द्रता अपना घोंसला बनाये थी बेटे।

सत्यकाम : आश्चर्य है मुझे
एक माँ ऐसा कैसे कर सकती है?

जबाला : भयंकर है प्रश्न यह!
बेटे के मन को कुरेदता हुआ यह प्रश्न
धम्म से टूट गिरता है!
तेरी यह माँ असफल हो गई बेटे!

सत्यकाम : नहीं। असफल तुम हो माँ!

जबाला : हाँ! असफलताओं का इतिहास है...
भरी राजसभा में,
आयुध परीक्षण को तैयार
राजकुमारों के समक्ष,
पौर-प्रमुखों के समक्ष बेटे कर्ण...
जब तुम्हारे जन्म-स्रोत पर
लगाया गया प्रश्नचिन्ह,
माँ का सिर चकरा गया,
तुम्हारा सुन्दर वह कोमल स्वरूप
जब आया आँखों के समक्ष
माँ के स्तनों से प्रवाहित हुआ
दुग्ध स्वतः उस समय...

सत्यकाम : अनजाने ही माताओं के स्तनों से,
ऐसे ही प्रवाहित हुआ होगा दूध,
न जाने कहाँ-कहाँ और कब-कब!

जबाला : कितनी ही पत्नियों का हृदय,
कहाँ-कहाँ और कब-कब फटा होगा;
उन कथाओं को याद करते ही
बेटे कर्ण, मेरा हृदय द्रवीभूत हो उठता है।

सत्यकाम : (जाग्रत हुआ-सा)
घूमता रहा मैं स्वप्न के जंगलों में
पथभ्रष्ट होकर माँ!
आप कुन्ती और मैं कर्ण!
कैसा था वह दिवास्वप्न!!
समय बीत गया, पता नहीं चला कुछ,
अच्छा, अब मैं करता हूँ यात्रारम्भ।

(आकाश में चमकती बिजली शान्त हो जाती है और मंच पर पीली-पीली धूप फैल जाती है।)

जबाला : तुम खोज क्या रहे हो सत्यकाम?

सत्यकाम : सत्य, ज्योति, अमृत।

जबाला : जबाला-पुत्र के लिये यह सब निषिद्ध है न?

सत्यकाम : (साभिमान) ऐसा क्यों?
जबाला-पुत्र कौन है, जानती हो?

जबाला : माँ से ग़लती हो गयी,
बिना सोचे-जाने क्या मैं बक गयी।
जाओ, विजयी बन लौटो तुम।
(आशीर्वाद देती है।)
प्रश्न का उत्तर न मिलने पर
उस काली माला की ओर देखना भूलना मत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(सत्यकाम प्रस्थान करता है।)

जबाला : (सहसा विकारयुक्त हो बाहर की ओर देखती हुई)
ठहरो सत्यकाम!
यहाँ आओ,
एक क्षण रुककर जाओ।

(सत्यकाम वापस आता है।)

सुनो एक कहानी विश्वासघात की।

सत्यकाम : मैं जल्दी में हूँ माँ!

जबाला : जाने से फायदा भी क्या?
जो भी दरवाजा तुम खटखटाओगे
बन्द ही रहेगा वह।
एक कहानी सुन लो।

(चलती हुयी जबाला पीठिका पर खड़ी हो जाती है। मंच पर अन्धकार छा जाता है। आकाश का रंग बदलता है, लाल-नीला प्रकाश फैल जाता है। पीठिका और सत्यकाम पर लाल प्रकाश पड़ता है।)

कण्वाश्रम में रहनेवाली,
अपरिचित काम-कथा की गंध से,
शकुन्तला हूँ मैं।

सत्यकाम : माँ शकुन्तला है?

जबाला : उस दिन उस तपोवन में
पानी देती थी मैं वन-ज्योत्स्नाओं में।
अपनी सखियों औ' हरिणियों के साथ
खेलते हुये दुःखरहित बीतनेवाला वह समय।

(नीले रंग के प्रकाश-वृत्त में घिरा हुआ युगात्मा प्रविष्ट हो अस्वस्थ-सा खड़ा हो जाता है।)

उस वसन्त की कला विकसित हो
पूर्ण चन्द्र में खिल उठी।
एक बार भी देखने का उसकी ओर
साहस नहीं हुआ मुझे उस पर
आँखें टिकाकर, एकटक।

(आकाश का रंग अपरिवर्तित रहता है, किन्तु मंच पर सम्पूर्णतः प्रकाश फैल जाता है। रंगीन प्रकाश-वृत्त गायब हो जाते हैं।)

युगात्मा : कारण इस अधीरता का
अधिक ठण्ड थी या ऊष्मा?

जबाला : दोनों ही नहीं,
कारण थी मर्यादा और लज्जा ही।
उस चन्द्र के अन्दर के काले धब्बे को
देख नहीं सकी मैं।
एक दिन फिर सज-धजकर आये वे आर्यपुत्र।
एक पूर्ण विकसित वसन्त ऋतु के
मनोहर आगमन के समान
पुष्पों औ' सुगन्ध के पूर्ण मधु औ'
माधुर्य सहित।

(शृंगार-भाव के साथ जबाला सत्यकाम की ओर बढ़ती है। सत्यकाम परिभ्रमित हो दूर हटता है।)

जबाला : आर्यपुत्र!

युगात्मा : (परिभ्रमित होकर) सामाजिकों के
धार्मिक विचारों को विशृंखलित कर
रही हो जबाले!

(युगात्मा की चिन्ता किये बगैर जबाला सत्यकाम का अनुगमन करती है। सत्यकाम दूर हटता है।)

जबाला : रुक जाओ पल भर के लिये।
मेरी ओर देखकर एक बार हँसो तो,
मेरे मन के अन्दर मरे मन को
कुरेदते हैं अनेकों विचार,
वाणी नहीं दे पाती मैं जिनको, देव!

युगात्मा : (व्याकुल होकर) सीमा का अतिक्रमण
कर रही हो तुम जबाले!

(सत्यकाम की ओर संकेत करते हुए)

यह है इडीपस औ' तू है योकारता!
शान्तं पापं!...
सामाजिकों! भूले बिना आप अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को,
कर दो क्षमा इस जबाला को।
(जबाला से)
जबाले, हम लोगों को यह वायवी-कथा
पसन्द नहीं।

जबाला : नहीं, यह कोई कहानी नहीं।
न जाने कितने जन्मों से
सर्ग, स्थिति, संहार से
लगा रहे हैं चक्कर ये अनर्घ क्षण,
होंगे समाप्त तुम तक पहुँचकर ही।

(युगात्मा सत्यकाम की ओर देखता है। सत्यकाम विक्षिप्त-सा हो जाता है।)

युगात्मा : तू सत्यकाम है या दुष्यन्त?

सत्यकाम : मैं सदैव सत्यकाम ही हूँ।
करता हूँ सत्य का सन्धान,
बिना किसी स्वामी के।
(जोर से) सत्य कहाँ है?...(चलता है)
ज्योति कहाँ है?...अमृत कहाँ है?
(प्रस्थान। मंच का प्रकाश दायरों में बदल जाता है।)

युगात्मा : (सत्यकाम के साथ दो-तीन क़दम आगे बढ़कर पीछे मुड़ता है। एक राजा के रूप में अभिनय करते हुए)
ओ अपरिचिते!...कौन हो तुम?

जबाला : (स्वगत) आह!...कैसा है यह प्रश्न?
आर्यपुत्र, जानते नहीं मुझे!
इतने तो हृदयहीन होंगे नहीं!
करवा दूँगी मैं याद उन्हें।
(प्रकट में) तपोवन में तमाल-तरु के तले,
जब हम बैठे थे छाया में
याद नहीं है क्या?
जब तुमने प्रियदर्शिनी मृगी के लिये
आगे बढ़ायी थी घास।

युगात्मा : (तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसता हुआ)
चाटुकारितापूर्ण वाणी चमत्कारपूर्ण है तुम्हारी,
कमनीय है कविता,
परन्तु मैं वह मृगशावक नहीं,
जो पथभ्रष्ट हो फँस जाये तुम्हारे जाल में,
दुष्यन्त दुर्बल नहीं।

जबाला : (रोती हुई) उस वसन्त में जबकि
हर्षित हो वसन्त ने
किया था हमको अनुगृहीत।
उस समय सन्तोष-सरिता के समीप
हम एक साथ थे,
पास-पास आये औ' परस्पर परिचित हुए।
पराग से परिलसित हो,
हम हो गये आलिंगनबद्ध,
और एकाकार हो गये,
और एक क्षण, जो सो गया है,
उसे जगा दूँ मैं।
उस दिन रागपूर्ण प्रेम से जो
अँगूठी दी थी मुझे
यह है वह अभिज्ञान।
(अपनी उँगली में अँगूठी न देखकर साश्चर्य)
अँगूठी कहाँ है?
(याद करते हुए) ओह! याद आया—
रास्ते में शचीतीर्थ में
उतरकर प्यास बुझायी, थकावट दूर की,
परन्तु उसके प्रतिफल में
ये मेरी अनर्घ प्रेममुद्रा तुमने ले ली?
(युगात्मा तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसता है।)
एक जीवन के मोह,
एक सुख चक्रवाल की सीमाएँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाहित हो बैठी थीं उस एक अँगूठी में।

युगात्मा : (क्रोधित होकर) कैसा यह कपट-नाटक?
कैसी यह अधिकार की माँग?
कितनी अच्छी तरह से
सभी कुछ पहले से निश्चित कर
बनाया गया है प्रभावपूर्ण
गणिकाओं के लिये उचित नाटक!
प्रहरी!...कौन है वहाँ?
निकाल दो बाहर इस उन्मादिनी को!

जबाला : नहीं, स्वयं ही चली जाऊँगी मैं,
धोखेबाजी की इस गाथा को
भावी पीढ़ी तक पहुँचाने के लिये
यह अनाथा स्वयं ही चली जायेगी।
जबाला वंचिता!...जबाला परित्यक्ता!!
(जोर से) सत्यकाम!...मेरे बेटे सत्यकाम!!

(संकट-भार से बोझिल जबाला प्रस्थान करती है।)

यवनिका

द्वितीय दृश्य

(परदा उठता है : मंच पर अन्धकार। धीरे-धीरे मीनारों के ऊपरी भाग पर प्रकाश पड़ता है। एक मीनार पर पहला पुरुष खड़ा है और दूसरा पुरुष दूसरी मीनार पर झुका हुआ नीचे देख रहा है।)

पहला पुरुष : देखा?

दूसरा पुरुष : हाँ—देखा! (सीधा होते हुए) किन्तु क्या यही युग-सत्य है?

पहला पुरुष : तुम्हें सन्देह है?

दूसरा पुरुष : शत-प्रतिशत। क्योंकि यदि प्रेम ही युग-सत्य है तो उसके क्षेत्र में दुःख क्यों? विषाद क्यों? विश्वासघात क्यों? प्रेम के क्षेत्र में पदार्पण करने के उपरान्त वह तड़पती नारी जबाला क्यों? वह छटपटाता सत्यकाम क्यों?

पहला पुरुष : तुम तर्क कर रहे हो? बौद्धिकता का उपयोग कर रहे हो?

दूसरा पुरुष : जी? यह तो ईश्वर-प्रदत्त है...

पहला पुरुष : परन्तु ईश्वर और तत्स्वरूप प्रेम के क्षेत्र में बुद्धि और तर्क का कोई स्थान नहीं है। बुद्धि तर्क की जननी है, मस्तिष्क की विकासिका है और उसी के फलस्वरूप मानव दुर्विचारों तथा दुर्भावनाओं से आप्लावित हो जाता है...

दूसरा पुरुष : (साश्चर्य) क्या?

पहला पुरुष : हाँ। प्रेम सत्य है। वह ईश्वरस्वरूप है। उसमें छल-कपट-विश्वासघात जैसी दुष्प्रवृत्तियों के लिये कोई स्थान नहीं है। ये सब बुद्धि की देन हैं, उसी की सन्तानें हैं। तर्क-पिता मस्तिष्क की भयानक पुत्रियाँ!...ये सब प्रकृति की नहीं, पुरुष की विशेषताएँ हैं, जो मात्र काम-पूर्ति के लिये प्रेम करता है और फिर उदासीन हो जाता है। विवशता के नाम पर प्रकृति को भोग्य वस्तु बनाकर स्वयं अट्टहास करता है।

दूसरा पुरुष : नहीं! यह मिथ्या है, वंचना है, भ्रम है!

पहला पुरुष : (हँसता है) मिथ्या नहीं बन्धु, सत्य—वंचना या भ्रम नहीं, वास्तविकता है। एक सत्य—जो युग-सत्य है! जिसके सन्धान-हेतु सत्यसन्धानी सत्यकाम न जाने कब से व्याकुल भटक रहा है...बेचारा सत्यकाम! पुरुष के बौद्धिक मस्तिष्कगत प्रेम की वासनाओं से जन्मा एक अगोत्री बालक!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा पुरुष : नहीं, नहीं। यह मिथ्या है–झूठ है।

पहला पुरुष : (हँसता हुआ) मिथ्या? झूठ?–अच्छा, नीचे देखो। मैं दिखाता हूँ–सब कुछ दिखाता हूँ...

(नीचे मंच पर फैले मटमैले अन्धकार के बीच सत्यकाम टटोलता, लड़खड़ाता हुआ प्रवेश करता है। आँखों पर काली पट्टी बँधी है।)

सत्यकाम : (टटोलता, लड़खड़ाता, आगे बढ़ता हुआ) इन शून्य सतहों पर लड़खड़ाते कदमों से,
टटोल-टटोलकर चलने के लिये,
विवश किया है मुझे किसने?
मेरी आँखों में दुर्गम अन्धकार का किला बनाया है किसके करों ने?
बाँधा है जिसने यह बन्धन?
उन्हीं हाथों से खुलवाऊँगा।

(सहसा संगीत की एक तीक्ष्ण लहर उभरती है और क्रमशः दूर होती चली जाती है। आकाश पर बिखरते इन्द्रधनुषी रंगों के बीच नीले प्रकाश-वृत्त में घिरा ज्योति-पुरुष प्रवेश करता है। लम्बी, श्वेत दाढ़ी और श्वेत जटाधारी दिव्यात्म इस पुरुष के एक हाथ में कमण्डल और दूसरे हाथ में भिक्षा-पात्र है। पीठिका पर पहुँचकर)

ज्योति-पुरुष : छटपटाते हुये अन्धकार में
डुबकी लगायी मैंने पानी में,
जन्मों समाधि में लीन रहा,
परिणाम-विधेयक के रूप में
एकान्तता में स्वयं अपने को ही खोजने के लिये
अपने ही भीतर से मैंने
बाह्य रूपों को मुक्त किया कई बार।
पूरी दाढ़ी रक्खी, विज्ञान ने पथ दर्शाया।
ओ अज्ञानी! हिचकिचाता क्या है
पथ पर आगे बढ़ने में?

सत्यकाम : अन्धा अन्धे को क्या मार्ग दिखा सकता है?
आँखों में पड़े कीचड़ को मैं
हटाऊँगा अपने ही हाथों से।
(आँखों पर बँधी काली पट्टी को हाथों से दूर हटाता है। आँखें खुली होने पर भी वह अन्धकार में टटोलता हुआ बढ़ता है।)
इस अवरोध के दूर हो जाने पर भी
कितना भयंकर अन्धकार घेरे है मुझे!

ज्योति-पुरुष : जो अन्धकार मन को घेरे है तेरे
दूर कर उसको तू सबसे पहले।

सत्यकाम : अन्धकार नहीं मेरे मन में, एक सत्य अदम्य...
निद्राविहीन खड़ा है वहाँ
मार्गदर्शक ज्योति के लिये।
किन्तु हो तुम कौन
कुपथ की ओर ले जानेवाले?

(चारों दिशाओं से 'ज्योति-पुरुष', 'ज्योति-पुरुष' शब्द प्रतिध्वनित होता है।)

ज्योति-पुरुष : ज्योति-पुरुष भी कहते हैं ग्रन्थ मुझे,
आत्म-पुंज भी कहलाता हूँ मैं ही।
देता हूँ जग को ज्ञान-ज्योति मैं ही,
ज्योतित हर आत्मा-गृह करता हूँ मैं ही!

सत्यकाम : (ससन्तोष) ज्योति-पुरुष!
ज्योति-पुरुष हैं आप!
आह! एक ज्योति-पुरुष की खोज में
बहता मैं जीवन के प्रवाह में
कोई विश्रामस्थल न पाने से
तैरता हुआ आ रहा था सत्यार्थी।
अन्त में देखो आ पहुँचा घाट पर।
भीगे मोह मुझमें चिपके हैं ज्योति-पुरुष!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हटा दो अलग इन मोहों को
मुझसे सदा के लिये।

ज्योति-पुरुष : घना अन्धकार है तेरे घाट पर
कोई स्थान नहीं प्रकाश के लिये।
बहते रहो अनन्त काल तक
अपने भीगे मोहों के साथ।
जहाँ बैठता हूँ मैं,
वहाँ तक साथ रहो,
और फिर उतारकर फेंक दो उन्हें,
गुजरना है कई जन्मों से तुम्हें
अनुभव-सूर्य के आतप में जिससे
भस्म हो जाये जलकर महदहंकार।

(आकाश का रंग बदलता है और लाल-हरा हो जाता है। सत्यकाम अन्धे की तरह टटोलता हुआ 'सत्य कहाँ है?' 'सत्य कहाँ है?' कहता चलता है। दुन्दुभी का शब्द सुनायी पड़ता है। सत्यकाम के जानेवाले रास्ते से ही मीनार के आगे से लाल प्रकाश-वृत्त से घिरा कृत प्रवेश करता है। वह नितान्त असावधानीपूर्वक चल रहा है। उसकी वेशभूषा हरी पत्ती के रंग वाली है। उसके कानों में अस्थि-खण्ड लटक रहे हैं। गले में अस्थि-माला पहने है। भुजाओं में भी अस्थि-निर्मित भुजबन्ध हैं। हाथ में एक बड़ा शंख है। केशों को जटा की तरह बाँधे हुए है। आते समय उसका शरीर सत्यकाम के शरीर से टकरा जाता है। सत्यकाम नीचे गिर पड़ता है। रंगमंच पर प्रकाश पूरी तरह फैला हुआ है, किन्तु आकाश का रंग लाल-हरा है।)

कृत : अमंगल!...घोर अपशकुन!!...

(सत्यकाम 'सत्य कहाँ है?', 'सत्य कहाँ है?' कहता हुआ उठ खड़ा होता है और चला जाता है। कृत उसकी परवाह किये बिना रंगमंच के एक ओर से दूसरी ओर चला जाता है।)

ज्योति-पुरुष : ठहरो!...तुम मेरे प्रिय शिष्य कृत हो न?

कृत : (पीछे मुड़कर) हूँ तो मैं कृत ही,
परन्तु किसी का प्रिय शिष्य नहीं।

ज्योति-पुरुष : नहीं! मेरे मुख की ओर एक बार
देखकर कहो तो।

कृत : (समीप जाकर चेहरे को ध्यान से देखता हुआ) लगता है, देखा है कहीं
इस चेहरे को पहले कभी...

ज्योति-पुरुष : (क्रोध से) गुरुद्रोही!...मन्दबुद्धि!!...
अरे दुर्मुख!
तू कृत है या प्राकृत?

कृत : अभिमान-भरे स्वर में ऐसे
बोला नहीं आज तक कोई कृत से।

ज्योति-पुरुष : मूर्ख! समय बीत जाने पर भी
तेरा स्वभाव बिल्कुल भी बदला नहीं?

कृत : परिवर्तन? कैसा परिवर्तन? परिवर्तन
क्यों? कैसे हो परिवर्तन?

ज्योति-पुरुष : अरे वनचर!...स्नेहबन्ध जाने बिना
विकसित होनेवाले कृत...!

कृत : ज्योति-पुरुष होने के नाते
दम्भपूर्ण अशिष्टता दिखाते हो मुझसे?
तब नदी-तट पर युग-सन्ध्याएँ,
सूर्योदय-सूर्यास्त के धनुषों से खेलती थीं,
मचलती थीं किरणें नाना वर्णों की
इन सबको देख-देखकर ही बड़ा हुआ हूँ मैं।

ज्योति-पुरुष : हे अरसिक शिरोमणि!
उस दिन तेरे साथ जो देखी थी अपूर्व सुन्दरी
कहाँ है आज वह हंसगामिनी?

कृत : कौन सुन्दरी? कैसी हंसगामिनी?
आचार्य ने समझा क्या?
अगाध ध्यान में खोये हुए आपने
कुछ भी तो जाना नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समूह-यज्ञ-समारोह के लिये लाकर समिधाएँ
मुझ परिक्रमी की आराधना की थी जनता ने।
एक साथ नरों औ' नारियों ने।
उनमें से एक नर या नारी को याद करके
घूमनेवाला नहीं हूँ मैं संकुचितमनस्क।

ज्योति-पुरुष : तुझमें औ' जानवर में
अन्तर ही क्या है तब?
तेरे सारे कर्म हैं अकर्म औ'
कृत है केवल अकृत।

कृत : अनिष्ट! असह्य है यह नामकरण।
अकृत हूँ क्या मैं?
एकलक्ष्य हो सारी जनता,
संकेत-मात्र से जिस नेता के
उठती है जाग—वही हूँ मैं।
पर यह तो बताओ—
विकास-हेतु गाये गये सामगीतों का उद्गाता—
यह कृत क्या अकृत है?

ज्योति-पुरुष : केवल अकृत ही नहीं दुष्कृत भी,
कल-कल निनाद करनेवाले सामगीतों में
जोड़कर तूने अनक्षरों को
पहुँचा दिया है भावी अनेक पीढ़ियों तक।
बो दिये उनमें तूने
अक्षम्य भूलों के बीज।

कृत : भूलें भी जब बार-बार की जाती हैं
तो वे भी हो जाती हैं विशुद्ध।
जानते हो न?

ज्योति-पुरुष : नहीं! कदापि नहीं!
दुहराने पर भी भूल
रहती है भूल ही,
औ दुहराने पर असत्य भी असत्य ही।
गया है सत्य खोजनेवाला इसी मार्ग से ही
उस सत्यान्वेषक को देखा है तूने क्या?

कृत : दुर्बल पैरों पर चलनेवाला
वह दुधमुहाँ बच्चा है सत्यान्वेषी?

ज्योति-पुरुष : वह है सत्यकाम!

कृत : तब तुम एक बात सुन लो—
वह है मेरा प्यारा बेटा।

ज्योति-पुरुष : तेरा प्यारा बेटा!
ऐसा है यदि तो तू है सौभाग्यशाली,
सत्यकाम...सत्सन्तान!

कृत : किन्तु हे ज्योति-पुरुष!
सबको है यह रहस्य अज्ञात आज तक
तुम कभी किसी को बताना मत।

(नेपथ्य से तुरही की ध्वनि उभरती है, जो क्रमशः धीमी पड़ती जाती है।)

सुनते नहीं क्या अधिकार-अभिलाषियों के वे अपशब्द?

(कृत जाने का उपक्रम करता है।)

ज्योति-पुरुष : मत जाओ वहाँ, रुको
तू इस रास्ते से आया ही क्यों?

कृत : बिना किसी उद्देश्य के।

ज्योति-पुरुष : ठहर जा वहीं,
बहुत कुछ पूछना है मुझे तुमसे।

कृत : (लौटता हुआ) जबरदस्ती मत करो,
निषेध की ओर घसीटो मत,
इस महाप्रवाह को मत बाँधो,
इस महोत्सव को मूक बनाओ मत।

(कृत का प्रस्थान।)

(कृत के जाते ही मंच पर अन्धकार छा जाता है, किन्तु आकाश पर तेजी से रंग आते चले जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंगों के इस परिवर्तन के साथ-साथ कानों को फाड़ देनेवाली तीखी संगीत-ध्वनियाँ, जिनमें रणभेरी का स्वर भी शामिल है, उभरती रहती हैं, जो क्रमशः दूर होती जाती हैं। रंग-परिवर्तन की गति धीमी पड़ती है। वातावरण शान्त होता है आकाश पर खूनी लाल रंग फैलकर क्रमशः गुलाबी हो जाता है। रंग स्थिर होते ही नीले रंग का प्रकाश-वृत्त ज्योति-पुरुष पर गिरता है। तुरही का तेज स्वर उभरता है और मीनार के नीचे से लाल प्रकाश-वृत्त से घिरे त्रेता और द्वापर मंच पर बढ़ते हैं। तुरही का स्वर शनैः शनैः दूर होता जाता है।
आगे-आगे त्रेता और पीछे-पीछे द्वापर मंच पर आते हैं। दोनों राजकीय वेश धारण किये हैं। चेहरे प्रसन्न हैं। त्रेता के हाथ में धनुष-बाण है और द्वापर के हाथ में मुरली। तुरही के स्वर बन्द हो जाते हैं।)

ज्योति-पुरुष : (पीठिका पर पहुँचकर, स्वगत) त्रेता
और द्वापर दोनों लगभग हैं एक जैसे
एक माँ की सन्तान-समान ही
नय-विनयशील! (त्रेता और द्वापर की
ओर मुड़कर) तुममें से त्रेता है कौन?

(मंच पर पूर्ण प्रकाश, किन्तु आकाश पूर्ववत् ही ह।)

त्रेता : मैं हूँ त्रेता!

ज्योति-पुरुष : एक नारी के लिये युद्ध करनेवाले!
लक्ष्य तुम्हारा क्या है?

त्रेता : मैं दिखाऊँगा तुम्हें,
इस छोटे-से बाण फेंकने से
जागती है पृथ्वी की चेतना कैसे?

(धनुष पर बाण चढ़ाने का अभिनय करता है।)

ज्योति-पुरुष : भूमि के प्रति अमानवीय महानीचता
दिखलानेवाले द्वापर! लक्ष्य तुम्हारा क्या
है?

(मुरली के स्वर उभरकर शान्त हो जाते हैं।)

द्वापर : (मुरली को देखता हुआ)
मैंने सिखायी है लोगों को भयंकर
युद्ध-विद्या,
औ नष्ट कर दिया उनके मोहों को
मनोहर संगीत से।

ज्योति-पुरुष : जागने के बाद उस दिन
कोई सोया ही नहीं क्या?

द्वापर : सुनकर स्वर इस मुरली के
उठनेवाले थे वे लोग,
तामसरहित होकर
चाहे सो जायें वे लोग
जागेंगे, वे स्वयमेव जागेंगे।

ज्योति-पुरुष : बहुत अच्छे! जगाया नहीं त्रेता, तुमने
उन लोगों को जो सो रहे थे?

त्रेता : यह धनुष और यह बाण—
पराजय स्वीकार नहीं की आज तक
मैंने।
शत्रुओं द्वारा बनाये गये किलों को
करके नष्ट-भ्रष्ट, रक्त-सिन्दूर-
तिलकयुक्त
विजय-दुन्दुभि बजानेवाला विजेता हूँ
मैं!

ज्योति-पुरुष : ओहो, रणविजेता!
रक्त-सिन्दूर-तिलकधारी रणजेता!
स्त्री के लिये निरपराधी को पीछे से
छिपकर मारनेवाले धनुर्वीर त्रेता!

त्रेता : वह तो है हमारा सैन्य-कौशल;
धर्म-संस्थापन के लिये प्रयुक्त
कर्म-कौशल।

ज्योति-पुरुष : फिर उस स्त्री के प्रति भी
अनीति प्रदर्शित की,
भक्षणार्थ क्रूर जानवरों के
फेंक दिया फिर उस नारी को तुमने।
वह भी है धर्म-संस्थापन?
व्याख्या अपने आक्रमण की।

त्रेता : नवीन लोगों को जीतने के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजय-यात्रा की मैंने,
सत्य है, यदि वह आक्रमण है तो
आक्रमण ही सही।

ज्योति-पुरुष : आक्रमण नहीं, धर्म-संस्थापन! (त्रेता और द्वापर जाने लगते हैं।) जाने की जल्दी है क्या?

द्वापर : जी हाँ, जल्दी है। भूमि का रक्षक सव्यसाची हूँ मैं।

ज्योति-पुरुष : स्थिरप्रतिज्ञ, महारक्षक, अवतार-पुरुष!

द्वापर : राजलक्ष्मी के वस्त्र हटाकर
अपमानित करनेवाले दुःशासन को
मार गिराना मेरा उन्नत कौशल
औ असीम, अनुपम बाहुबल।

ज्योति-पुरुष : स्त्रियों के प्रति सहानुभूति दिखानेवाले हृदय-सम्पन्न!

द्वापर : मनोहर सुन्दरियों ने बाँधकर घुँघरू पैरों में
चारों ओर मेरे, पूजा की मेरी
रासलीला करते हुए।

ज्योति-पुरुष : द्वापर—स्त्रीप्रिय, मनोहर, महाभाग्यवान!

त्रेता : इस त्रेता के भी हैं अनुभव अनेक;
पर समय नहीं है उनके वर्णन का मेरे पास।

ज्योति-पुरुष : सब कुछ देखा था—
सभी लोगों के बुद्धि-वैभव और महिमा को
विद्यालय में देखा था;
धर्माधर्म कं विवेचन से रहित, कर्म मार्ग के
भेद से अनभिज्ञ कौशलहीन बुद्धू लोग!

(तुरही की मन्द ध्वनि उभरती है। इस ध्वनि के साथ ही ज्योति-पुरुष पीठिका पर बैठ जाता है। तुरही की ध्वनि क्रमशः तेज होती जाती है। त्रेता और द्वापर का प्रस्थान। मंच का प्रकाश ज्योति-पुरुष पर पड़ रहे नीले प्रकाश-वृत्त का रूप ले लेता है। आकाश पर बदलते रंगों के बीच ज्योति-पुरुष पीठिका पर ध्यानावस्थित हो जाता है। आकाश पर अन्धकार छा जाता है। अगले ही क्षण ज्योति-पुरुष के पीछे आकाश पर प्रकाश का एक लाल अण्डाकार वृत्त उभरता है और उसे घेरता हुआ स्थिर हो जाता है। कुछ पलों के बाद बन्दूकों, तोपों के चलने की ध्वनियाँ तथा रॉकेटों व मिसाइलों के छोड़े जाने की गड़गड़ाहट-जैसी आवाजें उभरने लगती हैं, जो क्रमशः असहनीय कर्ण कटु शोर का रूप ले लेती हैं। आकाश पर तेज़ी से रंग बदलते हैं। उसका रंग खूनी लाल हो जाता है। तभी अचानक लाल प्रकाश-वृत्त से घिरा कलि प्रवेश करता है। उसके प्रवेश करते ही शोर सहसा बन्द हो जाता है। कलि के केश खुले-बिखरे हैं, आँखें लाल हैं, पोशाक काली है, हाथ में तलवार है।)

कलि : (ज्योति-पुरुष के सामने पहुँचकर घूरकर देखता हुआ) गुरो!...गुरो!!
(ज्योति-पुरुष आँखें खोलता है और मंच पर प्रकाश फैल जाता है।) युग
बीत गये आपसे मिले हुए,
आपको देखे बिना एक पल भी बिताना
आपके मुख से आधा वाक्य सुने बिना बैठना,
आपका शाप हो तो शाप,
वरदान हो तो वरदान,
लिये बिना उसको नष्ट होना,
आत्महत्या के तुल्य है गुरुदेव!

ज्योति-पुरुष : कौन है रे गुरुभक्त तू? कौन है रे?

कलि : बहुत अच्छे! अच्छा है यह प्रश्न!
देखकर मुझे पहचानते नहीं?
इससे बड़ा अपमान आपके लिये
और हो ही क्या सकता है?
अपनी महत्ता को मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं ही बखानूँ क्या?
उचित है यह क्या?
मात्र नाम ही बताता हूँ अपना—कलि!.

ज्योति-पुरुष : (चौंककर) कलि? (उठकर प्रणाम करता हुआ) कलि हो क्या?

कलि : बैठो गुरुदेव! वहीं बैठो! (पकड़कर पीठिका पर बैठाता है।)

ज्योति-पुरुष : बहुत कुछ सुना है मैंने,
कलि के बारे में।

कलि : क्या? क्या सुना है? केवल अपवाद ही।

ज्योति-पुरुष : अपवाद ही नही, आरोपण भी,
और भी बहुत सारी बातें...

कलि : और भी बहुत सारी बातें?
महत्ता किसी ने बतायी नहीं न?
मन्दबुद्धि, लक्ष्यरहित लोग!
अच्छा जाने दो उसे—मगर
नाम सुनते ही मेरा खड़े हो गये आप क्यों?
हाथ जोड़कर प्रणाम किया क्यों आपने?

ज्योति-पुरुष : आदर!...भय!...

कलि : झूठ बोलते हो।

ज्योति-पुरुष : 'अधर्म करने के लिये घसीटो मत मुझे'
की थी यही विनय मैंने तुमसे।

कलि : अधर्मचारी नहीं हूँ मैं,
जो इस मार्ग से गये हैं अभी,
जानते हैं उन्हें आप!

ज्योति-पुरुष : त्रेता और द्वापर हैं वे दोनों।

कलि : वे दोनों ही हैं पापी और अधर्मचारी।

ज्योति-पुरुष : उनसे किसी भी प्रकार श्रेष्ठ नहीं हो तुम।

कलि : (कुपित हो तलवार हिलाता हुआ ज्योति-पुरुष के पास पहुँचकर) क्या कहा आपने?

ज्योति-पुरुष : कुपित मत हो कलि!
तुम सबकी महिमा औ' वैभव
देख चुका हूँ मैं युद्धस्थल में—
धर्माधर्म-विवेकरहित लोग!
कर्माकर्म-विवेकशून्य लोग!

कलि : अपनी उँगली के अग्रभाग पर
खिलौने की तरह देखा मैंने चन्द्र।
अपनी प्रियतमा को मैंने चन्द्रमुखी कहकर
पुकारा नहीं—कारण जानते हैं आप?

ज्योति-पुरुष : मैं क्या जानूँ?

कलि : सर्वज्ञ हैं आप तो!
फिर भी मालूम नहीं?
मैं बताता हूँ—
सत्य का निषेधक नहीं है कलि।
कविगण चाहे कुछ भी कहें, यहाँ से देखने पर,
चर्म-रोग से पीड़ित लगता है यह चन्द्र,
पास पहुँचकर देखा तो
गहरे गड्ढे, आकार भयंकर।

ज्योति-पुरुष : जाने दो, यह कहते हो तुम—
चन्द्रमा को अच्छी तरह जानते हो तुम?

कलि : जी हाँ, अच्छी तरह जानता हूँ मैं।

ज्योति-पुरुष : ...तो दैव-निषेध का साहस करते हो तुम?

कलि : दैव? (हँसता है) दैव क्या है?
नितान्त मिथ्या!
दुर्बलों औ' कायरों को अभय देने का संकल्प।

ज्योति-पुरुष : कलि बकवादी है, किन्तु है बुद्धिमान।
कलि है महा-महाबुद्धिमान।
फिर भी एक सन्देह है मुझे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्र से मित्रता के लिये गये थे तुम न?

कलि : बताया तो, चन्द्र के सिर पर मैं खड़ा रह सकता था।

ज्योति-पुरुष : फिर भी खड़े नहीं रहे तुम—कितनी उदारता!
(सगौरव) जब तुम औ' चन्द्र आमने-सामने खड़े थे—
खोला नहीं तुमने विशुद्ध वेद को क्या?
विश्वास भी नहीं किया?
ईसा का आचरण भी नहीं किया?
(कलि पीला पड़ जाता है।)
ब्रूनो, कोपरनिकस, गैलीलियो से
एकत्रित किया गया धीरता का मिट्टी का घड़ा
गिरकर फूट गया क्यों? मिट्टी में मिला दिया क्यों
अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के पहले ही?
पास से देखने पर चन्द्र को भी
विश्वास की उँगली के चलने से सिमटे हुए
ग्रन्थों के पृष्ठों में शरण क्यों ली तुमने?
बता, जल्दी बता—बताता क्यों नहीं?

कलि : (अपराध-बोध के साथ)
वेद-ग्रन्थ थोड़ा-सा पढ़ा, वह...

ज्योति-पुरुष : हिचक रहे हो तुम,
पढ़ा क्यों तुमने? बताओ।

कलि : अपने मन को हल्का करने
और फिर थोड़ी मदिरा पीने के लिये।

ज्योति-पुरुष : महाभौतिकतावादी!

कलि : यह सिर्फ ख्याल है आपका!

ज्योति-पुरुष : अच्छी सत्यदीक्षा है!

(तभी कृत, त्रेता और द्वापर मंच के तीनों कोनों पर पहुँचते हैं।)

कलि : (उन तीनों को देखकर) कलि किसी का समय नहीं लेना चाहता—लो, यह वापस जाता है। (दो छोटे कदम आगे और एक बड़ा कदम पीछे रखकर) दो कदम आगे और एक कदम पीछे—यह है पुरोगमन।

(प्रस्थान)

(मंच पर धीमा प्रकाश पड़ता है। सत्यकाम 'सत्य कहाँ है...' कहता हुआ आता है और चला जाता है। कृत बिना कोई आवाज किये ज्योति-पुरुष की ओर जाता है।)

कृत : (धीमे स्वर में) यह जाता है मेरा प्रिय पुत्र सत्यकाम।

ज्योति-पुरुष : सत्सन्तान! सत्यकाम!
कृत, सौभाग्यशाली है तू!

कृत : आज तक कोई भी
जानता नहीं यह परम रहस्य,
किसी से कहियेगा भी नहीं।

(प्रस्थान। मंच पर अन्धकार।)

(कुछ क्षण पश्चात् आकाश पर मटमैला प्रकाश फैलता है तो ज्यातिपुरुष वहाँ नहीं है। मंच पर फैले मटमैले अन्धकार के बीच सत्यकाम मंच पर प्रवेश करता है।)

सत्यकाम : प्रकाश जो छिपा है कहीं,
कितना चलना है मुझे
उसे खोजने के लिये?
इस गहन अन्धकार में—
कैसे खोजूँ—किससे पूछूँ?
सत्य कहाँ है?...
ज्योति कहाँ है?...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमृत कहाँ है?...

(परेशान, अर्द्धविक्षिप्त-सा मंच के दूसरी ओर चला जाता है। अगले ही क्षण उस मटमैले अन्धकार के बीच नीले प्रकाश-वृत्त से घिरा ज्योति-पुरुष प्रवेश करता है। त्रेता उसके पीछे-पीछे आता है और सहसा उसे पीछे से पकड़ता है।)

त्रेता : (फुसफुसाते हुए) क्या आपको खोज रहा है वह?
वह है सत्यकाम—इस त्रेता की प्रिय सन्तान।

ज्योति-पुरुष : (साश्चर्य) तेरी सन्तान—तेरा पुत्र?

त्रेता : (सगर्व) जी हाँ, मेरा पुत्र।

ज्योति-पुरुष : (अविश्वास के साथ) तेरा निजी बेटा?

त्रेता : जी हाँ, मेरा अपना ही बेटा।

ज्योति-पुरुष : यदि ऐसा है, तो तू है सौभाग्यशाली त्रेता! ('सत्य कहाँ है?' सत्यकाम के ये शब्द सुनायी पड़ते हैं। त्रेता का प्रस्थान। दूसरी दिशा से द्वापर प्रवेश करता है।)

द्वापर : मेरा बेटा पूछ रहा है, सुन रहे हैं आप?
सुनिये ध्यान से,
गर्व हो रहा है मुझे उसका बाप होने का!

ज्योति-पुरुष : द्वापर का पुत्र है सत्यकाम?

द्वापर : धीरे बोलो, वह है सत्य!

ज्योति-पुरुष : तो मैं बुलाता हूँ सत्यकाम को... सत्यकाम...

द्वापर : मत बुलाओ उसे, द्वापर चला जायेगा।

(द्वापर चला जाता है। अँधेरे में सत्यकाम का स्वर 'सत्य कहाँ है? सुनायी देता है और दो प्रकाश-वृत्त उभरते हैं—लाल वृत्त मे कलि और नीले वृत्त में ज्योति-पुरुष दिखायी देते हैं। धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश फैल जाता है।)

कलि : इस प्रकार वह पैदा हुआ,
किसी ने पुत्रकामेष्टि नहीं की,
अग्नि भगवान ने खीर नहीं दी।
कलि की है यह दुःखभरी कहानी।
सारे समाज ने पकड़कर बाँध दिया मुझे...
शादी कराने की कोशिश की,
मुट्ठियाँ बाँधकर, दाँत पीसते हुये
गालियाँ दे नीचे गिराया और दीं धमकियाँ भी!

ज्योति-पुरुष : तूने स्वीकार कर ली हार क्या?

कलि : कलि हार मानेगा क्या?

ज्योति-पुरुष : भाग गये?

कलि : दोनों नहीं। प्रस्तरवत् कलि खड़ा रहा,
स्नेह-प्रस्तर के समान रहा स्थिर।

ज्योति-पुरुष : तो तुम भी उसके पिता हो?

कलि : मैं ही हूँ उसका एकमात्र पिता।

(कृत, त्रेता और द्वापर एक-दूसरे को ससन्देह देखते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं।)

ज्योति-पुरुष : कृत, त्रेता, द्वापर—
आ सकते हो तुम तीनों।
ससंकोच खड़े क्यों हो?
एक पंक्ति में नीचे बैठ जाओ।

(सभी बैठने में हिचकते हैं। ज्योति-पुरुष बच्चों की तरह उन्हें बैठाता है। वे बच्चों की तरह व्यवहार करते हैं। बैठते समय किसी दूसरी बात का ध्यान करते हुए उठकर खड़े हो जाते हैं। अधीरता प्रकट करते हैं।)

ज्योति-पुरुष : क्षण भर भी एकाग्रचित्त रहने में असमर्थ,
एक प्रश्न पूछने की अनुमति दोगे क्या?(चारों एक साथ 'हाँ, हाँ पूछ सकते हैं' कह उठते हैं।)
प्रश्न है यह—देखो, मैं पूछता हूँ—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यकाम को जानते हो तुम?

चारों : (एक-एक करके) हमें मालूम नहीं।

ज्योति-पुरुष : सत्यकाम किसका पुत्र है?

चारों : (एक-एक करके) हमें मालूम नहीं।

ज्योति-पुरुष : कौन है सत्यकाम का पिता?

चारों : (एक-एक करके) हमें मालूम नहीं।

ज्योति-पुरुष : बहुत अच्छा शिष्यो, बहुत अच्छा।
तुममें से किसी का भी उस रक्त से
सम्बन्ध नहीं;
तुम सब निरपराधी,
तुम्हें लगे महारोग,
जिसका कभी भी कोई उपचार न हो।

(सत्यकाम का स्वर गूँजता है—'असतो मा सद्गमय. ..।' चारों युग रंगमंच के चारों कोनों पर जाकर अपने सिर झुकाकर खड़े हो जाते हैं। टटोलता हुआ सत्यकाम प्रवेश करता है। ज्योति-पुरुष पीठिका पर चढ़कर खड़ा हो जाता है।)

सत्यकाम : सद्गुरो, विद्या का याचक सत्यकाम
है यही,
अनुगृहीत करो प्रकाश दे इसे।
सत्य कहाँ है?...ज्योति कहाँ है?...
अमृत कहाँ है?
सद्गुरो! ज्ञान-ज्योति देकर अनुगृहीत
करो मुझे।

ज्योति-पुरुष : जानता हूँ सभी कुछ, फिर भी
मैं पूछता हूँ—कौन है तू?

सत्यकाम : सत्यकाम!

ज्योति-पुरुष : केवल सत्यकाम?

सत्यकाम : (साभिमान) जबाला-सत्यकाम।

ज्योति-पुरुष : केवल जबाला-सत्यकाम?

सत्यकाम : इतना पर्याप्त है न?...
केवल जबाला-सत्यकाम।

ज्योति-पुरुष : इच्छा क्या है तेरी?

सत्यकाम : सत्य जानने की।

ज्योति-पुरुष : सत्य जानने की आकांक्षा है?

(आकाश का रंग बदलता है और लाल-नीला हो जाता है।)

सत्यकाम : युग बीत गये, जाग्रत है यह अकलंक
सत्यकाम।
जब से आपने पहली बार निषेध की
थी विद्या,
वन-मध्य, आपकी मिट्टी की प्रतिमा
के समक्ष,
आयुध-विद्या पढ़नेवाला एकलव्य है
यह।
(अँगूठा दिखाते हुए)
दक्षिणा के रूप में उस दिन दिया था
अँगूठा यह।

ज्योति-पुरुष : नहीं चाहिये मुझे ऐसी दक्षिणा दुबारा।
मत कहो वह कहानी दुबारा!
मत करो मुझसे विद्या की अभिलाषा।

सत्यकाम : देना पड़े चाहे मुझे अँगूठा दुबारा,
किन्तु जानकर ही मानूँगा सत्य।

ज्योति-पुरुष : कैसा है यह दृढ़ निश्चय!
कैसा है यह अहंकार!
कृत, त्रेता, द्वापर, कलि—तुम सब
करो अब विद्याभिलाषी सत्यकाम को
स्वीकार।

कृत : अँगूठा लो या न लो,
विद्या निषेध करनी है।

ज्योति-पुरुष : क्यों?

(आकाश पर अनेक रंगों के अस्थिर परिवर्तन होते हैं।)

त्रेता : गोत्ररहित को विद्या-पात्र बनाना है
क्या?

ज्योति-पुरुष : गोत्ररहित?

द्वापर : जानता हो यदि, तो बताये—पूछो न।
गोत्र क्या है? पिता कौन है? पूछो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह।

ज्योति-पुरुष : सत्य खोजनेवाला...

कलि : इसलिये पूछो उससे,
जानता हो तो बताये सत्य।

ज्योति-पुरुष : सत्यान्वेषक सत्यकाम!
तेरा गोत्र क्या है?

(चारों युग दुहराते हैं—'तेरा गोत्र क्या है?')

सत्यकाम : (अहंकारसहित) मैं हूँ जबाला सत्यकाम!

ज्योति-पुरुष : कौन है तेरा पिता?

(चारों युग दुहराते हैं—'कौन है तेरा पिता?')

सत्यकाम : कौन है मेरा पिता? कैसा है प्रश्न यह?
मिलता नहीं सत्यान्वेषी को उत्तर, है क्या यह?
(गले में पड़ी माला को उतारकर)
उत्तर न मिलने पर इस माला को देख कहा था माँ ने
कोई भी गुत्थी सुलझायी जा सकती है।
पिता कौन? सत्य जिसे खोज नहीं पाया मैं।
गोत्र क्या? जिसे जान नहीं पाया मैं।

ज्योति-पुरुष : खोजो, पहले उसे खोजो।
विनीत होकर उसे खोजो...

सत्यकाम : (जोर से) सत्य कहाँ है?...कहाँ है सत्य?

(एक अन्धे की तरह सत्यकाम चला जाता है। कृत के साथ तीनों युग ठहाका मारकर हँसते हैं। पूर्ण अन्धकार। फिर भी सत्यकाम के स्वर गूँजते रहते हैं।)

यवनिका

तृतीय दृश्य

(मीनारों पर श्वेत प्रकाश पड़ता है। नीचे झुका हुआ दूसरा पुरुष सीधा खड़ा हो जाता है।)

दूसरा पुरुष : हे भगवान!

पहला पुरुष : देखा युग-सत्य? ईश्वर-स्वरूपा प्रेम को पुरुष ने किस सीमा तक घृणित रूप दे दिया है!

दूसरा पुरुष : असह्य है! असहनीय है यह!! किन्तु क्या यही प्रेम है? यही युग-सत्य है?

पहला पुरुष : हाँ...शायद यही रह गया है युग-सत्य! वासना के विष में पवित्र प्रेम को इस तरह घोलकर पुरुष ने प्रकृति को पिला दिया है कि वह तड़प रही है...पुरुष की वासना का शिकार—बेचारी प्रकृति और उसका सत्यान्वेषी पुत्र सत्यकाम!

दूसरा पुरुष : तो प्रेम?...युग-सत्य...?

पहला पुरुष : मात्र एक...

दूसरा पुरुष : क्या?

पहला पुरुष : (तेजी से) वह देखो! वह देखो!! प्रेम का वास्तविक स्वरूप...वास्तविक युग-सत्य, जिसे पाकर झूम उठेगा...

(मीनारों पर पड़ रहा प्रकाश लाल हो जाता है। मंच पर हल्का, किन्तु पूर्ण प्रकाश है। सहसा दूर से एक शोर उभरता है। जुलूस के नगाड़ों और लोगों के चीखने की आवाजें—'मारो—मारो—वह पापात्मा है! कलंकिनी है! आदि-आदि—धीरे-धीरे पास आती जाती हैं। इसी शोरगुल के बीच युगात्मा मंच पर प्रवेश करता है। मीनार के एक ओर देखता है, जैसे वहाँ कुछ हो रहा है। तभी भयभीत जबाला भागती हुयी, बार-बार पीछे मुड़कर देखती हुई, मंच पर आती है। शोर बहुत पास आ चुका है। युगात्मा के सामने वह घुटनों के बल गिर पड़ती है। शोर बन्द हो जाता है।)

जबाला : (भय से) वो...पीछा कर रहे हैं वो मेरा...
अपमान और उपहास करने को,
भीड़ की भीड़ आ रही है,
हाथों में हैं उनके ईंट-पत्थर...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगात्मा : (जबाला को पकड़कर उठाता है)
अकीर्तिकर है पलायन यह
आने दो उनको यहाँ
हूँ तो मैं यहाँ तुम्हारी रक्षा करने को,
आँसू पोछने औ' हाथ थामने को।

(नेपथ्य से शोर उभरता है। उस ओर देखते हुए युगात्मा का प्रस्थान। सत्यकाम प्रवेश करता है। मुख परिश्रान्त है।)

सत्यकाम : (क्रोधसहित) इस राजपथ पर तुम खड़ी,
अन्तस्तल में छिपाये अपनी ईर्ष्या
किसकी कर रही हो प्रतीक्षा?
(अपने गले में पड़ी माला की ओर देखता हुआ)
उत्तरशून्य प्रश्न के लिये यह माला
उठाकर मैंने देखी।
(माँ के सामने जाकर)
सुलझाने को अपने मन की गुत्थी
देखा मैंने एकटक इस माला की ओर।

जबाला : (दूर हटती हुई) दे दी है मैंने यह अब,
वापस मैं ले सकती नहीं इसे।

सत्यकाम : मैं क्यों रक्खूँ यह माला अपने पास?
काला आभूषण किसकी याद में?
खण्ड-खण्ड हो जाये यह...
नष्ट-भ्रष्ट हो जाये यह...

जबाला : (सत्यकाम को पकड़कर रोकती हुई)
मत करो ऐसा बेटे...
मत करो ऐसा सत्यकाम...

सत्यकाम : क्यों न करूँ मैं ऐसा?
इतना नहीं है मेरे लिये महत्त्व इसका।
चित्रित है इसमें रूप किसका?

जबाला : चीर रहा है मन को यह प्रश्न।

सत्यकाम : किसका है यह घिसापिटा,
अव्यक्त चित्र?—बताओ मुझे।

जबाला : (स्वगत) मुँह किये खड़ी है जबाला
तू सत्य के सामने।

सत्यकाम : बोलो...बोलो...
किसका है यह चित्र—जानना है मुझे!

जबाला : (रोती हुई) असमर्थ है उसे बताने में यह माँ
एक भयंकर क्षण का चित्र!
एक वेदना का रूपरहित चित्र!
इससे अधिक कुछ मत पूछो बेटे...
(रोती है।)

सत्यकाम : (ससन्देह माँ को देखकर दुबारा माला पहनते हुए)
लो, पहन लेता हूँ मैं
यह माला अपने गले में
हृदय-स्पन्द के साथ मेरे,
होती रहेगी यह भी स्पन्दित।
सद्गुरो, आँसुओं से भीगती रही है यह।
अपनी माँ के आँसुओं से भीगा हूँ मैं,
रो रहा हूँ अस्तित्वरहित अपने बाह्य रूप को
दूर फेंककर, परिणाम-विधेय हो,
अनुभव-सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में
मिट जाये मेरा यह महदहंकार।
प्रकाश कहाँ है सद्गुरो?

(दूर से नगाड़े की ध्वनि सुनायी पड़ती है। मंच पर अन्धकार छा जाता है। आकाश के रंग बदलते हैं। रंग गुलाबी हो जाता है। नीले प्रकाश-वृत्त से घिरा ज्योति-पुरुष प्रवेश करता है। मंच पर प्रकाश सामान्य हो जाता है।)

ज्योति-पुरुष : जबाला! अनेक युगों से तुम्हारे अन्दर
दहकते हुये ज्वालामुखी के आतप को
अनुभव कर रहा हूँ मैं,
उस आतप में तीव्र तप करनेवाली,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमको देखने आया हूँ मैं।

जबाला : एक शब्द भी बोलने में असमर्थ है
जिह्वा मेरी।
होंठ भी कुछ बोलने में असमर्थ हैं।
केवल एक ही प्रश्न मत पूछना, मेरे
गुरुदेव!
केवल एक ही प्रश्न...

ज्योति-पुरुष : वह प्रश्न तुमसे पूछने नहीं आया हूँ
मैं।

जबाला : कोई प्रश्न मुझे पूछना नहीं है।
कोई शिकायत भी नहीं है।
किसी से कुछ कहना भी नहीं है।
मेरी वेदना मेरे अन्दर ही जन्मी थी।
मेरे साथ रहनेवाली मेरी उस वेदना
को
मरने दो मेरे साथ ही।

ज्योति-पुरुष : सत्यकाम, मेरे पास आओ।

(सत्यकाम ज्योति-पुरुष के पीछे की ओर आकर खड़ा हो जाता है। तभी युगात्मा हाथ में दो शंख लिये प्रवेश करके एक शंख ज्योति-पुरुष और एक शंख सत्यकाम को देकर चला जाता है। दोनों एक साथ शंख बजाते हैं। आकाश का रंग नीला हो जाता है।)

ज्योति-पुरुष : **(सत्यकाम का हाथ पकड़कर पीठिका पर खड़े हो उसे देखते हुए)**
सत्यकाम! सरल, सजीव, विनम्र
औ' युगों से आर्द्र तेरे दोनों नेत्रों में
प्रतिफलित होगा अनन्त सत्य।
जबाले, तेरे इस विनयी प्यारे बेटे
सत्यकाम को कर लिया विद्या देने
का,
निश्चय अब—उसको करो अनुगृहीत!

जबाला : **(सत्यकाम के पास पहुँचकर)**
दे दो वह काली माला,
माँ को लेनी है वापस, बेटे...

(सत्यकाम माँ को माला वापस करता है। जबाला उसे अपने गले में डाल लेती है।)

अब माँ के पास तुझे देने के लिये
कुछ भी नहीं है बेटे...
कुछ भी नहीं रहा शेष...

(अश्रुपूरित नेत्रोंवाली जबाला सत्यकाम के मस्तक का चुम्बन लेती है। मंच पर अन्धकार छा जाता है। दुवारा सामान्य प्रकाश फैलने पर केवल जबाला और युगात्मा ही मंच पर दिखते हैं।)

युगात्मा : **(श्रृंगार भाव से युक्त होकर)**
हे युगकामुकी, झूमनेवाले तेरी खोज
में
मुझ तीर्थयात्री को मत भेजो खाली
हाथ।

जबाला : मैंने किसी को बुलाया नहीं,
मैं किसी से बँधी नहीं...

युगात्मा : औरों को फाँसकर रखनेवाली
मायामोहिनी है तू।
चाहे कोई परित्याग करे मेरा,
आराध्या है मेरी तू।
आओ परिमल-लसित अमरमल्लिके!
(जबाला का हाथ पकड़ता है।)

जबाला : **(झटका देकर पीछे हटती हुई)**
ऐसे पकड़ने का हाथों को मेरे
योग्यता कैसे आयी तुझमें?
सुन तीर्थयात्री, तेरी अनुकम्पा
नहीं चाहिए मुझे।
(अपने गले की माला उतारकर देती हुई)
लो...यह माला लो,
इस पर अधिकार करो।
'नहीं चाहिए' ऐसा मत कहना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

'क्यों दे रही हूँ' ऐसा मत पूछना।
(माला देती है। युगात्मा उसे ले लेता है।)
विशुद्ध प्रेम के सन्देश रूप में
घूमती हुई युग-युगान्तरों से
चली जा रही है जबाला यह।
(जवाला का प्रस्थान।)

युगात्मा : (जोर से ठहाका मारकर हँसता हुआ)
कारण मत पूछना।
(हँसता है।)
काली माला देने का कारण मत पूछना।
(हँसता है।)
विशुद्ध प्रेम!
(हँसता है।)
विशुद्ध प्रेम!...युग-सत्य!!

(नेपथ्य से हवा में लहराता स्वर गूँजने लगता है।)
प्रेम ही सत्य है, प्रेम ही ईश्वर है। ढाई आखर में ही सम्पूर्ण जैविक सृष्टि का मर्म छिपा हुआ है। प्रेम का चरमोत्कर्ष वात्सल्य में ही होता है। नारी प्रणय का अक्षय कुण्ड है। यही शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप का रहस्य है।

(जाबाला युगात्मा के अट्टहास पर अपने गले की माला उतारकर समर्पित भाव से उसे दे देती है।)

युगात्मा : क्या कहती हो, ठहरो नारी!
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही
सोने के से सुन्दर सपने—
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि-पत्र लिखना होगा
आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ धरना होगा।

(सत्यकाम सत्य सत्य पुकारता हुआ—"मै जावाला-सत्यकाम!" "मैं ही जावाला-सत्यकाम!! मैं ही जावाला-सत्यकाम!!!" कहता हुआ। अंधकार में विलीन हो जाता है।) ☐

परदा गिरता है।

एफ-27, गली नं. 21,
ए.वी.वी. पब्लिक स्कूल के निकट, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-110092, मो : 09868461348

भारतीय संगीत के उन्नायक
बाबा अलाउद्दीन खाँ
के सांगीतिक जीवन को
उकेरती अनुपम पुस्तक

बाबा अलाउद्दीन खाँ और हम सब

पं. ज्योतिन भट्टाचार्य

पृष्ठ संख्या : 492 आकार : डबल क्राउन

मूल्य : ₹ 600.00

क्रयादेश कृपया निम्न पते पर भेजें :

सचिव,
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,
विपिन खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायन और नृत्य का श्रृंगार है तबला : डॉ. शोभा

(प्रसिद्ध तबला वादक शोभा रानी कुदेशिया से रघुवीर का सम्वाद)

चौथी कक्षा में शोभा की नन्ही उंगलियाँ जब तबले पर रखवायी गयीं तो उन्हें पता भी नहीं था कि मर्दाना हाथ की थाप से ही तबले में गमक-धमक उत्पन्न होती है। सदियों से पखावज और तबले पर एकाधिकार जमाये पुरुषों की तरह तबला बजाने के जुनून में शोभा रोज़ाना 8-8 घण्टे अभ्यास करने लगीं। उन्हें न तो गर्मियों में बहता पसीना रियाज़ करने से रोक पाया और न ही मूसलधार वर्षा किसी शास्त्रीय कार्यक्रम में शिरकत करने से। उत्तर प्रदेश के बरेली जनपद में जन्मीं शोभा कुदेशिया ने आख़िरकार तबले पर ऐसी ताल बजायी कि बड़े-बड़े संगीतज्ञ भी उनकी संगत के मुरीद हो गये। तबले में पीएचडी कर प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त डॉ. शोभा रानी कुदेशिया को उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी सम्मान से नवाज़ा गया है।

रघुवीर : तबले की उत्पत्ति के विषय में कुछ बताइये?

डॉ. शोभा : तबले की उत्पत्ति के विषय में बहुत-से मत हैं। कुछ लोग अमीर खुसरो को तबले कां आविष्कारक मानते हैं, तो कुछ किन्हीं दूसरे खुसरो को बताते हैं। कुछ फारसी शब्द 'तब्ल' से उत्पत्ति मानते हैं, तो कुछ दर्दुर नामक वाद्य-यंत्र से, लेकिन अभी तक इसका कोई सर्वमान्य प्रमाण नहीं मिला है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इसी प्रकार आवश्यकता के अनुसार तबले का जन्म हुआ। भरतकालीन पुष्कर वाद्यों में उर्ध्वक, आलिंग्य और आंकिक थे, जिनकी मार्जिना तीन स्वरों में होती थी, यानी जो तीन स्वरों में मिलाये जाते थे। फिर हमारे प्राचीन वाद्यों का सुविधानुसार प्रयोग करने के लिए तबले का निर्माण हुआ। कहते यह भी हैं कि पखावज को दो भागों में विभक्त कर तबला बनाया गया। पहले लोक गीतों में ढोलक, तबला बजाया जाता था। ऐसे भी चित्र मिलते हैं कि बाइयों के साथ गोद में रखकर या कपड़ा बांधकर भी तबला बजाया जाता था, क्योंकि वे गाती थीं और नृत्य भी करती थीं, तो वे साथ-साथ चलते थे। मध्यकाल में जब ख़्याल, ठुमरी, दादरा गायन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ तो तबले की आवश्यकता हुई, क्योंकि उनमें श्रृंगार भाव और कल्पना शक्ति की प्रधानता थी, जिसके साथ पखावज की संगत फिट नहीं बैठती थी। तब पखावज की जगह सिद्दार ख़ान दाड़ी ने तबले को उन्नत कर उस पर उँगलियों से बजने वाले वर्ण बनाये। तबले का स्वरूप आज भी विकास कर रहा है। पहले मिट्टी का तबला आया, फिर लकड़ी और अब धातु का तबला आ रहा है। इसी तरह पहले तबले में डोरी लगायी जाती थी, फिर बद्दी लगाने लगे और अब तबले को हम पेंच से कस सकते हैं।

रघुवीर : आवर्तन क्या है?

डॉ. शोभा : आवर्तन को हम वृत्त या घेरा कहते हैं। जब एक घेरा पूर्ण कर लेते हैं तो एक आवर्तन पूरा होता है। मसलन, 4 किलोमीटर की दूरी तय करने के लिए 1 से शुरू करके 4 किलोमीटर तक की दूरी या घड़ी की सुई 1 से शुरू होकर 12 तक जो चक्कर लगाएगी, वो एक आवर्तन कहलाएगा। ठीक उसी तरह 16 मात्राओं की तीनताल में 1 से शुरू करके जब हम 16 मात्रा पूरी कर लेंगे तो एक चक्र पूरा होगा, जिसे हम आवर्तन कहते हैं। दोबारा ऐसा ही करने पर दूसरा आवर्तन पूरा होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रघुवीर : शिक्षक और गुरु में क्या अन्तर होता है?
शिक्षक केवल स्कूली शिक्षा देता है और गुरु, शिष्य का व्यक्तित्व विकास भी करता है। उसकी सारी अच्छाइयों-बुराइयों, उसके बैठने का तरीका- सब कुछ बताता-सिखाता है।

रघुवीर : तबले के अलग-अलग घरानों की क्या विशेषताएँ हैं?

डॉ. शोभा : तबले के सभी घरानों की अलग-अलग विशेषताएँ हैं। दिल्ली एवं अजराड़ा हमारे पश्चिम घराने कहलाते हैं और लखनऊ, फ़र्रुख़ाबाद व बनारस पूरब घराने। इसके अलावा पंजाब एक प्रखर घराना है। दिल्ली सभी घरानों का जनक है। इसके कलाकार जब अन्य स्थानों पर जाकर बसे तो उन्होंने वहाँ के वातावरण, परम्परा, संस्कृति, गायन व नृत्य शैलियों और लोगों की पसन्द के अनुसार अपनी वादन शैली में कुछ परिवर्तन किया और नये घराने की नींव डाली। मसलन, मोंदू और बख़्शू ख़ान साहब ने लखनऊ और रामसहाय जी ने बनारस में नये घरानों का निर्माण किया। लखनऊ में नृत्य, ठुमरी का प्रचलन ज़्यादा था, इसलिए वहाँ ज़ोरदार बन्दिशों को बनाया गया। बनारस में ठुमरी बहुत प्रसिद्ध है, इसलिए वहाँ गणेश परन, स्तुति परन जैसी ज़ोरदार चीज़ें बनायी गयीं। दिल्ली कोमल घराना है, जिसमें दो उँगलियों-तर्जनी और मध्यम का प्रयोग किया जाता है। इसमें छोटी-छोटी बन्दिशों-मुखड़ा, मुहरा, क़ायदा, रेला, रौ को बजाया जाता है, जबकि अजराड़ा घराने में तिरछी या टेढ़ी बन्दिशों को बजाते हैं, जिनका विस्तार सम्भव नहीं है। फ़र्रुख़ाबाद घराने में पेशकार को चलन या चाला बोलते हैं। वहाँ की गतें बहुत प्रसिद्ध हैं। बख़्शू ख़ान साहब ने अपनी बेटी की शादी हाजी विलायत अली ख़ान साहब के साथ की थी और दहेज में उन्हें गतें दी थीं। इस तरह हर घराना अपनी कुछ बन्दिशों के लिए प्रसिद्ध है। राजशाही के समय राजाओं को खुश करने के लिए कलाकार उन्हें फ़रमाइशी चीज़ें सुनाते थे, जैसे लाल क़िला की परन। फ़रमाइशी परन की एक परिभाषा यह है कि पहला 'धा' पहले सम पर आये, दूसरा 'धा' दूसरे सम पर आये और तीसरा 'धा' तीसरे सम पर आये। फ़रमाइशी कोई भी बन्दिश हो सकती है, जैसे क़ायदा, रेला आदि।

रघुवीर : क्या किसी भी तबला वादक को उस तयशुदा तंत्र का अनुसरण करना चाहिए या निजी और नये तंत्र को खोजना चाहिए?

डॉ. शोभा : मेरा मानना है कि किसी भी चीज़ की मौलिकता को ख़त्म नहीं करना चाहिए। हम उसमें से कुछ नयी चीज़ों को तराशें और उनका विकास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करें। आज बन्दिशों को फ्यूज़न में करने, ठुमरी को फ़िल्मी अन्दाज़ में गाने से उसका रूप बिगड़ रहा है। एकताल, त्रिताल या तीनताल तो वही रहेगी। इसलिए मौलिकता को रखते हुए उसमें विकास करना चाहिए। विलम्बित ख़्याल के साथ झूमरा, तिलवाड़ा बजायी जाती है। अब अगर आप कोई अन्य ताल बजाएंगे तो क्या वो उसके साथ अच्छी लगेगी?

रघुवीर : तो नया विद्यार्थी तबला सीखते समय किन बातों का ध्यान रखे?

डॉ. शोभा : संगीत प्रतिभा का विषय है। लय और स्वर हर एक के मस्तिष्क में नहीं समाते। जिसके दिमाग़ में लय है, वह तबला सीख सकता है। तबला सीखने के लिए सबसे पहले एक अच्छे गुरु और शिष्य में धैर्य व संयम की आवश्यकता होती है, क्योंकि संगीत ऐसा विषय नहीं है, जिसे दो दिन में सीख लिया जाये। फिर तबले पर हाथ के रखरखाव पर ध्यान देना चाहिए। स्कूल-कॉलेजों में इन बारीकियों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वहाँ पाठ्यक्रम पूरा कराने का दबाव रहता है। इसलिए इन्हें गुरु-शिष्य परम्परा से ही ठीक ढंग से सीखा जा सकता है। इसके बाद गुरु के बताये बोलों-बन्दिशों का घर पर अभ्यास करना चाहिए।

रघुवीर : अक्सर देखा गया है कि 'धिन गिन' जैसे बोल दो उस्ताद अलग-अलग ढंग से बजा देते हैं। ऐसे में नये विद्यार्थी को क्या करना चाहिए?

डॉ. शोभा : तुम्हारी बात बिल्कुल सही है, रघुवीर। एक ही बोल को उस्ताद अलग-अलग ढंग से अपने घराने, अपनी वादन शैली की वजह से बजाते हैं। मसलन, धा तिट, धा तिट, धा धा तिट, धागे तिन किन-यह दो उँगलियों का क़ायदा है। दिल्ली घराने में इसको मध्यमा और तर्जनी उँगलियों से बजाएंगे और अन्य घरानों में अनामिका और मध्यमा-दोनों उँगलियों को मिलाकर बजाएंगे। चूँकि बजाने का ढंग अलग-अलग है, इसलिए घरानों के अपने-अपने वर्णों में भी विशेषता है। ऐसे में गुरु अपने घराने की वादन शैली के हिसाब से शिष्य को सिखाता है।

रघुवीर : तबले में हाथ के रखरखाव का क्या अर्थ है?

डॉ. शोभा : सबसे पहले तबले की बैठक होती है। दायें में कलाई से लेकर कोहनी तक का भाग एक-सा रखा जाता है। मध्यमा (बीच की उँगली) को ऊपर रखा जाता है। फिर 'धा' और 'ता' बजाने पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। जैसे, तीनताल में 'धा' चाँट पर बजेगा, 'धिन' लौह या मैदान में लगेगा। बायें को बीच की उँगली से बजाना होता है। कहाँ उँगली दबाना है? कहाँ खोलना है? कहाँ गमक लेनी है? यह सब गुरु बताता-सिखाता है।

रघुवीर : तबले पर हाथ रखने का क्या कोई सर्वमान्य नियम है?

डॉ. शोभा : जैसा कि मैंने बताया, दायें पर हाथ के रखरखाव का उपरोक्त नियम सभी घराने मानते हैं। बायें में कलाकार अलग-अलग तरह से हाथ रखते हैं। जैसे, गोदई महाराज स्याही के भाग को उल्टा करके बजाते थे। चौड़ा वाला हिस्सा आगे रखते थे और पतला वाला हिस्सा पीछे। कुछ कलाकार बायाँ सीधा करके बजाते हैं और कुछ लोग थोड़ा उठाकर, जैसे कि मैं बजाती हूँ। इसमें सर्वमान्य नियम यही है कि बायें में 'धा...गे' बजाने के लिए दोनों उँगलियों का प्रयोग किया जाता है।

रघुवीर : समान काल के बावजूद अलग-अलग तालों में उसका अनुभव भिन्न-भिन्न होता है। ऐसा क्यों?

डॉ. शोभा : इसकी वजह यह है कि तालों के खंड अलग-अलग होते हैं। जैसे, तीनताल के 4-4 खंड हैं, तो इसका समान काल रहेगा- 1, 2, 3, 4-1, 2, 3, 4 और झपताल में 2-3 के विभाग हैं, तो इसमें 1, 2; 3, 4, 5-1, 2; 3, 4, 5 की लय चलेगी। तीनताल में 16 मात्राएँ होती हैं और झपताल में 10, तो तीनताल में ज़्यादा समय लगेगा और झपताल में कम। इस तरह खंड अलग होने से ताल की चाल और जाति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदल जाती है। जैसे, धमार ताल संकीर्ण जाति की मानी जाती है, क्योंकि उसके विभाग 5-2-3-4 के हैं।

रघुवीर : क्या मानसिक और शारीरिक लय भिन्न-भिन्न होती हैं?

डॉ. शोभा : नहीं, मस्तिष्क जो चालना देगा, शरीर वही क्रिया अदा करेगा।

रघुवीर : लयदार और लयकार में क्या अन्तर है?

डॉ. शोभा : जो लयदार होगा, वही तो लयकार होगा। जो लयदार नहीं होगा, वह लयकार कैसे हो सकता है?

रघुवीर : आपको संगीत विरासत में मिला या इसमें आपकी रुचि थी?

डॉ. शोभा : मेरे परिवार में संगीत रहा, इसलिए प्रारम्भ से मेरी इसमें रुचि रही। माँ ने पटवर्धन जी से गायन सीखा था। वह बाँसुरी, जलतरंग, वायलिन भी बजा लेती थीं। पिताजी एक अच्छे चित्रकार के साथ रंगकर्मी थे। मैं कक्षा-4 में थी, तो पं. भैयालाल जी ने मुझे विधिवत तबले की तालीम देनी शुरू की। वे लम्बी-लम्बी बन्दिशें गाते थे और तबले पर मुझसे संगत कराते थे, जिससे लय पर मेरी मज़बूत पकड़ बनी। संगत के दौरान मैं ठेके के साथ-साथ परन, टुकड़े भी बजाती थी। इसके साथ ही प्यारेलाल जी से मैंने कथक की शिक्षा भी ली। उनके जाने के बाद तबला बजाने की दिक्कत हुई, जिससे मेरा नृत्य छूट गया। चूँकि मैं तबला बजाती थी, इसलिए छोटी बहन राधा को कथक का अभ्यास कराती रही। माता-पिता ने मुझको बहुत प्रोत्साहित किया। पिताजी मुझे शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में ले जाते थे। मैंने गुरु-शिष्य परम्परा से संगीत सीखा।

रघुवीर : प्रारम्भिक शिक्षा के बाद अन्य किसी उस्ताद से भी तबले की तालीम ली?

डॉ. शोभा : हाँ, भैयालाल जी के बाद मैंने पं. चन्द्रकथक जी से तबले की शिक्षा ली। उसी दौरान मैंने करीब एक साल पं. कृष्ण नन्दन उपाध्याय जी से सितार की बारीकियाँ सीखीं, लेकिन फिर दिमाग़ में आया कि मुझे कुछ अलग करना है। लिहाज़ा मैं उनके सितार वादन पर संगत करने लगी और मन में संकल्प लिया कि पुरुषों के वाद्य-यंत्र तबले में ही कॅरियर बनाऊंगी। तब मैंने सुभाप जौहरी जी और पं. रमावल्लभ मिश्र जी से तबले की विधिवत शिक्षा ग्रहण की। पं. रमावल्लभ जी ने मुझे रियाज़ के तरीके बताये। उनके निर्देशन में ही मुझे संस्कृति मंत्रलय से 3 साल की फ़ेलोशिप मिली। पं. रमावल्लभ जी के यहां अक्सर कार्यक्रम होते थे, जिनमें बड़े-बड़े संगीतकार आते थे, जिनके साथ संगत करने का अवसर गुरुजी मुझे ही देते थे।

रघुवीर : आप तबला किस घराने से बजाती हैं और उसकी क्या विशेषताएँ हैं?

डॉ. शोभा : पूरब बाज। जैसा कि मैंने बताया कि पूरब घराने में बनारस, फ़र्रुख़ाबाद और लखनऊ- तीनों घराने आते हैं। यह थोड़ा ज़ोरदार खुला बाज है और इसमें लौह व स्याही का प्रयोग होता है। इस बाज में क़ायदे, रेले, रौ के साथ टुकड़े, ज़ोरदार परनें बजायी जाती हैं। गतें, छन्द, स्तुति परन भी बजायी जाती हैं। फ़र्रुख़ाबाद और बनारस- दोनों घराने संगत की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। लखनऊ नृत्य का पुराना घराना है, इसलिए उसमें ज़ोरदारी है।

रघुवीर : ऐसे भी क्षण आये होंगे, जब आपको पुरुष तबला वादक के मुकाबले कमतर आंका गया होगा?

डॉ. शोभा : ऐसे क्षण कई बार आये। कई जगह कलाकारों को ऐसा लगा कि यह लड़की क्या बजाएगी? दरअसल, यह माना जाता रहा है कि लड़कियाँ सोलो वादन तो अच्छा कर सकती हैं, लेकिन संगत अच्छी नहीं कर सकतीं। आकाशवाणी पर मुझे बी-हाई ग्रेड मिला और मैंने कई कार्यक्रमों में संगत की, तो कलाकारों को लगा कि मैं अच्छी संगत कर सकती हूँ। उसके बाद तो दिल्ली समेत देश के लगभग सभी प्रतिष्ठित मंचों पर बड़े कलाकारों के साथ मैंने संगत की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रघुवीर : कोई ऐसा वाक्या, जब किसी कलाकार ने आपसे महज़ इसलिए तबला न बजवाया हो कि आप लड़की हैं?

डॉ. शोभा : मुम्बई में सुर सिंगार संस्था का संगीत सम्मेलन था, जिसमें जीवन सिंह जी के साथ मुझे संगत करनी थी, लेकिन उन्होंने मुझसे संगत कराने से मना कर दिया। उसके बाद दूसरे कलाकार के साथ मेरा कार्यक्रम बहुत सफल रहा। फिर कमला बोस जी के गायन के साथ मैंने संगत की, जो बहुत सराही गयी। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद जीवन सिंह जी ने मुझसे अफ़सोस जताया।

रघुवीर : किसी यादगार प्रदर्शन के बारे में बताइये?

डॉ. शोभा : ऐसे तो कई प्रदर्शन हैं, जो मेरे लिए यादगार हैं। दिल्ली में शोभा गुर्टू जी और रीता गांगुली जी के साथ संगत मुझे आज भी याद आती है। इसके अलावा कानपुर में मैंने तीन दिन तबला बजाया। वहाँ नृत्यांगना अनीता जी के नृत्य पर संगत करने को कोई तैयार नहीं था, तो मैंने तबला हाथ में लिया। वहाँ मेरा सोलो वादन यादगार रहा।

रघुवीर : सबसे पहले आपने किस बड़े कलाकार के साथ संगत की?

डॉ. शोभा : सबसे पहले मैंने गृह जनपद बरेली में ही 20 वर्ष की आयु में डॉ. अशोक रक्य के सरोद वादन पर संगत की थी। उस कार्यक्रम में शहनाई वादक अनन्तलाल जी, बाँसुरी वादक पं. राजेन्द्र प्रसन्ना भी आये थे। अशोक जी मेरी संगत से बहुत प्रसन्न हुए थे।

रघुवीर : पखावज के साथ कभी जुगलबन्दी की?

डॉ. शोभा : हाँ, दक्षिण भारत में एक बार मैंने पखावज के साथ जुगलबन्दी की थी। इसके अलावा ध्रुपद गायिका सुमति मुताटकर चाहती थीं कि उनके साथ पखावज मैं बजाऊँ, तो मैंने पखावज का बाक़ायदा अभ्यास किया और उनके साथ संगत की। पखावज में थकान ज़्यादा होती है। हालाँकि चित्रांगदा जैसी लड़कियाँ अच्छा पखावज बजा रही हैं।

रघुवीर : आपने देशभर में तबला वादन किया है। कहाँ के लोग इसमें अधिक रुचि लेते हैं?

डॉ. शोभा : लखनऊ और भोपाल के लोग। लखनऊ में संगीत नाटक अकादमी की जिस प्रतियोगिता में मुझे प्रथम स्थान मिला था, उसमें बनारस के ईश्वरलाल जी, पागलदास पखावजी और देवेन्द्र जौहरी आये थे। कई लड़कों ने 20 मिनट तक पेशकारी ही बजायी और मैंने पल्टे, रेले की बढ़त, रौ, गतें आदि सब बजायीं। वहाँ के लोगों ने मेरे तबला वादन की बारीकियों को समझा। भोपाल में उस्ताद अलाउद्दीन ख़ान अकादमी में मेरा कार्यक्रम हुआ। वहाँ तबले के गुणीजन किरण देशपाण्डे, मुकुन्द भाले जी ने मेरा कार्यक्रम सुना। कार्यक्रम के बाद उन्होंने मुझे भोपाल उत्सव में संगत के लिए आमंत्रित किया। स्वामी हरिदास सम्मेलन में भी संगीत की गहरी समझ वाले लोग मिले।

रघुवीर : इधर सोलो वादन के कार्यक्रमों में कमी आयी है?

डॉ. शोभा : पहली बात तो यह कि शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में ही कमी आयी है। जो होते हैं, उनमें अधिकांशतः गायन, नृत्य तथा अन्य वाद्य-यंत्रों का कार्यक्रम तो रखा जाता है, लेकिन तबले को संगत में ही निपटा दिया जाता है। इसकी वजह शायद लोगों के पास समय का अभाव है, लेकिन कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ 3-4 दिन के सम्मेलन में सोलो तबला वादन का कार्यक्रम रखा जाता है। पंजाब में जालन्धर जैसी जगहों पर सोलो वादन ख़ूब सुना जाता है। वहाँ बाक़ायदा एक मेला लगता है, जिसमें तबले के शौक़ीन जुटते हैं।

रघुवीर : अन्य शास्त्रीय विधाओं की तरह क्या तबले में भी प्रयोग हो रहे हैं?

डॉ. शोभा : बिल्कुल प्रयोग हो रहे हैं। उस्ताद ज़ाकिर हुसैन साहब पंजाब घराने के हैं, लेकिन वादन में उन्होंने अपनी अलग तकनीक बनायी है, जिसमें बहुत चमत्कारिकता है। वह विभिन्न लयों का प्रयोग करते हैं। क़ायदों के साथ दायें-बायें का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका प्रयोग अद्भुत है। स्थिति के अनुसार मुलायम, ज़ोरदार और गमक के प्रयोग से उनकी वादन शैली में बहुत खूबसूरती आयी है। इसके अलावा तिहाइयों का उनका प्रयोग भी अनूठा है। तबला तरंग (कई तबलों को लेकर बजाना), ताल वाद्य कचहरी के अतिरिक्त तबले में ध्वनि का उन्होंने अद्वितीय प्रयोग किया है।

रघुवीर : तबले में कलाइयों और भुजाओं का काफी प्रयोग होता है। आपको कभी महसूस हुआ कि आपके वादन में पुरुषों की अपेक्षा कुछ कमी रहती हो?

डॉ. शोभा : जहाँ तक गति की बात है, तो आपका हाथ जितना हल्का होगा, उतना ही तैयार होगा। मुख्य बात रियाज़ की है। अगर आपने नियमित अभ्यास किया है और रियाज़ के तरीकों से अभ्यास किया है, तो आपके वादन में कोई कमी नहीं रहेगी। नियमित अभ्यास के बल पर ही मैं बड़े-बड़े संगीतकारों के साथ संगत कर पायी। 19-20 का अन्तर तो पुरुष तबला वादकों में भी होता है। ऐसे में शारीरिक क्षमता की कमी की वजह से किसी महिला का तबला वादन कमज़ोर नहीं माना जा सकता। आकाशवाणी पर जब मैंने ऑडिशन दिया, तो पर्दे के पीछे बैठे उस्ताद वाजिद हुसैन साहब ने पूछा कि यह कौन लड़का तबला बजा रहा है। इस पर सुशीला मिश्रा ने बताया कि यह लड़का नहीं, लड़की है। लालजी श्रीवास्तव ने भी मेरा वादन सुनकर कहा था कि एक लड़की है, जो उस्तादाना तबला बजाती है।

रघुवीर : गायन, नृत्य या अन्य वाद्यों की अपेक्षा तबले को लड़कियाँ कम पसन्द करती हैं?

डॉ. शोभा : दरअसल, गायन और नृत्य स्वतंत्र विधाएँ हैं, लेकिन तबला मुख्यतः संगत वाद्य है। हालाँकि तबले पर सोलो वादन भी होता है, लेकिन गायन या नृत्य को तबला ही सजाता है। इसीलिए गायक और नर्तक से दोगुनी तैयारी तबला वादक को करनी पड़ती है।

रघुवीर : आप अपने शिष्यों को किस प्रकार सिखाती हैं?

डॉ. शोभा : शिक्षण के दौरान तो मैं पाठ्यक्रम में दिये गये चारों घरानों की बन्दिशें सिखाती हूँ। गुरु-शिष्य परम्परा के लिहाज़ से मैंने अभी तक 2 शिष्यों को ही तैयार किया है, जिनको अपने पूरब घराने की वादन शैली सिखायी है।

रघुवीर : फ़िल्म संगीत में पहले तबले का काफ़ी प्रयोग होता था। पाश्चात्य वाद्यों की भीड़ में तबला गुम होकर रह गया?

डॉ. शोभा : फ़िल्म संगीत में तो पाश्चात्य वाद्यों के कारण तबले पर असर पड़ा है, लेकिन शास्त्रीय संगीत में तबले की प्रासंगिकता बनी हुई है और बनी रहेगी। कई फ़िल्मी गीतों में भी तबले की कमी महसूस होती है, क्योंकि ड्रम तो केवल बीट (रिदिम) दे सकता है। उसमें कोई मैलोडी नहीं होती, लेकिन तबला, गायन की बारीकियों को बजाता है, गमक का काम करता है।

रघुवीर : संगीत में क्रियात्मक पक्ष मुख्य होता है, लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार ने नौवीं-दसवीं कक्षाओं में क्रियात्मक का प्रश्न-पत्र ही ख़त्म कर दिया?

डॉ. शोभा : हाँ, बिल्कुल सही बात है। जब हम बच्चों को बजाना सिखाएंगे, तभी तो लिखना भी बताएंगे। मैंने कई बार सेमिनार में यह बात कही कि संगीत की उपेक्षा की जा रही है। मैं तो कहती हूँ कि इसे आठवीं कक्षा में अनिवार्य कर देना चाहिए। इससे अच्छे कलाकार मिलेंगे। जिनमें प्रतिभा होगी, वे आगे बढ़ेंगे। संगीत पूरी तरह क्रियात्मक विषय है। इसलिए इसका आधार क्रियात्मक ही होना चाहिए। ☐

द्वारा, राजकुमार सिंह
एफ़-283, अर्शना रेज़ीडेन्सी, रहपुरा मार्ग,
इज़्ज़तनगर, बरेली-243122, उत्तर प्रदेश।
मो. : 08006869704, 09457885326

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतीत से

भोजपुरी क्षेत्र के स्त्री-प्रस्तुतिपरक लोकनाट्य

● डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी

लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है और जो परम्परा से अपने-अपने क्षेत्र के जन-समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है। इसकी उत्पत्ति के मूल में लोक-प्रचलन, धार्मिक रूढ़ियां, जन-परम्परायें, मनोरंजन, उत्सव आदि काम करते हैं। नाट्यशास्त्र के अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि नाट्यशास्त्र प्रणेता ने तत्कालीन लोकनाट्यों को संस्कृत रुप देने का प्रयत्न किया था। संस्कृत के अनेक रूपक तथा उपरूपकों में कई लोकनाट्यों के ही परिष्कृत रूप हैं। लोकमानस से ओतप्रोत लोकनाट्य अनादि प्रागैतिहासिक काल में जन्म लेकर काल के विशाल अवरोधों को चीरता हुआ आज तक लोक में प्रचलित है।

लोकनाट्य लोक-मनोरंजन का ही साधन नहीं है, यह लोकगत अर्जित अनुभूतियों में से मानव के मूलय आध्यात्म की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। यह अभिव्यक्ति अभिनेताओं को ही नहीं, दर्शकों को भी भागीदार बना लेती है। लोकनाट्य मात्र नाट्य नहीं है, यह समग्रतः अनुष्ठान है जिसमें अनुष्ठान-जैसे लगने वाले कर्म तो औपचारिक होते हैं। लोकनाट्य गीत, नृत्य और अभिनय का मिलाजुला रूप है। यह अवश्य है कि किसी लोकनाट्य में गीत की प्रधानता होती है, किसी में नृत्य की और किसी में अभिनय की। वास्तव में लोकनाट्य का मूल आधार तो नृत्य ही होता है। विशुद्ध लोकनृत्य तो लोकनाट्य की कोटि में नहीं आयेंगे पर अगर इनके साथ भाव, अभिनय, मंचीयपक्ष तथा कोई कथानक जुड़ जाये तो वह लोकनाट्य कहलायेगा।

भोजपुरी अंचल की अपनी कुछ विशेषतायें हैं। इस कारण इस अंचल विशेष में अभिनय किये जानेवाले भोजपुरी लोकनाट्य अन्य प्रदेशीय लोकनाट्यों से मेल रखते हुये भी अपनी निजता रखते हैं। यही निजता भोजपुरी की धरोहर है। यहां का आंचलिक वातारण, भौगोलिक परिवेश, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं कला-वैविध्य सब एक साथ मिलकर भोजपुरी लोकनाट्यों को प्रभावित करते हैं। इसलिये भोजपुरी लोकनाट्य अपने विषय-विन्यास में विविधता के इन्द्रधनुषी रंग-संकेतों को समाहित किये हुये भी उपसंहार समरसता में ही करते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के लोकनाट्य विभिन्न अवसरों पर प्रदर्शित होते हैं। इन लोकनाट्यों को देखने पर प्रतीत होता है कि उनमें से कई पूर्ण नाट्य नहीं हैं। किसी में संगीत, वाद्य, और नृत्य की प्रधानता है तो अभिनय और वार्ता-पक्ष गौण है, किसी में अभिनय, वार्ता एवं स्वांग की प्रधानता है तो संगीत, वाद्य एवं नृत्य-पक्ष गौण है। कोई आद्यान्त गीतों-भरा है तो कोई संलाप-प्रधान है। हो सकता है कि इनका कभी पूर्ण नाटकीय रूप प्रचलित रहा हो पर धीरे-धीरे जनरुचि के अनुसार मुख्यरूप ही स्वीकार किया गया। अन्यरूप समय की धारा में मिटते चले गये हैं और अब ये अपने बदले हुये रूप में हमारे सामने आते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र में प्रदर्शित होने वाले लोकनाट्यों में कुछ लोकनाट्य ऐसे हैं जो केवल स्त्रियों द्वारा ही अभिनीत होते हैं। इन लोकनाट्यों की विशेषता यह है कि इनमें से अधिकांश के दर्शक और प्रदर्शक स्त्रियां ही होती हैं। कुछ में पुरुषों का प्रवेश पूर्णतया वर्जित होता है। इनमें से कुछ प्रदर्शन स्त्रियों द्वारा ब्याह-शादियों के अवसर पर रतजगा के लिये किये जाते हैं, कुछ नवरात्रि या अन्य पर्वों पर होते हैं; कुछ अनावृष्टि होने पर इन्द्रदेव की आराधना करने के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं, कुछ व्यावसायिक स्तर पर ब्याह-शादी के अवसर पर मनोविनोद हेतु अभिनीत होते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र में केवल स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले निम्नलिखित लोकनाट्य अधिक प्रचलित हैं-

डोमकच

डोमकच भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियों द्वारा प्रदर्शित होने वाला बहुप्रचलित लोकनाट्य है। भोजपुरीभाषी जनपदों में इसे कहीं **नकटौरा,** नहीं नकटा, कहीं जलुवा, और कहीं **रतजगा** भी कहते हैं। यह एक मोहक लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य की विशेषता यह है कि इसमें दर्शक और प्रदर्शक सभी स्त्रियां ही होती हैं। जब लड़के की बारात जाती है, उस रात घर की और पास-पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्र होकर इस लोकनाट्य का प्रदर्शन करती हैं। रात भर जागकर अपना मनोरंजन करती हैं। इसके पीछे रात भर जागने की भावना छिपी हुई है ताकि घर की रखवाली हो सके। इस प्रदर्शन का अपना कोई मंच नहीं होता। प्रदर्शन के समय श्रोता और अभिनेता के बीच की दूरी का अनुशासन प्रायः ढीला होता है, क्योंकि यह कह पाना कठिन होता है कि कब कौन दर्शक अपनी जगह से उठकर प्रदर्शक की पंक्ति में जाकर खड़ा हो जायेगा।

इस हास्यपूर्ण प्रदर्शन के लिये कपड़े या चारपाई के पाये का लड़का (जलुवा) बनाया जाता है। सिर पर काला कपड़ा लपेट दिया जाता है, कौड़ी की आंख बनाई जाती है। इसी जलुवा के जन्म से लेकर विवाह तक की लीला इस प्रदर्शन में प्रदर्शित की जाती है। औरतों का विश्वास है कि अगर जलुवा सुन्दर होगा तो कन्या सुन्दर मिलेगी। एक स्त्री आसन्न प्रसवा का अभिनय करते हुए कराहती है। तत्पश्चात् बैद जी आते हैं। बैद जी की वेशभूषा देखने लायक होती है। बैद जी आसन्न-प्रसवा औरत की नाड़ी-परीक्षा करते हैं। नब्ज देखते समय वे उस औरत के साथ अश्लील हरकत करते हैं। इस पर दारोगा जी बुलाये जाते हैं। दारोगा के स्वाँग में स्वाभाविकता होती है। दारोगा जी अपनी पूरी वर्दी में, हाथ में सोंटा लिये आगे-आगे चलते हैं, उनके पीछे लाल टोपी धारण किये सिपाही और खाकी वर्दी धारण किये कन्धे पर लाठी लिये चौकीदार चलता है। इन व्यक्तियों का स्वांग धारण करने वाली औरतें घर के बाहर निकलकर किसी भी सोये हुए बूढ़े व्यक्ति की चारपाई के पास उसे भयभीत कर देती हैं।

'डोमकच' के अन्तर्गत प्रदर्शित होने वाले स्वाँगों में बिदेसिया, भाई-विरोध तथा गंगा-स्नान नामक छोटे-छोटे रूपक भी प्रस्तुत किये जाते हैं। ये सभी रूपक भिखारी ठाकुर द्वारा रचे गये नाटकों पर ही आधारित होते हैं। इन रूपकों से लोक-जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति झलकती है जो स्त्रियों द्वारा प्रदर्शित होने के कारण बड़ा ही मनोहारी हो जाता है। इनमें पुरुषों की कामुकता तथा समाज की कुरीतियों का सही चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।

'डोमकच' की मंच-व्यवस्था के लिये किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता नहीं है। खुला आंगन ही इसका मंच है। वाद्य-यंत्रों में ढोलक, मजीरा और कांसे की थाली का उपयोग होता है। पुरुष पात्रों की भूमिकायें निभाने के लिये उसी घर के पुरुषों द्वारा प्रयोग किए जानेवाले वस्त्रों का उपयोग होता है। स्वांग बनाने के लिये सन की दाढ़ी, नकली मूछें, कालिख, चूना, काजल, रुद्राक्ष की माला, सोंटा आदि प्रयुक्त होते हैं। पात्रों की संख्या स्वांग के अनुसार आठ या इससे अधिक भी हो सकती है।

बगुली

मूलतः यह मगहीभाषी-क्षेत्र का लोकनाट्य है। क्वांर के महीने में चांदनी रात में विस्तृत मैदान में स्त्रियां एकत्रित होकर इसका प्रदर्शन करती हैं। भोजपुरी-भाषी क्षेत्रों में भी इसका प्रदर्शन होता है। इस प्रदर्शन में 'डोमकच' के समान विभिन्न प्रकार के स्वांग बनाने की आवश्यकता नहीं होती। इसके प्रस्तुतीकरण में एक औरत बगुली की आकृति बनाती है : अपने घूंघट को नीचे तक खींचकर उसमें हाथ डालकर चोंच की-सी आकृति बनाकर एक औरत दो तरफ बैठी हुई औरत के बीच में उकड़ूं बैठ इधर-उधर फुदकते हुए चलती है। उसकी बनावटी चोंच हिलती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहती है। दोनों तरफ आठ-दस औरतें खड़ी होकर गीत गाती हैं। फुदकती हुयी बगुली एक दिशा में दूसरी दिशा की ओर जाती है औद दिदिया नामधारी दूसरी स्त्री-पात्र से गीत में ही उसका संवाद होता है:

दिदिया : दुल चल बगुली, दुल चल
बगुली : केकरा दुअरिआ दुल चलूँ
दिदिया : सोनरवा दुअरिया दुल चल
बगुली : सोनरवा के पूत मोंहि मरुये
दिदिया : कवना कुसुरवा तोंहि मरुये
बगुली : सोनवाँ छुअत मोंहि मरुये
दिदियाः सोनरा के पूत के दाढ़ी जरो,
काहें बगुलिया के मरुये।

इसी प्रकार बगुली ब्राह्मण, जमींदार, अहीर, बजाज, हलवाई आदि कई जातियों के लड़कों द्वारा पीटे जाने की शिकायत दिदिया से करती है।

नाटक का दूसरा दृश्य ससुराल से रूठकर नेहर की ओर प्रस्थान करती हुई बगुली के उन उत्तरों से प्रारम्भ होता है जिन्हें वह अन्य स्त्रियों द्वारा पूछे जाने पर देती है :

स्त्रियाँ : कँहवा के रूसल, कँहवा जालू ये बगुली
बगुली : ससुरा के रूसल, नइहरवा जालीं ये दिदिया

औरतें बगुली को चलने का ढंग बताती हुई कहती हैं :

अंग मोरि के चल ये बगुली
घूँघटा तानि के चल ये बगुली

इसी दृश्य में औरतें बगुली का मनावन करती हैं कि वह अपनी ससुराल लौट जाये क्योंकि श्वसुर उसे लिवा ले जाने के लिये खड़े हैं। बगुली कहती है :

ससुरा के संगवा हम ना जाइब ये दिदिया।
घूँघटा तानत जियरा जाई रे दिदिया।।

इसी प्रकार भसुर के साथ भी जाने में अपनी असमर्थता व्यक्त करती हुई बगुली कहती है :

भसुरा के संगवां हम न जाइब ये दिदिया
खरवा बरावन जिअरा जाई रे दिदिया।

देवर के साथ भी वह नहीं जाती, परन्तु जब स्त्रियाँ कहती हैं कि तुम्हारा स्वामी लिवा ले जाने के लिये आया है तब प्रसन्न होकर बगुली कहती है

अरे सैइयाँ के संगवा हम जाइब ये दिदिया
गोड़वा बधिहें कन्हवा लीन्हे ये दिदिया

इस नाट्य-गीत का तीसरा दृश्य नदी पार करने के लिये मल्लाह से बगुली के अनुरोध के साथ प्रारम्भ होता है :

बगुली : हाली ले आवहु,
हाली ले आवहु मलहवा रे भइया
जल्दी से पार उतार हो मलहवा भइया
मल्लाह : हमरा के तू दे द गोरी कला के हँसुलिया

इसी प्रकार कई आभूषणों की मांग के बाद अंत में धृष्ट मल्लाह बगुली का अदेय यौवन माँगता है जिसे देने से यव इन्कार कर देती है। इसी के साथ यह भावपूर्ण नाट्य समाप्त हो जाता है।

जट-जटिन

यह लोकनाट्य मुख्यतः उत्तर बिहार में अधिक प्रचलित है। भोजपुरीभाषी क्षेत्र में यह लोकनाट्य उन्हीं अंचलों में प्रचलित है जो उत्तर बिहार के संस्कारों से प्रभावित हैं। यों यह चम्पारण एवं शाहाबाद जिले में भी अभिनीत किया जाता है। डॉ0 श्याम परमार का कथन है कि 'मिथिला' उत्तर बिहार और भोजपुर के अनेक ग्रामों में गीतों से भरा यह लघु प्रहसन बहुत प्रचलित है।'[1] डॉ. महेन्द्र भानावत ने भी इसे मिथिला और भोजपुर क्षेत्रों की महिलाओं का बहुप्रचलित लोकनाट्य माना जाता है।[2]

जट-जटिन पूर्णतया स्त्री-समाज का मनोरंजन है। स्त्रियां ही वेश धरती हैं, गान और नृत्य करती हैं और प्रेक्षक भी स्त्रियां ही होती हैं। पुरुष इस नाटक को नहीं देख सकते। इसमें दाम्पत्य-जीवन का वह मार्मिक पक्ष उभरता है जो न पौराणिक कथाओं में मिलता है, न परम्परागत प्रेमाख्यानों में। इसका आयोजन मुख्य रूप से सावन-भादो में शुक्ल पक्ष की रात को होता है। इसके प्रदर्शन में स्त्री-समाज जट और जटिन के दो वर्गों में विभक्त हो जाता है। एक स्त्री पुरुष-वेश में जट का अभिनय करती है और दूसरी जटिन का। जट का अभिनय करने वाली स्त्री माथे पर पगड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बांधती है तन पर एक बनियाइन तथा नीचे पुरुषों की भांति धोती पहनती है।

इस संगीत-नाट्य के पारम्भ में प्रस्तावना के रूप में सहगान होता है। सहगान के बोल इस प्रकार हैं :

कजरी खेले गइली हे तूत के गली।
झुमका हेरइलें हे, अमरूद के गली।
सासु कहें मार-मार, ननदू करे चुगली।
सैंया जालिम जोर कहें, मारे अंगुली।
कजरी खेले गइली हे तूत के गली।।

मूलकथा जट-जटिन की माताओं के पारस्परिक संवाद से शुरू होती है। जट की माता, जटिन की माँ से अपने पुत्र के विवाह का प्रस्ताव करती है। जटिन की माँ उसकी दलील को काटते हुए प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है। तब जट की माँ जटिन की माँ को धमकी देती है और जब धमकी काम नहीं करती तो, प्रलोभन दिखाती है। अन्ततः किसी प्रकार जटिन की माँ जट से अपनी बेटी का विवाह करने के लिए तैयार होती है।

दूसरा दृश्य विवाह-प्रसंग से शुरू होता है। विवाहोपरान्त गवना प्रसंग आता है। गीति-नाट्य का **तीसरा दृश्य** नवदम्पति-प्रसंग है। ससुराल में जाकर अल्हड़ जटिन को मुग्धा के सहज गुण सिखाये जाते हैं। नैहर के वातावरण से आई नववधू को वधु-सुलभ व्यवहार सिखाया जाता है :

नई के चलि रे जटिनियाँ, नई के चलि रे,
जइसे नवे काँच कइनियाँ, तइसे नवि के चलि रे।

जट-जटिन का **अंतिम दृश्य** अत्यंत हृदयग्राही है। जटिन की फरमाइश पूरी करने जट 'पुरुब' देश को नौकरी करने जाता है। जटिन उसे इस प्रकार से संतुष्ट कर पूरब देश जाने से रोकना चाहती है किन्तु जट चला ही जाता है। वियोग में तड़पती हुई जटिन उसे खोजने निकलती है। रास्ते में सुनार उसे प्रलोभन देकर पथभ्रष्ट करना चाहता है। खोजते-खोजते वह जट को पा जाती है। दोनों घर आते हैं। फिर एक दिन किसी बात पर जटिन रूठकर नैहर चली जाती है। विरहग्रस्त जट नाना प्रकार के वेश धारणकर जटिन की खोज करता है। नाटक के अन्त में, जट, जटिन को मनाकर घर ले आता है और मंगल भावना के साथ खेल समाप्त होता है।

सामा-चकेवा

विहार का प्रसिद्ध पर्व छठ की समाप्ति के वाद कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष में सामा-चकेवा का खेल प्रधानतः कुमारी कन्याओं और नवविवाहित स्त्रियों द्वारा वड़े उत्साहपूर्ण ढंग से किया जाता है। जट-जटिन के समान ही यह पूरा खेल भी गीतों में है। प्रधानतः यह नाट्य-गीत मिथिला क्षेत्र में ही प्रचलित है किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से मिथिला क्षेत्र से प्रभावित होने के कारण भोजपुरीभाषी मोतीहारी जिले में भी इसके अभिनय का प्रचार है।

इस गीति-नाट्य में श्यामा बहन का और चकेवा भाई का प्रतीक है। श्यामा और चकेवा के अतिरिक्त इसमें छह पूरक पात्र भी हैं जो कथा-गति को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे हैं-चुगला, सतभइया, खिड़रिच, बन-तीतर, झोंझी कुत्ता, वृन्दाबन। लड़कियां इन पक्षियों की प्रतिकृति बनाती हैं। कार्तिक में गोधन के दिन बांस से बनी बड़ी-सी डलिया में इन सभी मूर्तियों को रखकर किसी कुएं, मैदान या नदी-किनारे जाती हैं। वहीं विभिन्न मूर्तियों को संबोधित करती हुई कलात्मक ढंग से श्यामा-चकेवा के गीत गाती हैं। सामा-चकेवा के विसर्जन के समय का गीत इस प्रकार है :

सामा हे, चकेवा हे, उड़ि-उड़ि खेत में रहिह हे
ढेंपा फोरि-फोरि खइह हे, ओस पी-पी रहिह हे
हमरा भाई के आसीस दीह हे, अगिला साल फेरि अइह हे।

इस विदाई-गीत के साथ गीति-नाट्य का सरस एवं भावपूर्ण अवस्था में अन्त होता है। इस गीति-नाट्य में वाद्य यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रदर्शन हेतु कोई विशेष रंगस्थली नहीं होती। गांव के बाहर का खेत, मैदान, बागीचा या नदी-किनारा ही इसकी रंगस्थली बन जाता है। अभिनय के लिए कोई अलग से प्रसंग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उभरकर नहीं आता अपितु स्त्रियों के गायन की भंगिमा एवं शारीरिक चेष्टायें ही अभिनय का रूप ले लेती हैं। डलिया में रखी हुई विभिन्न पक्षियों की प्रतिकृतियाँ, कलात्मक ढंग से गीत गानेवाली लड़कियाँ इस प्रदर्शन की पात्र बन जाती हैं। गाते समय लड़कियों के दो दल हो जाते हैं। यों, यह प्रदर्शन अनुष्ठानपरक है। इस प्रकार यह लोकनाट्य गीत, कथा, खेल, अनुष्ठान एवं अभिनय का समन्वित रूप है।

सुगना

पश्चिमी चम्पारण जिले के बगहा क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा झिंझिया नृत्य के साथ सुगना का नृत्य-रूपक भी चलता है। इसका प्रदर्शन नवरात्रि से प्रारम्भ होकर दशहरा के दिन समाप्त होता है। यद्यपि इस नृत्य-रूपक का आयोजन मात्र मनोरंजन के लिए होता है, परन्तु इसका परम्परागत एवं आनुष्ठानिक महत्व भी है। इसके प्रदर्शन में रूप-सज्जा एवं नाटकीय मोड़-जैसी किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। नवरात्रि के प्रथम दिन स्त्रियों द्वारा आँगन के एक भाग में मिट्टी का पहाड़ बनाया जाता है। नवरात्रि की रातों में एक औरत एक छिद्रवाले घड़े को सिर पर रखकर चलती है। उस घड़े में एक दीपक जलता रहता है। वह औरत अपने सिर पर घड़ा रखकर नाटकीय ढंग से मूक अभिनय प्रदर्शित करती हुई नृत्य करती है। उसके नृत्य की अदायगी के साथ सिर पर रखे घड़े के झिलमिल प्रकाश में सुगना इत्यादि पक्षियों के बिम्ब पृथ्वी पर झिलमिलाते रहते हैं। साथ में समूह की अन्य औरतें ढोलक की थाप पर गीत गाती चलती हैं।

निःसंदेह यह गीत और नृत्य-प्रधान नाट्य है। कथावस्तु के नाम पर यहां कुछ विशेष नहीं है। प्रदर्शन के दौरान नाटकीय मोड़ नहीं प्रस्तुत होते। फिर भी ऐसा नहीं कि इसके प्रदर्शन में रोचकता न हो। शरद के शुक्ल पक्ष की मनोहारी रात में युवा स्त्रियों के झुण्ड में जब एक किशोरी आकर्षक एवं नाटकीय ढंग से सिर संचालन करती है और जब सिर पर रखे घड़े के झिलमिल प्रकाश से सुगना इत्यादि पक्षियों के चित्र धरती पर बिम्बित होने लगते हैं तो वह दृश्य देखने योग्य होता है। इसीलिए कथावस्तु के अभाव में गीतात्मक संवादों के न रहते हुए भी यह प्रदर्शन अपनी कलाकारिता एवं प्रदर्शन-क्षमता के कारण स्त्रियों द्वारा अभिनीत होने वाले लोकनाट्यों की परिधि में आ ही जाता है।

हरपरौरी

भोजपुरी क्षेत्र में पावस के दिनों में वर्षा न होने पर औरतों द्वारा हरपरौरी का आयोजन किया जाता है। प्रदर्शन के लिए औरतें गांव की सीमा के बाहर किसी निर्जन स्थान पर एकत्र होती हैं। एक स्त्री नग्न होकर सिर पर साड़ी की पगड़ी बनाकर किसान का अभिनय करती है। दो स्त्रियां नग्न होकर झुककर अगल-बगल चलते बैलों का स्वाँग रचती हैं। नग्न होकर किसान का स्वाँग भरनेवाली स्त्री सचमुच का हल लेकर चलती है और गांव के मुखिया या प्रधान का नाम लेकर चिल्लाती है कि हम लोग प्यासी मर रही हैं और वह पानी नहीं दे रहा है। हल जोतने के स्वाँग की इस सम्पूर्ण क्रिया के साथ गीतों का भी तांता लगा रहता है। प्रदर्शन के पूर्व औरतें काली, डीह और सातों बहिनों की स्तुति करती हैं। बाद में वर्षा के अभाव में किसान की दयनीय स्थिति का परिचय देती हुई ये महिलायें वरुण देव का आह्वान करती हैंः

बरखू हो बरखू बंसवा के खुंटिया लुकइन हो बरखू।
साठी धनवां बोअवली, पनियां के परले अकाल।
लोदवा के पुअरा में तोहर मुंह झंउसों, पनियाँ के डरवे अकाल।

हरपररौरी आयोजित करने की यह परम्परा केवल भोजपुरी क्षेत्र में ही नहीं है बल्कि लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित है। सर जेम्स फ्रेजर ने दि गोल्डेन बाउ नामक अपने ग्रन्थ में अनावृष्टि होने पर नग्न स्त्री द्वारा हल जोतने तथा तमाम प्रकार के स्वाँग भरने की प्रथा का उल्लेख किया है।[3] कहीं-कहीं औरतें इसमें कठघोड़वा का खेल भी प्रस्तुत करती हैं। सिर पर पगड़ी, बदन पर कुर्त्ता, पायजामा पहन, पैर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काठ की चटाकी, काठ के घोड़े की कमर में डालकर सारे गाँव में घुड़दौड़ लगाती हैं तथा मिट्टी के बर्तन म गंदी मिट्टी भरकर किसी सोये हुए व्यक्ति के ऊपर फेंकती हैं।

गवनिहारिन की नाच

भोजपुरी क्षेत्र के विभिन्न अंचलों में इसके विभिन्न नाम मिलते हैं। कहीं इसे **खटकिन की नाच**, कहीं इसे **मिरियासिन की नाच**, कहीं **गीतगवनी की नाच**, कहीं **भांटिन की नाच** और कहीं-कहीं गवनिहारिन की नाच कहते हैं। जैसे पुरुषों में भांड़ के नाच की लोकप्रियता है वैसे ही स्त्रियों द्वारा प्रदर्शित गवनिहारिन के नाच की लोकप्रियता रही हैं। प्रदर्शन के समय स्त्रियां बहुत शोरगुल, गाली-गलौज करती है। गवनिहारिनें, विवाह या पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर नेग प्राप्त करने के लिए अपना प्रदर्शन करती हैं। अपने प्रदर्शन में ये गीत, नृत्य और छोटे-छोट रूपक स्वांग बनाकर प्रस्तुत करती हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले स्वांगों में **बिच्छू मारने का स्वाँग**, **बच्चा पैदा होने की नकल**, **साधू की नकल**, **गोदनिहारिन की नकल** प्रमुख हैं। 'बिच्छू मारने की नकल' उतारते समय दर्द से तड़पती हुई अपनी मण्डली के बीच यह गीत गाती है -

अरे रामा, रामा हो रामा।
अरे हमरे अंगूठा चढ़ल, बिछुआ आइल हो रामा
रामा हो रामा
अरे हमरे ठेहुनी चढ़ल, बिछुआ आइल हो रामा
रामा हो रामा

इस प्रकार गाते हुए वह अपने शरीर पर जमीन पर पटकने लगती है, और कहती है-

अरे हमरे सगरे शरीरिया बिछुआ आइल हो रामा
रामा हो रामा।

इसी प्रकार कलात्मक ढंग से बच्चे के पैदा होने का स्वाँग भी प्रस्तुत किया जाता है। गर्भिणी स्त्री की नकल उतारने वाली गवनिहारिन क्रमिक रूप से नवों महीनों की दास्तान पेश करती है। हर महीने के वर्णन पर दूसरा वर्ग **'वाह! वाह जी, वाह-वाह!'** की पंक्ति लय और अदाकारी के साथ दुहराता है।

कभी-कभी गवनिहारिनें अपना प्रदर्शन सारी-सारी रात करती हैं। गवनिहारिनों द्वारा प्रस्तुत किये गये इन प्रदर्शनों से दर्शकों का मनोरंजन अवश्य होता है किन्तु इनका स्वाँग एवं प्रदर्शन-पद्धति इतनी अश्लील, श्रृंगारिक एवं हास्यपूर्ण होती है कि शिष्ट समाज इनको देखना पसंद नहीं करता है। इस नाच की प्रथा अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। केवल काशी में आज भी गवनिहारिनों के दल हैं।

भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियों द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले ये सभी लोकनाट्य मौखिक हैं। फिर भी रंग-संकेतों से विहीन संवाद कहीं गीत-संग्रहों के रूप में, कहीं मौखिक रूप में विखरे पड़े हैं। भाषा क्षेत्रीय या स्थानीय है। इसलिए इन लोकनाट्यों का साहित्यिक मूल्यांकन उन तुलनात्मक पद्धति से नहीं किया जा सकता जो अन्य परम्परागत नाट्यों के लिए किया जाता है। आज पाश्चात्य शिक्षा और फिल्मों से प्रभावित भोजपुरी क्षेत्र की महिलायें भी इन प्रदर्शनों में रुचि नहीं दिखा रही हैं। परिणामस्वरूप परम्परा से चली आ रही हमारी यह लोकनाट्य-कला नष्ट होती जा रही है। इन लोकनाट्यों की सुरक्षा आज की अनिवार्य आवश्यकता है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और संस्कार द्वारा ही न केवल उस परम्परा को आगे बढ़ाया जा सकता है बल्कि अपने युग के सृजन-कार्य को भी हम एक महत्वपूर्ण आयाम और गहराई दे सकते हैं। रंगमंच के विकास के मौजूदा दौर में हमे लोकनाट्य की ओर उन्मुख होने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उनके प्रति एक स्वस्थ और दायित्वपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की भी है तभी हमारे प्रयत्न सार्थक और सफल हो सकेंगे। ☐

(साभार : छायानट, अंक-19, अक्टूबर-दिसम्बर 1981)

सन्दर्भ :

1. लोकधर्मी नाट्य-परम्परा : डॉ. श्याम परमार, पृ. 78
2. लोकनाट्य-परम्परा और प्रवृत्तियां : डॉ. महेन्द्र भानावत, पृ. 215
3. दि गोल्डेन बाउ : सर जेम्स फ्रेजर, पृ. 191

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्नीसवां भारत रंग महोत्सव-रानावि के पतन का दौर(?)

● अनिल गोयल

पिछले अठारह-उन्नीस वर्षों में पहली बार किसी भारत रंग महोत्सव (भारंगम) का प्रारंभ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (रानावि) और प्रेस के बीच इतने अधिक अविश्वास के साथ हुआ। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा सन 1999 में प्रारंभ किये गए इस वार्षिक समारोह में इन वर्षों में अनेक ऊँचे-नीचे सोपान आये हैं। प्रेस और रानावि के निदेशकों व अध्यक्षों के बीच तीखी नोंक-झोंक एक बड़ी आम बात रही है, जिसकी बहुत सी खट्टी-मीठी यादें पत्रकारों के साथ-साथ रानावि के भूतपूर्व निदेशकों व अध्यक्षों के मस्तिष्क में भी अभी तक बनी हुई है। बीता समय हर चीज को एक मधुर याद में ढाल देने की अद्भुत क्षमता रखता है। रानावि की कार्यप्रणाली पर प्रश्न उठाना पत्रकार अपना अधिकार समझते आये हैं, और रानावि के द्वारा पत्रकारों के इस अधिकार का हमेशा सम्मान होता रहा है। लेकिन इन प्रश्नों व आक्षेपों के कारण रानावि का प्रशासन पुराने व वरिष्ठ पत्रकारों, आलोचकों व समीक्षकों का भारंगम की विभिन्न प्रस्तुतियों में प्रवेश बाधित या नियंत्रित करे, ऐसा कभी नहीं हुआ है। इतने वर्षों में हर प्रेक्षागृह में दो पंक्तियाँ सुरक्षित कर देने और पत्रकारों को खुला प्रेस कार्ड देने से लेकर पत्रकारों के प्रेक्षागृह में प्रवेश के अनेक प्रकार के प्रयोग किये गए हैं। समस्याओं का रानावि के प्रेस अधिकारी या निदेशक के साथ बातचीत करके हल ढूंढ लिया गया है। परन्तु पुराने व वरिष्ठ आलोचकों व समीक्षकों को अपमानजनक तरीके से प्रेक्षागृह के दरवाजे पर आने के बाद प्रवेश की 'अनुमति' देने का काम करके दूसरे वर्ष लगातार पत्रकारों को उनका व्यावसायिक कर्तव्य निभाने से रोकने का प्रयत्न किया गया-यह प्रयास पहली बार पिछले वर्ष हुआ था। रानावि के प्रेस अधिकारी ने निदेशक के कहने के बावजूद भी कोई रास्ता निकालने के सभी प्रयास असफल कर दिए। यहाँ तक कि रानावि के निदेशक ने अपने कार्यालय में आये पत्रकारों के साथ मिलने या बातचीत करने से भी स्पष्ट इन्कार कर दिया, जबकि पहले इन निदेशक महोदय ने इस समस्या को दूर करने का वायदा किया था।

अन्य पत्रकारों व आलोचकों के साथ-साथ इन पंक्तियों के लेखक की भी रानावि के पिछले सभी निदेशकों, अध्यक्षों इत्यादि के साथ अनेक बार तीखी

अवधी रामलीला

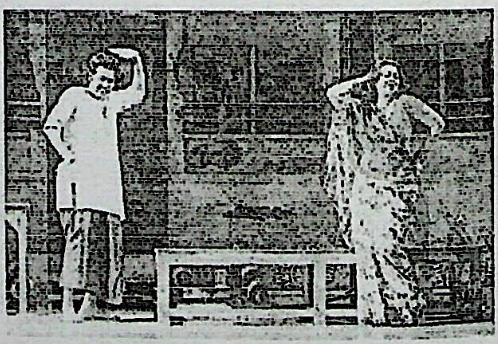

आद्यो शेष रजनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

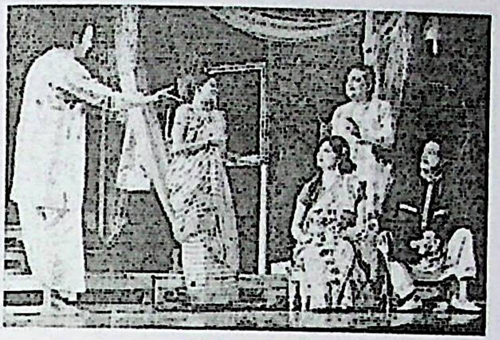

नटी किरणशशि

चित्रांगदा

झड़पें तक भी होती रही हैं वहीं दूसरी ओर रानावि के पत्रकार सम्मलेन, उनकी अपनी स्वीकारोक्ति के अनुसार, पत्रकारों व रानावि के निदेशकों, दोनों के ही लिए काफी शिक्षाप्रद भी रहे हैं इसके प्रमाण पिछले पत्रकार सम्मलेनों की रिकॉर्डिंग्स में मौजूद हैं। ये निदेशक प्रेस-कांफ्रेंस के बाद चाय पर व्यक्तिगत बातचीत में पत्रकारों से उनकी तीखी टिप्पणियों और टेढ़े प्रश्नों की शिकायत भी करते रहे हैं। लेकिन उनके द्वारा कभी भी पत्रकारों के अपना व्यावसायिक कर्तव्य निभाने के काम में अड़चनें नहीं खड़ी की गई हैं। रानावि के वर्तमान निदेशक वामन केंद्र के समय में पहली बार पत्रकारों को उनका काम करने से रोकने की चेष्टा की गई है। व्यावसायिकता के निचले स्तर का यह आलम था, कि इतना बड़ा 'अंतर्राष्ट्रीय' महोत्सव शुरू होने से मात्र चार दिन पहले तक भी, इसकी प्रेस कांफ्रेंस में महोत्सव के नाटकों की सूची तक भी तैयार नहीं थी और जब निदेशक ने अपने संबोधन में जनसंपर्क अधिकारी की प्रशंसा नहीं की, तो उन्होंने धन्यवाद् ज्ञापन में अपनी तारीफ खुद ही कर डाली! नाटकों के ऑनलाइन सीधे प्रसारण जैसी ऊँची तकनीकों का प्रयोग करने वाला रानावि यदि 'अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव' से कुल चार दिन पहले नाटकों की सूची पत्रकारों तक को नहीं दे सकता, तो व्यावसायिकता की क्या आशा की जा सकती है, जबकि लाखों रुपया खर्च करके एक बाहरी जनसंपर्क एजेंसी को भी लगाया गया है! (ऑनलाइन सीधे प्रसारण का सबसे ज्यादा फायदा रानावि के निदेशक वामन केंद्र को ही मिला, जिनके दोनों नाटकों का ऑनलाइन सीधा प्रसारण किया गया!) और यही जनसंपर्क अधिकारी प्रेस को चयन समिति के सदस्यों की सूची तक भी उपलब्ध कराने से इन्कार कर देते हैं!

भारंगम अब एक वार्षिक औपचारिकता निभाने का अत्यंत खर्चीला अनुष्ठान भर बन कर रह गया है. 'डिजाईन' के नाम पर जो कुछ भी कर दिया जाये, रानावि में उसे उचित ठहराया जा सकता है। और आजकल का नारा है, 'भरो, और भरो, ठूंस-ठूंस कर भरो'। रानावि की बाहरी बाऊंड्री वाल को भी आठ-नौ फीट ऊँचे भद्दे फ्लेक्स से ढक दिया गया। ठूंस-ठूंस कर भरने से सुन्दरता नहीं, बल्कि भौंडापन आता है, यह उन्हें क्या समझाया जाये, जिनके लिए अश्लील गालियाँ और भौंडे अंग-संचालन ही 'अच्छे' नाटक का पर्याय बन चुके हैं। उत्सव का थीम 'महाराजा का महल' बनाने से ज्यादा ठूंसने का काम और आसान हो गया। मुंबई से फिल्मों के एक कला निर्देशक (आर्ट डायरेक्टर) को बुला कर कुछ गुम्बद, मूर्तियाँ, चाप या मेहराब, खम्बों की कतारें बनवा लीजिये, सभी कार्यालयों के दरवाजों पर रेशम के लम्बे-लम्बे परदे लटकवा दीजिये, बस, हो गया! खर्चा भी खूब होगा, कला निर्देशक के नाम से प्रमाणिकता भी आ जाएगी, और क्या चाहिए!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारंगम के नाटक

किसी बड़े उत्सव में आलोचकों व समीक्षकों के सामने उत्सव में देखे गए विभिन्न नाटकों को देख कर अपने मन में बने भावों व चित्रों को स्पष्टता के साथ संजो कर रख पाना एक बड़ी समस्या होती है। यदि इक्कीस दिनों तक लगातार आप रोज तीन-चार नाटक देख रहे हैं, जिसमें कभी कभी चार-पांच नाटक देख लेना भी शामिल है, तो किसी से भी पूर्ण सुसंगतता व सुसम्बद्धता की अपेक्षा करना शायद ज्यादती ही होगी. कुछ नाटक अधूरे भी देखे जाते हैं, उनके प्रारंभ या अंत का कुछ हिस्सा छोड़ना पड़ जाता है। लेकिन उत्सव में अधिक से अधिक नाटक देखना आलोचकों व समीक्षकों की मजबूरी होती है। किसी उत्सव में किसी एक नाटक विशेष की अपेक्षा पूरे उत्सव में बुलाये गए नाटकों के पीछे आयोजकों की क्या दृष्टि रही, यह अधिक महत्वपूर्ण होता है।

उस दृष्टि से इस भारंगम में दृष्टि में लगातार परिवर्तन नजर आता है। नाटकों के चुनाव में चयनकर्ताओं की व्यक्तिगत रुचियाँ व पसंद-नापसंद अपनी भूमिका निभाती ही हैं, परन्तु आयोजकों की अपेक्षाओं का ध्यान भी चयन-कर्ताओं को रखना ही पड़ता है। 2017 के भारंगम में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ। हमेशा के समान ही उत्सव की लगभग चौरानबे प्रस्तुतियों में से चौदह तो विदेशी प्रस्तुतियां थीं। लेकिन गुजरात के मानभट आख्यान, उड़ीसा के मुगल तमाशा, मणिपुर की होली, बंगाल के अल्कप, महाराष्ट्र के दशावतार, कर्नाटक के ताल मदलम (यक्षगान), उत्तर प्रदेश की अवधी रामलीला, कश्मीर के भांड पथेर, छत्तीसगढ़ के नाचा और राजस्थान के तुर्रा कलंगी जैसी दस लोक-प्रस्तुतियां, और भारत के अनेक राज्यों से उन्नीस अन्य प्राचीन भारतीय संस्कृत क्लासिक व पौराणिक तथा लोक व पारंपरिक आख्यानों/कथाओं/नाटकों की प्रस्तुति शामिल करके भारंगम में पश्चिमी नाटक व रंगमंच के सार्वभौम वर्चस्व को कम तो किया गया है। भारंगम प्रारंभ से ही आधुनिक पश्चिमी रंगमंचीय नाटकों से आक्रान्त रहा है, और भारत के कोने-कोने में फैली विभिन्न शास्त्रीय, लोक व पारंपरिक परम्पराओं की उपेक्षा की बात पहले भारंगम के समय से ही उठाई जाती रही है। आयोजकों की सोच में इस प्रकार का परिवर्तन बदलते समय में कुछ नई दिशा की ओर को इंगित करता है, हालाँकि ये गिनी-चुनी प्रस्तुतियां भारतीय रंगमंचीय शैलियों की शोचनीय दशा में कोई बड़ा क्रांन्तिकारी परिवर्तन ला सकेंगी, ऐसी किसी संभावना से तो स्पष्ट इन्कार ही किया जाना चाहिए, क्योंकि संख्या की दृष्टि से देखें, तो अब भी ये प्रस्तुतियां कुल प्रदर्शित नाटकों का मात्र तीस प्रतिशत ही बैठती हैं! आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, पुदुच्चेरी, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, झारखण्ड, सिक्किम, असम, त्रिपुरा, मेघालय, अरुणाचल, मिजोरम, नागालैंड, अंडमान, लक्षद्वीप, दमन और दिऊ, चंडीगढ़ को छोड़ कर भारत के पैंतीस में से पंद्रह राज्यों की लोक-कलाओं का कोई प्रतिनिधित्व इस

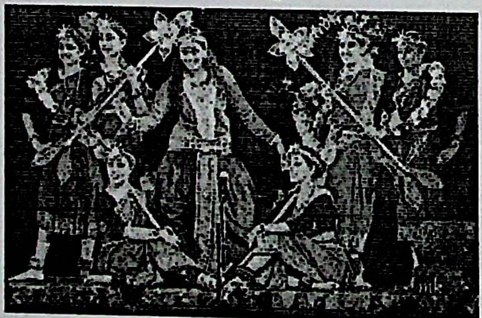

चित्रा-1

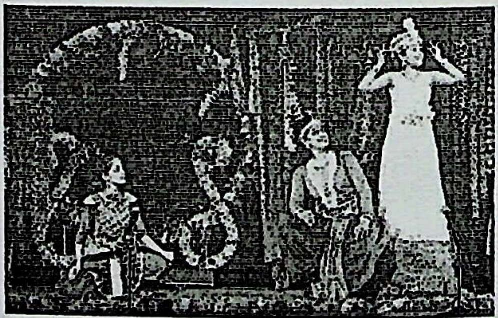

चित्रा-2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

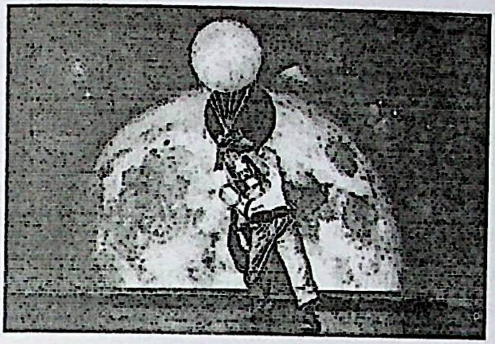

हंस फाल

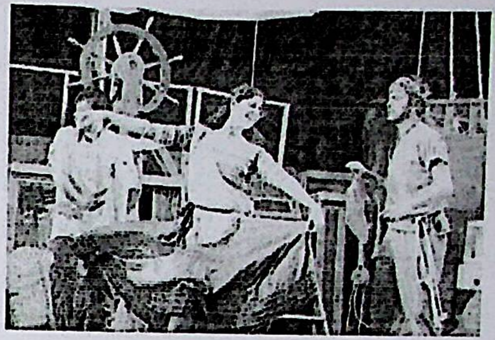

समुद्र मंथन

उत्सव में नहीं था। दिल्ली की भी अपनी कोई लोककला इसमें नहीं थी। पारसी और नौटंकी के दिल्ली के अपने ग्रुप्स तो आज भी यहाँ सक्रिय हैं। कच्ची घोड़ी, किस्सा-गोई, डांडिया जैसी कई अन्य स्थानीय परम्पराएँ भी यहाँ रही हैं। अर्थात, आधा भारत तो पूर्णतया गायब था। प्रेस-कांफ्रेंस में कहा भी गया था, कि लोक-कलाओं के लिए 'विंडो' यानि कि खिड़की खोली गई है दरवाजा तो अब भी पश्चिमी नाटक के ही लिए खुला है। यदि रानावि के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, निदेशक, प्रोफेसर इत्यादि अपने नाटकों, तथा उनके माध्यम से अपने परिवार के लोगों को प्रस्तुत करने का मोह छोड़ पाते, तो शायद भारत की कुछ और लोक व पारंपरिक शैलियों के दर्शन हम कर सकते थे। केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी में युवाओं के लिए बनाये गए उस्ताद बिस्मिल्लाह खां युवा पुरस्कार के दिशा-निर्देशों में अकादेमी के सदस्यों को इस पुरस्कार के देने पर निषेध है। पुरस्कार, और उत्सव में नाटक के शामिल किये जाने में काफी अंतर है, परन्तु प्रश्न आत्म-संवरण का, और निष्पक्ष होने और निष्पक्ष दिखने का भी है। रानावि अधिकारी तथा चयनकर्ता अपने को ही कैसे चुन सकते हैं? और वो भी अपने ही एक से ज्यादा नाटक रख कर?

इसके अतिरिक्त, भांड पाथेर, मणिपुरी होली, यक्षगान, बिदेसिया, तमाशा जैसी विधाओं को दिल्ली के लोग अनेक बार देख कर इनसे परिचित हो चुके हैं। रानावि यदि यह कह कर अपना पीछा छुड़ाना चाहे, कि हम तो उसी में से चुनेंगे जो हमारे पास आएगा, तो फिर इस विद्यालय के इस उत्सव को करने का औचित्य ही समाप्त हो जाता है, और इसे 'भारत' रंग महोत्सव कहना ही अनुचित होगा! और यदि नाटकों को अपने आप ढूँढने और उन्हें किसी महोत्सव में लाने की जिम्मेवारी संगीत नाटक अकादेमी और क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्रों की है, तो फिर इस उत्सव को उन्हीं को आयोजित करने दिया जाये, रानावि विद्यार्थियों को नाटक पढ़ाने के अपने मूल काम पर ही ध्यान केन्द्रित करे। मध्यम व्यायोग जैसे अनेक बार देखे गए एक ही नाटक को संस्कृत और हिंदी में अलग-अलग करने का क्या औचित्य था? क्या केवल अपने रंग-समूह व अपने पुत्र को बढ़ावा देने के लिए? निदेशक की पत्नी के दिल्ली आने-जाने के खर्चे के विषय पर भी अतीत में प्रश्न उठ चुके हैं। वास्तव में, रानावि परिवारवाद, बैच-वाद, आभिजात्यवाद, अति समृद्धि इत्यादि का शिकार हो चुका है। परिवारवाद के आरोप पिछले वर्ष भारंगम में भी लगे थे, इस बार फिर वही हुआ है। वरिष्ठ पत्रकार भ्रष्टाचार के तीखे इल्जाम लगातार रानावि पर लगाते रहे हैं (जो पहले कभी नहीं लगे), जिनका रानावि की ओर से कभी कोई आधिकारिक उत्तर नहीं आता। क्या मंत्रालय खामोश बैठा देखता रहेगा, और भारंगम के चयनकर्ता इसी प्रकार अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, निदेशक, फैकल्टी और उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिवार के लोगों के ही नाटकों का चयन करते रहेंगे? ऐसे में भारंगम के चयनकर्ताओं की निष्पक्षता पर ही प्रश्न खड़े होना स्वाभाविक है और एक समारोह जो अपने को अंग्रेजी में 'इंटरनेशनल थिएटर फेस्टिवल ऑफ इंडिया' कहता है, उसके नाटकों के चयन की पूरी प्रक्रिया ही अगर शक के घेरे में खड़ी हो जाये, तो इस उत्सव (या फेस्टिवल?) की विश्वसनीयता क्या रह जाएगी? क्या भारत की जनता का करोड़ों रुपया क्या इस प्रकार के गैर-विश्वसनीय उत्सव पर खर्च किया जाना चाहिए? क्या इसीलिए आज उन्नीस वर्ष बीत जाने के बाद भी इस उत्सव की अपनी कोई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पहचान नहीं बन सकी है, जहाँ एक-दूसरे के उत्सवों में नाटक भेजने के विषय पर चीन के साथ समझौता ज्ञापन (मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग) होने के बावजूद चीन ने अपना नाटक नहीं भेजा, और इस विषय पर रानावि निदेशक वामन केंद्रे ने यह कह कर छुटकारा पा लिया, कि अगर वे लोग अपना नाटक नहीं भेजते, तो इस में हम क्या कर सकते हैं? इसी आभिजात्यवाद के चलते दिल्ली के वरिष्ठतम नाट्य-चिंतकों, आलोचकों, समीक्षकों के साथ-साथ रानावि के अपने ही भूतपूर्व स्नातकों, भूतपूर्व निदेशकों आदि ने भी इस उत्सव से दूरी बना ली है। थिएटर व्यक्तित्व को गढ़ता है, उसे विकृत नहीं करता। पद, पैसा, सत्ता का मद इनके आ जाने पर तो यही लगता है कि रंगमंच जो संवेदनशीलता देता है, उससे आप अछूते रह गए।

अंतर्राष्ट्रीय नाटक :

समारोह में आए अंतर्राष्ट्रीय नाटकों में से ज्यादातर ने दर्शकों को प्रभावित नहीं किया। चौदह में से तीन नाटक तो न०न-वर्बल थे। 10 फरवरी को प्रस्तुत किया गया ब्रिटिश नाटक 'दी अनपैरेलल्ड एडवेंचर्स ऑफ वन हंस फॉल' एक उत्कृष्ट प्रस्तुति थी। एडगर एलन पो लिखित इस कथा की इस एकल प्रस्तुति में प्रकाश, ध्वनि, मल्टी-मीडिया प्रोजेक्शन और गति को इतने कल्पनाशील तरीके से दर्शाया गया कि दर्शक चकित होकर देखते रह गए। रूसी नाटक 'चेखव चाईका' (मुर्गाबी) ने भी प्रस्तुतीकरण के अपने अलग अंदाज से दर्शकों को कुछ नया देखने का अवसर प्रदान किया। श्रीलंकाई नाटक 'लव एंड लाइफ' में निर्देशक एस आई समराक्कोडी ने विना संवादों के, केवल मुखौटों की सहायता से कथानक का सम्प्रेषण करके जिस प्रकार दर्शकों के साथ संवाद स्थापित किया, वह अद्भुत था। यूनिवर्सिटी ऑफ विजुअल एंड परफोर्मिंग आर्ट्स, कोलम्बो के विद्यार्थियों की तरह ही हमारे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थी भी ऐसी कोई कल्पनाशील, रचनात्मक प्रस्तुति दे पाते। रोमानियाई नाटक 'दी कर्नल एंड दी बर्ड', इस्राइली नाटक 'ए स्ट्रेंजर गेस्ट', अफगानी नाटक 'स्टेच्युज', इतालवी नाटक 'देसिदेरा', बंगलादेशी नाटक 'प्रथम पार्थ', नेपाली नाटक 'ऐना इन दी ट्रॉपिक्स',

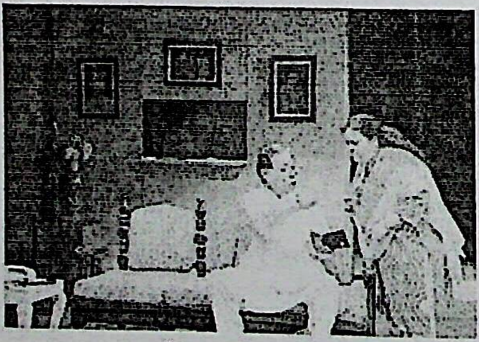

वेलकम ज़िन्दगी

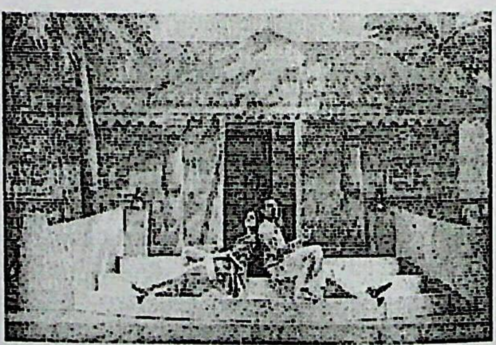

लॉरेटा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

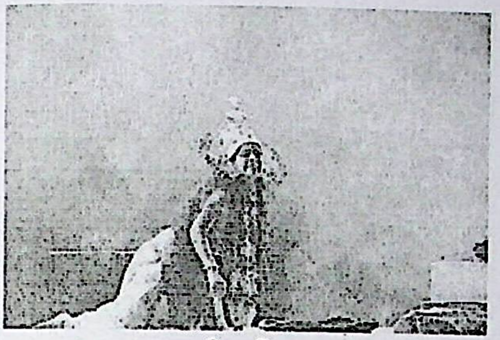

राम की शक्ति पूजा

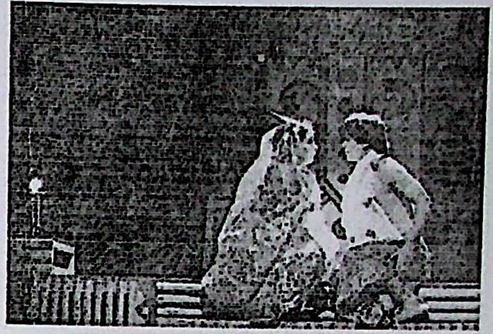

मानस मंगल

तुर्की नाटक 'दी ड्रीम ऑफ दी फिनिक्स', श्रीलंकाई नाटक 'राजा मन वाहला', मलेशिया की एकल प्रस्तुति 'पुटेरी सादोंग', ताजीकिस्तान की प्रस्तुति 'फूल्स कोर्ट' तथा नेपाल की एक और प्रस्तुति 'सुनकेशरी' भी अंतर्राष्ट्रीय प्रस्तुतियों का हिस्सा रहीं।

भारतीय प्रस्तुतियां :

भारतीय प्रस्तुतियों में अनुरूपा राय का आधुनिक कठपुतली शैली में 'महाभारत' एक आकर्षक प्रयोग था। एकाधिक नृत्य-नाटिकाओं का अवलोकन एक सुखद अनुभव रहा। गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर की नृत्य-नाटिका 'चित्र', और उनसे प्रभावित रंजना गौहर की नृत्य-नाटिका 'चित्रांगदा', यक्षगान तथा आधुनिक रंगमंच शैलियों के मिश्रण से बनाई नृत्य-नाटिका 'अक्षयाम्बरा', सोनल मानसिंह की नृत्य-नाटिका 'नाट्य कथा कृष्ण', गुजरात के अफ्रीकी मूल के निविासियों की लोक-शैली सिद्दी गोमा पर आधारित शेक्सपियर के नाटक मिडसमर नाइट्स ड्रीम की बंगाली प्रस्तुति नृत्य-नाटिका 'फागुन रातेर गौप्पो', बंगाल की ही एक और प्रस्तुति 'पांचजन्य', वहीं के नंदीपट की एक लोककथा सती बहुला पर आधारित प्रस्तुति 'मानसा मंगल' इत्यादि ने भारतीय लोक व पारंपरिक नाट्य-शैलियों व नृत्य-नाटिकाओं के भुला दिये गए अतीत के दर्शन करवाए। दिल्ली में नृत्य-नाटिकाओं का एक दौर पचास और साठ के दशकों में रहा, जब शीला भाटिया और आर जी आनंद ऐसी नृत्य-नाटिकाएँ दिल्ली में करते रहे। उनके बाद यह दौर समाप्त हो गया, जबकि एन एस डी, और उनसे होड़ लेने को उतावले अन्य रंगकर्मियों में पश्चिमी नाटक को ही आधुनिकता का पर्याय मान कर समस्त भारतीय रंग-परंपरा को नकारने की जैसे होड़ सी लग गई थी। इक्का-दुक्का प्रयोग होते रहे, परन्तु उनका कोई खास प्रभाव नहीं रहा। बंगाल में वह परंपरा एक समानांतर धारा के रूप में अब भी विद्यमान है, जिसके दर्शन यहाँ हुए। कथा श्रृंखला में मध्य प्रदेश की गोंड चित्रकला, ओडिशा के पट्टचित्र और उत्तर प्रदेश के मर्सिया इत्यादि के भी प्रदर्शन हुए। हां, एक चीज जो समझ में नहीं आई सोनल मानसिंह 'थिएटर ल्युमिनरी' (रंगमंच की तारिका) कब बन गईं? भारतवासी तो उन्हें उत्कृष्ट नृत्यांगना के रूप में ही पहचानते हैं... गूगल के जमाने में इतने सम्मानित, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकार के बारे में भी जानकारी न होना रानावि के किस उच्च व्यावसायिक स्तर का परिचायक हो सकता है? बाकी नामों में भी अब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने 'ल्युमिनरी' शब्द की अपनी परिभाषा गढ़ ली है, वह कितनी मान्य होगी, इसे तो समय ही तय करेगा।

अन्य श्रेष्ठ नाटकों में उत्तम नाटक रहा युवा निर्देशिका अदिति देसाई के निर्देशन में खेला गया गुजरात की आर जे देवकी भरत दवे द्वारा लिखित गुजराती नाटक 'समुद्र मंथन'। कमानी के विशाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंच का पूरा उपयोग यदि कोई नाटक पूरी तरह कर पाया, तो यह नाटक...पानी के जहाज का इतना ऑथेंटिक सेट अदिति ने मंच पर लगाया, कि दर्शकों को लगा जैसे वे सचमुच पानी के जहाज पर यात्रा कर रहे हैं। गुजरात में कच्छ के मांडवी क्षेत्र में समुद्र-तट पर बसे और समुद्री जीवन से जुड़े खारवा समुदाय की एक सच्ची घटना पर आधारित यह नाटक प्रेम, आशा, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि के इतने रंग मंच के ऊपर बिखेरता है कि मंच और दर्शकों के बीच की तमाम दूरियां समाप्त हो जाती हैं।

इसी प्रकार स्वर्गीय प्रेम मटियानी निर्देशित रांगेय राघव और जयशंकर प्रसाद की दो कहानियों पर आधारित नाटक 'गदल गुंडा' उनके कसे हुए अंदाज की छाप लिए हुए था, जिसमें पुराने वक्तों की छीजती पीढ़ी के सशक्त, उर्जावान अभिनय की झलक हेमा सिंह के अभिनय में स्पष्ट नजर आई। गोविन्द पाण्डेय के प्रभावशाली अभिनय ने बनारस के गुंडे को मंच पर जीवंत कर दिया। सुरेश भारद्वाज निर्देशित सौम्य जोशी का नाटक 'वेलकम जिन्दगी' एक मध्यम-वर्गीय परिवार के दिन-प्रतिदिन के जीवन की गतिविधियों के बीच आपसी संबंधों में पैदा होते छोटे-मोटे तनावों, और उसमें घर की गृहिणी की एक महत्वपूर्ण भूमिका को बहुत सफलता के साथ बिना किसी नारेबाजी या निरर्थक आदर्शवाद के बड़े सकारात्मक तरीके से दिखाता है। सत्यब्रत राउत द्वारा लिखित व निर्देशित विश्व-विख्यात डच चित्रकार विन्सेंट वैन गॉग के जीवन पर आधारित 'तुम्हारा विन्सेंट' मंच पर प्रदर्शित एक बड़े जीवन-चित्र के समान था। हमारे यहाँ कलाकारों के जीवन पर आधारित नाटक, फिल्म इत्यादि बनाने का प्रचलन बहुत कम है। इस नाटक ने वह कमी दूर करने का प्रयास किया है। सुनील शानबाग निर्देशित 'लोरेटा' गोवा की पारंपरिक 'कोंकणी तिआत्र' शैली पर आधारित प्रस्तुति थी। संगीत और नृत्य से भरी यह शैली वहां के जीवन की आनंदकारी उर्जा से भरी है। सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि इसे इसके अपने विशुद्ध प्रमाणिक मूल स्वरुप में ही प्रस्तुत किया गया।

निराशा का मंजर :

दूसरी ओर, कई बड़े नामों ने बहुत निराश किया। वामन केंद्र निर्देशित 'मोहे पिया' तकनीकी रूप से सशक्त बनाने के प्रयत्न में नकलीपन का शिकार हो गया। महाकवि भास के नाटक 'माध्यम व्यायोग' को 'आधुनिक' बनाने के चक्कर में नाटक त्रिम बन कर 'न घर का रहा न घाट का'। एस एम अजहर आलम निर्देशित 'गैंडा' भी तकनीकी रूप से सशक्त बनाने के प्रयत्न का ही शिकार हुआ। अर्जुन देव चारण द्वारा लिखित एवं निर्देशित नाटक 'धरमजुद्ध' की समस्या उस नाटक की एकांगी दृष्टि थी, जहाँ किसी एक ओर तमाम कमियां ही कमियां नजर आती हैं, और हिंदी रंगकर्मियों में यह 'अन्धविश्वास' है कि उनका नाटक इन कमियों और समाज की कुरीतियों को समाप्त करने में कामयाब होगा। रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा सन 1930 के आसपास बघेली भाषा में लिखे गए नाटक 'आनंद रघुनन्दन' के निर्देशक संजय उपाध्याय एक बहुत सशक्त, कल्पनाशील नाट्य-निर्देशक हैं। संगीत की उनकी समझ अद्वितीय है। उनका यह नाटक एक सशक्त प्रयोग है, परन्तु वह भी डिजाईन की अधिकता का शिकार हुआ। रानावि से प्रशिक्षित लोग हर चीज को प्रतीकात्मक रूप में ही दिखाने की मानसिक मज़बूरी से बाहर क्यों नहीं निकल पाते, मुझे कभी समझ नहीं आया। प्रोडक्शन पर लाखों रुपये खर्च करने, लाइट्स में जरूरत से ज्यादा रंगीन फिल्टर का इस्तेमाल करने, मुकुट, परिधान, धनुष-भंग में अत्यंत सुसज्जित, विशालकाय धनुष का प्रयोग करने वाले ये निर्देशक राम और लक्ष्मण के हाथों में धनुष-बाण की जगह दो नन्ही-नन्ही सी डंडियाँ थमा कर इन चरित्रों को हास्यास्पद क्यों बना देते हैं? बंगाल के रंगकर्मी नाटक में कृत्रिमता नहीं लाते चाय पीनी है, तो गिलास में असली 'चाय' पियेंगे, न कि खाली गिलास से चाय पीने का कृत्रिम अभिनय करेंगे। अर्जुनदेव चारण ने भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने अन्यथा भव्य नाटक में पूजा की थाली की जगह प्रतीकात्मक रूप से हाथों से ही आरती करवा कर काम चला लिया था। बहरुल इस्लाम द्वारा किये गए चेखव के नाटक 'हंसिनी' (सीगल) के लिए कमानी का मंच बहुत बड़ा था, अक्सर मंच का ज्यादातर हिस्सा खाली नजर आता था। कलाकारों को लम्बी दूरियां तय करनी पड़ रही थीं, जो अभिनय में रिक्तता उत्पन्न कर रही थीं। 'सीगल' की ही रूसी प्रस्तुति नाटक 'चेखव चेका' एक विदेशी भाषा में होने पर भी आनंद दे रहा था, जबकि यह नाटक दर्शकों को एक बार भी बाँध नहीं पाया। फणीश्वर नाथ रेणु के विख्यात उपन्यास 'मैला आँचल' की सुरेन्द्र शर्मा द्वारा दी गई प्रस्तुति भी दर्शकों तक अपनी बात पहुँचाने में असफल रही। रानावि से प्रशिक्षित लोगों को क्यों किसी भी नाटक में इम्प्रोवाइजशन करना ही होता है? क्यों वे क्लासिक्स को उनकी पूर्ण विशुद्धता में प्रस्तुत करने में अक्षम हैं? आजकल दर्शक नाटक से ऊब जाने पर हॉल से बाहर नहीं जाते, बल्कि मोबाइल पर व्हाट्सैप चला लेते हैं! और दर्शकों का यह व्हाट्सैप निर्देशक को नजर आ सकता है, अगर वह हॉल में या लाइटिंग बूथ में है तो!

नाटक की प्रोडक्शन में भव्यता, कल्पनाशीलता, सुरुचिपूर्ण कलात्मकता, सौन्दर्यात्मकता व लाइट्स का कल्पनाशील प्रयोग सीखने के लिए बंगाली, असमी, उड़िया निर्देशकों के नाटक देखना आवश्यक है। 'पासिंग शो', 'हंसिनी', 'चित्रांगदा', 'चित्रा' (उडुपी, कर्नाटक), 'प्रथम पार्थ' (बांग्लादेश), 'तुम्हारा विन्सेंट' इत्यादि कितने ही नाटक इसका उदाहरण थे। पहले भी श्यामानंद जालान तथा और कितने ही पूर्वी भारत के नाट्य-निर्देशकों के नाटकों में उत्कृष्ट 'प्रोडक्शन वैल्यूज' की यह बात नजर आती रही है।

निराशा का एक कारण भारतवर्ष के ज्यादातर हिस्सों को छोड़ देने के कारण भी था, जिसका जिक्र लोक-शैलियों के सन्दर्भ में किया जा चुका है। सिर्फ कोलकता (बंगाल) से तेरह नाटक थे, रानावि अध्यक्ष रतन थियम की अपनी जगह, इम्फाल जैसी छोटी सी जगह से छः नाटक थे, मुंबई/महाराष्ट्र से नौ नाटक थे, दिल्ली से उन्नीस नाटक थे। चौदह विदेशी नाटक छोड़ देने पर कुल अस्सी नाटकों में से इन चार राज्यों से अड़तालीस नाटक थे! अर्थात भारंगम के भारतीय नाटकों का साठ प्रतिशत केवल चार जगहों से ही चयन किया गया था! तब फिर अंधों की रेवड़ियाँ बाँटने की बात कैसे गलत है?

अन्य गतिविधियाँ :

विश्व रंगमंच फोरम पर तीन-दिवसीय सेमिनार का विषय था, "हूज थिएटर इस आईटी एनीवे", अर्थात, 'आखिर यह रंगमंच है किसका', और राष्ट्रीय परिसंवाद का विषय था, "एक्टर एट दी वैनिशिंग पॉइंट" (लुप्त होने के कगार पर अभिनेता). ऐसे विषय रंगमंच में कितना बेहूदा हैं? नाटक को तो हमेशा से एक सामूहिक कृत्य माना जाता रहा है! तब, रंगमंच किसी एक का कैसे हो सकता है? और बिना एक्टर के नाटक की कल्पना कितनी हास्याम्पद हो सकती है इसका अंदाजा इस बात से लग सकता है कि नाटक के लेखक को भी कई बार मृत घोषित किया जा चुका है। तो फिर तो मशीनें और रोबो ही नाटक कर लिया करें, और सरकार का विज्ञानं और तकनीकी मंत्रलय ही मशीनों और रोबो के 'भारत रंग महोत्सव' का आयोजन कर लिया करेगा। इस प्रकार के निरर्थक सेमिनार करने की अपेक्षा यदि रानावि अपना ध्यान इस उत्सव में अच्छे नाटक करने पर लगाए, तो रंगमंच का ज्यादा भला होगा, और सरकारी पैसे का दुरूपयोग भी होने से बचेगा। लेकिन जब मकसद ही यह हो कि 'हम आपको बुलाएँ, आप हमें बुलाएँ', तो क्या किया जा सकता है? जिस उत्सव को देश भर के वरिष्ठ व कनिष्ठ रंगकर्मियों तथा अन्य कलाकारों के भी बीच औपचारिक-अनौपचारिक संवाद का माध्यम बनने का सपना भारंगम के प्रारंभ करते समय देखा था, वह सपना देखने वाले आज निराश ही होंगे। □

ई/9-सी, डीडीए, मुनिरका,
नई दिल्ली-110067

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैजू की बंदिश, डागर की लय

● रघुवीर

कहते हैं कि नर्तकी कलावली की प्रेम-तरंगों ने बैजनाथ मिश्र को 'बावरा' बना दिया। कृष्ण भक्त स्वामी हरिदास ने संगीत की सरगम सिखा दी और बावरे बैजू प्रेम को संगीत का आठवाँ स्वर मानने लगे। बैजू बावरा के इसी आठवें स्वर ने 'तार सप्तक' में पहुँचकर 'सुर के संग्राम' में अपने ही गुरु भाई संगीत सम्राट तानसेन को पराजित कर दिया। मुग़ल सम्राट अकबर के नवरत्नों में शुमार तानसेन से उनका यह 'स्वर संग्राम' आगरा के वन में हुआ, जहाँ तानसेन ने राग तोड़ी के स्वर छेड़े थे और बैजू ने राग मृगरंजनी तोड़ी के। 1952 में बनी फ़िल्म 'बैजू बावरा' में भी कलावती से बैजू के इसी प्रेम को पर्दे पर उकेरा गया। अलग बात है कि बैजू बावरा और तानसेन-दोनों ध्रुपद नायकों की संगीत प्रतिस्पर्द्धा ख़्याल गायन में दिखायी गयी। किंवदन्तियाँ और भी हैं। मसलन, पिता का विछोह उनके बावरा होने की वजह बना, तो कहीं शिष्य गोपाल लाल की उनसे दूरी उनके होशो-हवास खोने का कारण बनी और उन्हें बावरा कहा जाने लगा।

व्याख्यान सत्र में मंचासीन बायें से रविशंकर, शैलजा खन्ना, इकबाल रिज़वी, देव प्रकाश चौधरी एवं उस्ताद वहाउद्दीन डागर

मध्यकाल के कुछ ऐतिहासिक दस्तावेज़ और ग्वालियर के जयविलास महल के साक्ष्य बताते हैं कि सन् 1542 में जन्मे बैजू बावरा ग्वालियर के राजा मान सिंह के दरबारी संगीतज्ञ थे, जहाँ उन्होंने मान सिंह की रानी मृगनयनी को संगीत में प्रवीण करने के साथ ही ग्वालियर घराने की संगीत परम्परा को भी समृद्ध किया। उनके स्वरज्ञान-सागर से मूजरी तोड़ी, मंगलगुजरी जैसे नये राग सृजित हुए, तो धमार ताल भी निर्मित हुई। होली गायन की नवीन पद्धति भी बैजू के कण्ठ से निकलकर फागुनी रंग में मस्ती भरने लगी। कहते हैं कि बैजू बावरा के स्वरों में ऐसी कशिश थी कि उनका राग मृगरंजनी सुनकर हिरण दौड़े चले आते थे। राग बहार से फूल खिल उठते थे, तो मेघ मल्हार से आकाश में बादल छा जाते और वर्षा होने लगती थी। उनके कण्ठ से राग दीपक के स्वर निकलते, तो दीये जलने लगते और मालकौंस से पत्थर पिघलने लगते थे। ऐसे अलबेले गायक बैजू बावरा के स्वर ग्वालियर रियासत के छोटे-से शहर चन्देरी में सन् 1613 में वसन्त पंचमी के दिन सदा के लिए शान्त हो गये, जहाँ नौखण्डा महल के पास उनकी समाधि बनायी गयी। तब संगीत की समृद्ध परम्परा को बनाये रखने और बैजू बावरा को अमर बनाने के मक़सद से राजा मान सिंह ने ग्वालियर संगीत विद्यापीठ की स्थापना की थी और अब बैजू के मधुर स्वरों की गवाह रही चन्देरी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

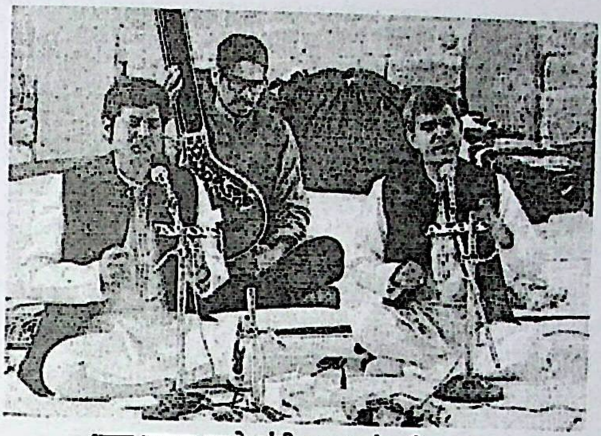

ध्रुपद प्रस्तुत करते संजीव झा एवं मनीष कुमार

उस महान संगीत विरासत को सहेजने का महती कार्य कर रहा है श्री अचलेश्वर महादेव मन्दिर फ़ाउण्डेशन, डाला, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश।

मध्य प्रदेश में मालवा और बुन्देलखण्ड की सीमा पर बसे चन्देरी में अचलेश्वर फ़ाउण्डेशन ने नगरपालिका परिषद, चन्देरी, अशोक नगर के सहयोग से स्वर-लय-ताल का संगम सजाया, ख़ास वाग्देवी की आराधना के दिन-वसन्त पंचमी, यानी बैजू बावरा की पुण्य तिथि पर; तो मनोरम शान्त वादियों से फिर बैजू के स्वर निकलते सुनायी दिये। फ़ाउण्डेशन का यह दूसरा 'बैजू बावरा ध्रुपद उत्सव' था, जिसकी सान्ध्य बेला में राजा-रानी के महल ने ध्रुपद सुना, रुद्रवीणा के स्वरों की गूँज सुनी और पखावज की थाप सुनी। डागर घराने की 20वीं पीढ़ी के उस्ताद बहाउद्दीन मोहिउद्दीन

रुद्रवीणा वादन प्रस्तुत करते उस्ताद बहाउद्दीन डागर

डागर ने रुद्रवीणा पर कर्नाटक संगीत के राग गंगेभूषण के सुर छेड़े, तो स्वर-भेद करते हुए आध्यात्मिकता और आनन्द की यात्रा पर निकल पड़े। 40 मिनट के आलाप के बाद जब उन्होंने विलम्बित और द्रुत रचनाओं में जोड़ और झाला का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया, तो संगीत रसिक आनन्द और शान्ति की खोज में निकल पड़े। उस्ताद के साथ पखावज पर बंगलादेश के रोमन दास ने ताल-से-ताल मिलायी और तानपुरा पर चक्रेश तिवारी ने स्वरों की संगति दी।

ऐसी संगीतमयी शाम को प्रतिभाशाली बिहार वन्धु-संजीव झा और मनीष कुमार अपनी जुगलबन्दी से पहले ही सुरमयी बना चुके थे। शास्त्रीय गायक द्वय ने पहले राग यमन में आलाप किये और फिर राग भूपाली में ध्रुपद 'तू ही सूर्य, तू ही चन्द्र, तू ही अगन, तू ही पवन' में जुगलबन्दी। 12 मात्राओं की चारताल में रोमन दास ने ख़ूब सम-से-सम मिलायी। युवा गायक बैजू की नगरी में बैजू के पद से बैजू के युग में ले गये, जहाँ संगीत-दीवाने इतिहास के सुरीले पृष्ठों पर चन्देरी, बैजू,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुपद और वसन्त पंचमी का अद्भुत समन्वय गुन रहे थे। वहाँ से लौटे तो सन्त कबीर के काल में आकर रुके, जहाँ राग चारुकेशी में उनके पद 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' से बुनकरों की नगरी चन्देरी को नये मायने दिये। 10 मात्राओं की सूलताल में रोमन दास ने 'काहे का ताना, काहे का बाना' शब्दों को नये अर्थ दिये। आयोजन थमा तो उस्ताद बहाउद्दीन डागर को 'बैजू बावरा स्मृति सम्मान-2017' से नवाज़ा गया।

इससे पूर्व चले व्याख्यान-सत्र में 'पारम्परिक वीणा में प्रयोग' विषय पर उस्ताद बहाउद्दीन डागर ने कहा कि उनके पिता मरहूम उस्ताद मोहिउद्दीन डागर ने परम्परागत बेहरामखानी में कुछ परिवर्तन कर ध्रुपद नयी शैली ईजाद की और वादन के लिए रुद्रवीणा में भी कुछ फेरबदल किया। 'समाज में कलाओं की आवश्यकता' विषय पर कला समीक्षक शैलजा खन्ना ने कहा कि भगवत गीता के 10वें अध्याय में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है, 'तेजस तेजस्वी नाम अहं, अर्थात् हर सुन्दरता में ईश्वर का अंश है।' हमारे संगीत में भी कहा गया है कि संगीत का मक़सद है आत्मा को परमात्मा से मिलाना। हमारे जीवन में कलाओं के महत्व का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा? 'समाज में कला- चेतना भी, चेतावनी भी' विषय पर चित्रकार अर्पणा कौर के जीवनीकार, चित्रकार एवं वरिष्ठ पत्रकार देव प्रकाश चौधरी का कहना रहा कि कोई ध्रुपद के कठिन रागों को सीखने की चेष्टा करता है, तो हमें यह उम्मीद नहीं लगानी चाहिए कि आने वाले कल में वह शास्त्रीय संगीत का महान गायक ही बनेगा, बल्कि यह सोचना चाहिए कि आने वाले कल के लिए हमें एक महान श्रोता मिल रहा है। जब ऐसी स्थिति बनेगी, तभी कला हमारे लिए चेतना का काम करेगी और ज़रूरत पड़ने पर चेतावनी भी देगी। 'कला, समाज और धर्म' विषय पर फिल्म समीक्षक एवं वरिष्ठ पत्रकार इक़बाल रिज़वी बोले कि हमारे देश में कला के विकास की परम्परा को मन्दिरों, मठों और आश्रमों ने सदियों तक निभाया, लेकिन 20वीं शताब्दी में सामाजिक, धार्मिक और कला के क्षेत्र में असहमतियों के स्वर उभरे। हालाँकि बहुत-से संगठन इस प्राचीन दर्शन को स्वीकारते हैं कि मनुष्य का समाज के प्रति कर्तव्य और जवाबदेही है और धर्म मनुष्य को वेहतर बनाने के लिए है, बाँटने के लिए नहीं। सांस्कृतिक पत्रिका के सम्पादक रविशंकर ने कहा कि प्राचीन ग्रन्थों में 64 प्रकार की कलाओं का उल्लेख किया गया है और हम पर सभी को सँजोने-सहेजने की महती ज़िम्मेदारी है। सत्र का संचालन कला पत्रकार रघुवीर ने किया।

दोपहर में स्थानीय सरकारी कन्या विद्यालय की 50 छात्राओं को बिहार बन्धुओं ने ध्रुपद का 'ककहरा' सिखाया। संजीव झा ने बताया कि ध्रुपद सबसे प्राचीन संगीत है और यह सभी प्रकार के संगीत का व्याकरण है। कोई भी ध्वनि जब किसी राग का हिस्सा बन जाती है तो वो स्वर होती है। मनीश कुमार ने समझाया कि राग 'शडज' का ही विस्तार है। शड यानी 6 और अज यानी विस्तार। राग भूपाली में ध्रुपद 'शंकर सुत गणेश, विघ्न विनाशक गौरी नन्दन' की प्रस्तुति से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत और बैजू बावरा के परिचय की इस कार्यशाला का समापन हुआ। पालिकाध्यक्ष उषा शरद शाद की अध्यक्षता में चले आयोजन में भरत तिवारी, विहान कला समूह, भोपाल की एकता गोस्वामी और विशाखा राजुरकर ने सहयोग दिया। फ़ाउण्डेशन के सचिव चन्द्र प्रकाश तिवारी कहते हैं कि संस्था का उद्देश्य गाँवों, क़स्बों और छोटे शहरों में सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन और लोगों में कलाओं के संस्कार देना है। उम्मीद है, रुद्रवीणा की गूँज की तरह उनकी यह कोशिश भी अनवरत गूँजती रहेगी। □

द्वारा, राजकुमार सिंह
एफ़-283, अर्शना रेज़ीडेन्सी, रहपुरा मार्ग,
इज़्ज़तनगर, बरेली-243122, उत्तर प्रदेश।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्य समारोह सम्पन्न

संस्कार भारती उत्तर प्रदेश द्वारा राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह कैसर बाग लखनऊ में चार दिवसीय राष्ट्रीय नाट्य समारोह आयोजित किया गया। संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार का विशेष सहयोग रहा। नाट्य समारोह २० से २३ मार्च तक आयोजित किया गया। इसमें संस्कार भारती उ.प्र. लखनऊ, द्वारा 'वसीयत' नाटक का मंचन किया गया। जिसे भगवती चरण वर्मा ने लिखा था, स्वतन्त्र काले ने जिसका निर्देशन किया था।

२० मार्च को सायंकाल विधायक श्री महेन्द्र सिंह यादव बिसवां (सीतापुर) तथा संत प्रसाद विधायक गोरखपुर पूर्व सहायक कमिश्नर प्रशासन मा. विजय बहादुर सिंह ने अतिथि के रूप में कलाकारों का उत्साहवर्धन किया।

दूसरे दिन २९ मार्च को मशहूर नाटककार डी.पी.सिन्हा रचित नाटक "कथा एक कंस की" रोहित तिपाठी (संस्कार भारती) द्वारा निर्देशित मंचित हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में सेउता क्षेत्र के विधायक श्री ज्ञान तिवारी जी ने दीप प्रज्जवलित कर शुभारम्भ किया। कलासाधकों को पुरस्कार बाँटें।

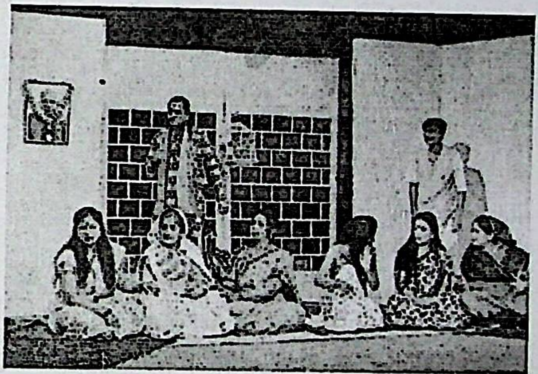

तीसरे दिन २२ मार्च को गोरखपुर की 'दर्पण' संस्था द्वारा रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखित व संत श्रीवास्तव द्वारा निर्देशित नाटक 'रश्मिरथी' का मंचन किया गया। लखनऊ के विधायक श्री सुरेश श्रीवास्तव ने इस दिन मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित होकर कला साधकों को सम्मानित किया।

अध्यक्षता मा. गणेश ताम्रकार जी ने की। अंतिम दिन २३ मार्च को फरीदाबाद संस्कार भारती (हरियाणा) की इकाई ने महाभारत के पात्र शकुनि मामा के जीवन की झांकी पर आधारित नाटक "पासे पलट गये" की बहुत ही रोचक प्रस्तुति दी। मुख्य अतिथि के रूप में माननीय विधायक साकेन्द्र प्रताप वर्मा (कुर्सी क्षेत्र) एवं डॉ. जयलक्ष्मी शर्मा (असि.प्रोफेसर, लखनऊ वि.वि.) रहीं। अध्यक्षता मा. सनातन दुबे क्षेत्र प्रमुख-पूर्वी उत्तर प्रदेश संस्कार भारती ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में अशोक तिवारी जो क्षेत्रीय संगठन मंत्री बिहार उपस्थित रहे। सभी ने कलाकारों का सम्मान किया तथा पुरस्कार बाँटे।

मंच पर हरियाणा प्रांत के सहमहामंत्री अभिषेक गुप्ता तथा मातृशक्ति प्रमुख डॉ. ऋचा जी का सम्मान किया गया। 'पासे पलट गये' नाटक के लेखक दीपक शर्मा थे निर्देशन राजेश्वर कौशिक का रहा। प्रस्तुति नेतृत्व एकता रमन, नाट्य विधा संयोजक फरीदाबाद इकाई का था।

नाट्य समारोह के दौरान विभिन्न दिसवों पर संस्कार भारती के प्रमुख पदाधिकारियों की विशेष रूप से उपस्थित रही। अ.भा. नाट्य विधा संयोजक रविशंकर खरे, उ.प्र. संस्कार भारती के अध्यक्ष मा. गणेश ताम्रकार जी, योगेन्द्र नाथ योगी, डॉ. पूर्णिमा पाण्डेय, गुलशन राय मेहता, श्रीमती शिवा सिंह, सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, सीताराम कश्यप, नानक चन्द्र लखमानी, श्रीमती किरन श्रीवास्तव, कमलेश कुमार मौर्य 'मृदु', कनक वर्मा, बालजी रस्तोगी, राजीव दुबे, अशोक गौतम, ममता सिंह, तथा तूलिका कश्यप, देशदीपक आदि प्रमुख रूप से सहयोग रहा।

समारोह का सफलतापूर्वक संचालन कलाकुंज भारती के सम्पादक-पद्मकान्त शर्मा ने रोचक ढंग से किया। समारोह के आयोजन में क्षेत्र संगठन मंत्री गिरीश चंद्र के नेतृत्व में सुनील त्रिवेदी, किरन श्रीवास्तव, अरुण गुप्ता दीपू चौहान, तथा मीडिया प्रभारी रमाशंकर श्रीवास्तव, मंत्री संस्कार भारती का उल्लेखनीय योगदान रहा।□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकादमी गतिविधियां -

'जश्न-ए-आजादी' में गूंजे आजादी के तराने

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा गत 24 जनवरी 2017 को 'अवध संध्या' श्रृंखला में 'जश्न-ए-आजादी' के अन्तर्गत सुरमयी सांझ सजाई गयी। सन्त गाडगे जी महाराज प्रेक्षागृह, अकादमी परिसर, विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ में कार्यक्रम का शुभारम्भ उत्तर प्रदेश खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड के मुख्य कार्यपालक अधिकारी डा. अखिलेश मिश्र एवं अकादमी सचिव श्री जगदीश प्रसाद ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया।

'डॉ. गौरी उपाध्याय' ने राग सारंग में आबद्ध कबीर भजन 'श्याम पिया मोरी रंग दे चुनरिया' से कार्यक्रम की शुरुआत की। राग चारुकेशी में मलूकदास के सूफी गीत 'दर्द दीवाने बावरे अलमस्त फकीरा', राग भैरवी में धीरेन्द्र कश्यप के गीत 'हर एक शहीद के नग्में बनाये जायेंगे' तथा 'मेरे बालों में गजरा, नैनों में कजरा लगा दे सखी' सुनाकर वाहवाही बटोरी।

गायिका सुश्री अंजलि श्रीवास्तव ने 'मुझे ला दे भजन की वही माला', 'खनन-खनन कँगना बोले, छनन-छनन पायल बोले', कैफ अकरमी के गीत 'मैंने चाहा है तुम्हें पूजा है' तथा 'ऐ देश की स्वतंत्रता प्रणाम लो' सुनाया।

सुश्री श्रुति मालवीय ने 'गुरु के चरन कमल बलिहारी', 'थोड़ा ध्यान लगा, सतगुरु दौड़े आयेंगे', 'प्रभु तेरो नाम जो ध्याये फल पाये' तथा 'ऐ मेरे वतन के लोगों' सुनाया। अन्त में समवेत स्वर में तीनों कलाकारों ने 'सारे जहाँ से अच्छा' गीत गाया। तीनों कलाकारों के साथ हारमोनियम पर संगीत संयोजक केवल कुमार, सिन्थसाइजर पर वीरेंद्र कुमार, आक्टोपैड पर अरुण शर्मा, बांसुरी पर दीपेन्द्र कुँवर तथा नाल पर मुन्ना अनवर ने संगत की।

अवध संध्या में हुई 'कुचिपुड़ी व कथक नृत्य प्रस्तुतियां'

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा 'अवध संध्या' श्रृंखला में गत 21 फरवरी 2017 को कुचिपुड़ी व कथक नृत्य की शानदार प्रस्तुतियां हुईं। सन्त गाडगे जी महाराज प्रेक्षागृह में आयोजित कार्यक्रम का शुभारम्भ पद्मश्री राज बिसारिया, ब्रिगेडियर अमूल्य मोहन, कर्नल ज्योतिर्मय घोषाल ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया।

दिल्ली से पधारीं पारंगत कुचिपुड़ी नृत्यांगना सुश्री मीनू ठाकुर ने शास्त्रीय नुत्य की कुचिपुड़ी शैली में 'गणेश उद्भवम्' से कार्यक्रम का शुभारम्भ किया जिसमें उन्होंने 'प्रणवाकारम् सिद्धिविनायक प्रसन्नामुख वदनम् अनुभावम्' के माध्यम से गणेश उत्पत्ति का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया। अगली प्रस्तुति 'कृष्णशब्दम्' में 'रारा स्वामी रारा यदुवंशसुदाम् बुद्धिचन्द्रा' के माध्यम से कृष्ण के सौन्दर्य का बखान करते हुए उन्हें रिझाने का सुन्दर भावाभिनय तथा महिषासुर सहित दैत्यों का वध करतीं मां दुर्गा के स्वरुप को चेहरे व आंखों के भाव से बताते हुए मीनू ने खूब तालियां बटोरीं। पारम्परिक कुचिपुड़ी में जब नर्तक मंच पर आता है और अपने बारे में बताता है, उसे प्रवेश दरु कहते हैं, प्रवेश दरु के बाद 'भामा कलापम' में 'भामने सत्यभामने वइयारी मुदउल' के माध्यम से मीनू ठाकुर ने सत्यभामा के सुन्दर भाव प्रस्तुत किये जिसमें सखि द्वारा उनके प्रियतम का नाम पूछने पर सत्यभामा कहती है कि उनका नाम नहीं लिया जाता किन्तु हाव-भाव से कृष्ण का स्वरुप बताती है। इसके अतिरिक्त मीनू ने 'तरंगम' में पीतल की थाली पर मनोहारी कुचिपुड़ी नृत्य प्रस्तुत किया। गीतों को समझाने के लिए तेलगू से हिन्दी में अनुदित कराकर तैयार कुचिपुड़ी की इस प्रस्तुति को व्यापक सराहना मिली।

कथक नृत्य का शुभारम्भ सुश्री दीपमाला सचान ने शिव स्तवन से किया। राग शंकरा तथा ताल चारताल पर आधारित ध्रुपद 'जय महेश जटा जूट, कण्ठ सोहे काल कूट, जन्म मरण जाए छूट' पर दर्शकों ने खूब तालियां बजायीं। वरिष्ठ कथक नृत्यांगना डा. कुमकुम धर के निर्देशन में अगली प्रस्तुति पारम्परिक कथक की हुई जिसमें सुश्री दीपमाला सचान के साथ अदिति थपलियाल एवं अमीषा तिवारी ने भी प्रस्तुति दी। डा. कुमकुम धर की परिकल्पना व संयोजन में सुश्री दीपमाला सचान, अदिति थपलियाल, अमीपा तिवारी, प्रेरणा राणा व अनिमिता भौमिक ने चतुरंग से आवद्ध रास की प्रस्तुति 'श्रीकृष्ण निरततः' को व्यापक सराहना मिली।

'अवध संध्या' में दिखी लोक संस्कृति की जीवन्त झांकी

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा 'अवध संध्या' श्रृंखला के अन्तर्गत गत 24 मार्च 2017 को लोक संगीत की सुरमयी सांझ सजाई गयी। संत गाडगे जी महाराज प्रेक्षागृह में आयोजित कार्यक्रम में लोक धुन में पगे विविध गीतों ने लोक संस्कृति की जीवन्त झांकी प्रस्तुत की। संस्कार गीतों से लेकर ऋतु गीत होरी, चौती आदि की मनमोहक प्रस्तुति ने दर्शकों को भावविभोर कर दिया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ सुप्रसिद्ध गायिका डा. मालविका ने पचरा 'बेरिया के बेर अपने देवी के मनइबो...' के गायन से किया। लोक संस्कृति की परम्परा में मेला गीतों का भी विशिष्ट स्थान रहा है। ऐसे ही एक मेला गीत 'गाड़ी हौले चलावो गाड़ीवान, करेजा मोरा धकधक करे...' के स्वर संगीत पर डा. मालविका को खूब वाहवाही मिली। इसके बाद उन्होंने गोदना गीत 'माथे पे लिख दे रामलला की कीरत सारी बखानी रे... गोदना गोदे गोदनहारी रे..' तथा होली गीत, लाचारी, विवाह गीतों के साथ ही रामनवमी के उपलक्ष्य में श्रीरामभजन भी प्रस्तुत किया। उनके साथ हारमोनियम पर संगीत निर्देशक केवल कुमार, तबले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर शेख इब्राहिम, गिटार पर राकेश आर्या, ढोलक पर विशाल तथा कीबोर्ड पर मयंक ने संगत किया।

लोक संगीत संध्या की अगली प्रस्तुति युगल गायन से हुई जिसमें यामिनी पाण्डेय तथा कामिनी मिश्रा ने एक से बढ़कर एक गीत सुनाये। भजन 'गोविन्द कबहूं मिले पिया मोरा...',. 'बाजे रे मुरलिया बाजे रे...', यशोधरा का विलाप गीत 'सखि वे मुझसे कहकर जाते...', 'बोलेला अंगनवा में कागा...', झूमर 'बूदन भीजे मोरी सारी', नकटा 'रंगीला मोरा बालमा...', पारम्परिक पूर्वी 'तोहरे करनवा', होरी गीत 'होरी आई कन्हैया से जाय कह्यो...' तथा चौती 'अवध मा रामजी जनम लीन्हो रामा चौत ही मासे...' आदि गीतों से आयोजन को ऊंचाई प्रदान की। यामिनी-कामिनी के साथ हारमोनियम पर अंकित सिंह, सिन्थेसाइजर पर कृष्ण कुमार मौर्या, तबला पर अमिताभ शर्मा, ढोलक पर रामअवतार तथा बांसुरी पर अलका ठाकुर ने संगत की।

शास्त्रीय संगीत प्रतियोगिता आरम्भ

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली शास्त्रीय संगीत की प्रतियोगिता मार्च 2017 में आरम्भ हो गई है। प्रतियोगिता प्रभारी श्री रविचन्द्र गोस्वामी के अनुसार राज्य के विभिन्न केन्द्रों पर होने वाली इस प्रतियोगिता के प्रथम चरण में सम्भागीय स्तर पर बाल, किशोर एवं युवा वर्ग की अलग अलग प्रतियोगितायें गायन, वादन एवं नृत्य की विभिन्न विधाओं में होंगी। द्वितीय चरण में राज्य स्तर पर शास्त्रीय संगीत की प्रतियोगिता होगी जिसमें सम्भागीय स्तर पर चयनित प्रतिभागी सम्मिलित होंगे।

पारम्परिक प्रस्तुतियों के साथ लोकोत्सव सम्पन्न

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा जिला प्रशासन हरदोई के सहयोग से तीन दिवसीय लोकोत्सव का आयोजन किया गया। हरदोई के रसखान प्रेक्षागृह में 31 मार्च से 1 अप्रैल 2017 तक हुए आयोजन में कलाकारों ने मनमोहक प्रस्तुतियां दीं। कार्यक्रम के पहले दिन मथुरा के बृजबिहारी नौटंकी कला संस्थान द्वारा रासलीला का मंचन किया गया। अगले दिन अयोध्या के मारुतिनन्दन हनुमति आदर्श रामलीला मण्डल ने रामलीला की। अन्तिम दिन लखनऊ के मयूर पपेट थियेटर द्वारा कठपुतली का प्रदर्शन तथा कानपुर के नौटंकी प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा नौटंकी 'सुल्ताना डाकू' का मंचन किया गया। □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तक-समीक्षा

रंगकर्म और नाटककार

● रवीन्द्र नाथ बहोर

अम्बा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर से सेवा-निवृत्त प्रोफ़ेसर डॉ. लक्ष्मण सहाय नाटक और रंगकर्म के साथ-साथ साहित्य की विभिन्न विधाओं के भी आधिकारिक विद्वान हैं। वे भोपाल से प्रकाशित होनेवाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'समरलोक' के सह-सम्पादक भी हैं। डॉ. सहाय के विभिन्न विषयों पर लिखे लेख देश की प्रमुख साहित्यिक एवं नाट्य पत्रिकाओं—छायानट, अनुशीलन, संचयन, इंगित, सम्मेलन पत्रिका, साक्षात्कार एवं समरलोक—में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। किन्तु पुस्तकाकार रूप में तरुण प्रकाशन, गाज़ियाबाद द्वारा प्रकाशित 'रंगकर्म और नाटककार' डॉ. सहाय की प्रथम पुस्तक है।

आलोच्य पुस्तक लेखक द्वारा अलग-अलग समय पर लिखे गए नाटक और रंगमंच से सम्बन्धित प्रकाशित आलेखों का संग्रह रूप है। पुस्तक में कुल इक्कीस आलेख संकलित हैं—नाट्य तत्व-यात्रा : प्रकृति से वेद और वेद से नाट्यशास्त्र तक, त्रि-आयामी नाटक में नाटककार का परकाया प्रवेश, नाटककार और नाट्यालेख, नाट्य-समीक्षा, रंग-संकेत का नाट्यालेख और मंच-प्रदर्शन में महत्व, नाट्य-प्रदर्शन में रंगदीपन का अवदान, नाट्य-मंचन में संगीत की अनिवार्यता, हिन्दी नाटक और रंगमंच : एक यात्रा। नाट्य एवं रंगमंच की दृष्टि से ये आठ लेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें लेखक ने विभिन्न रंग-अवयवों पर अपनी गहन शोधपरक दृष्टि से विचार करते हुये नवीन उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं।

इनके साथ ही संकलित दो आलेख लेखक की शोधात्मक दृष्टि से परिचित कराते हैं, वे हैं—ग्वालियर का रंगमंच और रंगकर्म-परम्परा। इस लेख में लेखक ने 'ग्वालियर' शहर का नामकरण कैसे हुआ, विषय पर नवीन उद्भावना प्रस्तुत की है। दूसरे लेख 'मानसिंहकालीन बरई का मुक्ताकाशी रंगमंच' के माध्यम से लेखक ने राजा मानसिंह द्वारा निर्मित कराये गये मुक्ताकाशी रंगमंच की खोज की है, जो अभी तक रंगकर्मियों की दृष्टि से ओझल था। विद्वान लेखक ने ग्रामीण रंगमंच के प्रति भी अपने तीन आलेखों में गम्भीरता से विचार करते हुये 'खोईया' लोकनाट्य के विलुप्तीकरण के कगार पर पहुँच जाने को लेकर चिन्ता व्यक्त की है। उनके मतानुसार ग्रामीण क्षेत्रों में रंगमंच को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है अन्यथा 'नौटंकी' की तरह विभिन्न क्षेत्रों के लोकनाट्य भी विलुप्त हो जायेंगे।

शेष आलेखों में विभिन्न नाटककारों के नाटकों पर समीक्षात्मक दृष्टि से लेखक द्वारा विचार करते हुये अपना मत व्यक्त किया है। इनमें 'अंधों का हाथी', मिलिन्द का नाटक 'प्रताप-प्रतिज्ञा', दयाप्रकाश सिन्हा का 'रक्त अभिषेक' के अतिरिक्त 'रघुवंश की नाट्यकला सम्बन्धी महनीय अवधारणायें', 'रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में सांस्कृतिक स्वरूप', 'लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में भारतीयता', 'दयाप्रकाश सिन्हा के नाट्य साहित्य में दृश्यबंध के लिए रंग-संकेत की उपयोगिता' तथा 'हबीब तनवीर और दो लोक-कथाश्रित नाटक' प्रमुख हैं।

संक्षेप में, यह पुस्तक नाट्य अध्येताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगी और रंगकर्म से जुड़े रंगकर्मियों को एक नयी दृष्टि देने में सफल होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

रंगकर्म और नाटककार : डॉ. लक्ष्मण सहाय; प्रकाशक : तरुण प्रकाशन, डी-ब्लाक, इन्द्रापुरी कालोनी, गाजियाबाद-201102; मूल्य : रु.300.00 मात्र। □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंगमंच, संगीत तथा अन्य अभिनेय कलाओं का अखिल भारतीय त्रैमासिक

छायानट

प्रकाशक : उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी (संस्कृति विभाग, उ.प्र. शासन की स्वायत्तशासी संस्था)
विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010, फोन : 0522-2307840, 2307850

सदस्यता आवेदन–पत्र

सेवा में,

सचिव,
उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी
लखनऊ।

महोदय,

कृपया मुझे 'छायानट' पत्रिका की वार्षिक/आजीवन सदस्यता प्रदान करने का कष्ट करें। अधोलिखित विवरण के साथ सदस्यता शुल्क रु. .... (शब्दों में.................................... नकद/ड्राफ्ट/चेक सं. ....दिनांक.................................. बैंक.. संलग्न है।

(1) नाम : ....

(2) पिता/पति का नाम : ....

(3) स्थायी पता : ....

....

(4) पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिन कोड सहित) : ....

....

....

(5) फोन/मोबाइल सं. : ....

(6) ईमेल : ....

हस्ताक्षर

वार्षिक सदस्यता शुल्क- ₹200 (साधारण डाक), ₹400 (पंजीकृत डाक), आजीवन सदस्यता शुल्क-₹3000 (साधारण डाक), ₹5000 (पंजीकृत डाक)

(चेक/बैंक ड्राफ्ट 'सचिव, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी', के नाम 'लखनऊ' में देय ही स्वीकार किये जायेंगे।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवध संध्या, दिनांक 24 मार्च, 2017, संत गाडगे जी महाराज प्रेक्षागृह, लखन

लोक संगीत कार्यक्रम की झलकियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत सरकार के न्यूज़ पेपर रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
पंजीयन संख्या : आर.एन. 35504/79

'छायानट' में प्रकाशित नाट्यालेख

सम्राट् इडिपस	मूल : सोफ़ोक्लीज़, अनु. : डॉ. विश्वनाथ मिश्र	अंक 99 ₹ 15.00
एक था राजा	मूल : बादल सरकार, अनु. : रवीन्द्रनाथ बहोरे	अंक 100 ₹ 15.00
स्वयंवर	हरीश जलोटा	अंक 102 ₹ 15.00
प्रेत	मूल : हेनरिक इब्सन, अनु. : वल्लभ सिद्धार्थ	अंक 104 ₹ 25.00
मटका	आदित्य अग्निहोत्री	अंक 106 ₹ 25.00
शून्य से शून्य तक	इन्द्रजीत भाटिया	अंक 107 ₹ 25.00
बाज़ी	रामेश्वर प्रेम	अंक 111 ₹ 25.00
हम कहाँ से कहाँ आ गये	संजय मेहता	अंक 114 ₹ 25.00
मुण्डन	डॉ. जितेन्द्र सहाय	अंक 114 ₹ 25.00
दुखवा में बीतल रतिया	ललित सिंह पोखरिया	अंक 115 ₹ 25.00
रक्त अभिषेक	दया प्रकाश सिन्हा	अंक 117 ₹ 25.00
अविमारक	डॉ. प्रभात कुमार भट्टाचार्य	अंक 118 ₹ 25.00
अमर सेनानी तात्या टोपे	डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र'	अंक 119 ₹ 25.00
सूर्य तुम नहीं होगे अस्त	प्रो. सतीश मेहता	अंक 119 ₹ 25.00
बड़े हुज़ूर	हरीश जलोटा	अंक 119 ₹ 25.00
कहत गधा सुनौ हो साधो	डॉ. कमल वंसिष्ठ	अंक 119 ₹ 25.00
सद्भाव (नौटंकी)	रामलखन वर्मा 'झनकार'	अंक 119 ₹ 25.00
दलथम्हन	अमर नाथ कुशवाहा	अंक 119 ₹ 25.00
मंच अँधेरे में	डॉ. नरेन्द्र मोहन	अंक 120 ₹ 25.00
अलबेली नार	मूल : शेक्सपीयर, अनु. : डॉ. गौरीशंकर रैणा	अंक 121 ₹ 25.00
बहुरूपिये	डॉ. विलास गुप्ते	अंक 122 ₹ 25.00
जंग	कहानी रूपान्तरण : विजय पण्डित	अंक 122 ₹ 25.00
दशाननपुर	ललित सिंह पोखरिया	अंक 123 ₹ 25.00
त्रिनाम	मूल : मोतीलाल क्यूमू, अनु. : डॉ. गौरीशंकर रैणा	अंक 124 ₹ 25.00
पालने का पूत	मूल : मोतीलाल क्यूमू, अनु. : डॉ. गौरीशंकर रैणा	अंक 125 ₹ 25.00
लखटकिया हाथी	विजयकुमार शर्मा	अंक 126 ₹ 25.00
यह कैसे हुआ?	डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र'	अंक 127 ₹ 25.00
सारस्वत	मूल : मामा वरेरकर, अनु. : पं. अमृतलाल नागर	अंक 128 ₹ 25.00
रंग बजरंग	मूल : रिचर्ड नैंश, अनु. : दिनेश ठाकुर	अंक 129 ₹ 25.00
विक्रमादित्य	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	अंक 130 ₹ 25.00
गर्भानल	उमेश चन्द्र उपाध्याय	अंक 131 ₹ 25.00
उत्कर्ष	ओ.पी.अवस्थी	अंक 132 ₹ 25.00
कथा श्रवणकुमार की	डॉ. देवेन्द्र दीपक	अंक 133 ₹ 25.00

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ

स्वत्वाधिकारी उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के लिए मुद्रक, प्रकाशक जगदीश प्रसाद (सचिव, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी) द्वारा प्रिन्ट आर्ट ऑफसेट 33, कैन्ट रोड, लखनऊ से मुद्रित तथा विपिन खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ से प्रकाशित। सम्पादक-एस.के. गोपाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi